

10.7.29

वाल्मीकीय रामायण

वैशेषिक-दर्शन ।

पं० राजाराम प्रोफेसर डी.ए.वी. कालेज लाहौर ।

कृत

सरल भाषाटीका संयुक्त

बाम्बे मैशीन प्रेस, लाहौर में छपा ।

प्रथमवार ६००]

[मूल्य २॥]



वाल्मीकिरामायण का विषयसूची*

भूमिका पृष्ठ १ से ६ तक

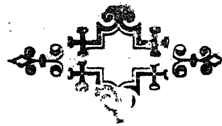
बालकाण्ड पृष्ठ ७ से ११२ तक

* १—इस सूची में दिये विषय सर्गों के साथ २ भी दिये गए हैं। कहीं कुछ थोड़ा सा भेद है।

१—सर्गों के अङ्क कहीं न्यून अधिक लगे हैं, वह वैसे ही यहां भी रख दिये हैं। केवल अङ्क लगानेमें अशुद्धि हुई है, यूं सर्ग क्रम सब ठीक है।

अयोध्याकाण्ड पृष्ठ ११३ से ४१८ तक

अरण्यकाण्ड पृष्ठ ४२१ से ५४६ तक



विषय सूची।

किष्किन्धाकाण्ड पृष्ठ ५४७ से ६३७ तक

सुन्दरकाण्ड—पृष्ठ ६३८ से ७०६ तक।

युद्ध काण्ड पृष्ठ ७०७ से ८९५ तक।

उत्तर काण्ड पृष्ठ ८९६ से ९३१ तक



संक्षिप्त महाभारत।

अनावश्यक भाग छोड़ कर महाभारत मूल और इस का हिन्दी उल्था दोनों इकट्ठे छप रहे हैं। अनुवाद बड़ा सरल सरस और स्पष्ट हुआ है। इस पर योग्य विद्वानों ने जो सम्मतियां दी हैं, उन का संक्षेप यह है-'इन दिनों पं० राजाराम जी एक सटीक महाभारत निकाल रहे हैं, यह टीका बड़ी ही तहकीकात के साथ लिखी जा रही है। महाभारत के जितने तर्जुमे भाषा वा उर्दू में हुए हैं, उन में से किसी एक में भी इस तहकीकात का कोई अंश नहीं। पं० जी ने अपनी तहकीकात से बड़ी उत्तमता से असली ऐतिहासिक बातों की छान बीन की है, हर एक हिन्दु को इसे पढ़ना चाहिये, यह उनके लिए बड़ा उपयोगी है" ग्राहकों के सुभीते के लिये पर्व २ अलग २ छापा गया है। आदि पर्व मूल्य १।=) सभापर्व मूल्य ॥=)

वन पर्व) विराट पर्व) उद्योगपर्व) भीष्म पर्व)

पता

मैनेजर आर्षग्रन्थावलि लाहौर।



भूमिका !

श्रीवाल्मीकि रामायण का गौरव ।

श्री वाल्मीकि रामायण इस योग्य है, कि हर एक घर में प्रतिदिन इसकी कथा हुआ करे। जिस घर में इसकी कथा होगी, उस घर के लोगों को यह कथा सिखलाएगी, कि तुम रामचन्द्र की तरह माता पिता के भक्त बनो। भाई भाई आपस में राम लक्ष्मण की जोड़ी बनो। दशरथ की तरह प्राण हार कर भी प्रण को मत हारो। धर्म्म पालन में जो विपत्ति आती है, उसको रामचन्द्र की तरह हंसते मुख से स्वीकार करो, और अपने पौरुष से हरएक संकट के पार पहुंचो। पत्नी पतिव्रता बने, विपदाएं सहती हुई भी, अपने पति से अन्य पुरुष को, मन से भी चिन्तन न करे। पुरुष स्त्रीव्रत हो, और अन्य स्त्री को मन से भी चिन्तन न करे। पति पत्नी में सीताराम का सा दम्पति-प्रेम हो। स्त्री पुरुष सब सत्यवादी हों, दयालु हों, उत्साह वाले हों, पुरुषार्थी हों। निदान मनुष्य को सारे उत्तम गुण सिखलाने वाली यह कथा है। श्रीसीता रामचन्द्र लक्ष्मण और भरत की जीवन कथा स्वतः ही जगत् को पवित्र करने वाली है, तिसपर श्रीवाल्मीकि मुनि के वर्णन ने सोने में सुगन्ध उत्पन्नकर दिया है। जिसतरह एक कवि ने कहा है, कि :—

पयसा कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः ।
मणिना वलयं वलयेन मणिर्मणिना वलयेन विभाति करः ॥

जल से कमल, कमल से जल, और जल और कमल दोनों से सरोवर शोभा पाता है। मणि से चूड़ी, चूड़ी से मणि, मणि और चूड़ी दोनों से (सुन्दरी) का हाथ शोभा पाता है।

ठीक इसी तरह सीतापति रामचन्द्र की कथा, और मुनिवर वाल्मीकि का वर्णन, इन दोनों के मेल से, श्रीवाल्मीकि रामायण बड़ी ही सुन्दर शोभावाला बन गया है। देखो, श्रीवाल्मीकि रामायण की पवित्र कथा और सुन्दर रचना पर मुग्ध होकर, प्रोफ़ैसर ग्रिफ्त साहेब अपने अंग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका में कैसा उत्तम लिखते हैं।

वाल्मीकि रामायण पर प्रोफ़ैसर ग्रिफ्त की सम्मति

"जगत् में पद्य रचना की (नज़्म में लिखी हुई) पुस्तकें बहुत हैं, पर आचरण की पवित्रता को और सुन्दर छन्द रचना को और कोई कवि ऐसी दृढ़ता, मनोहरता और रसिकता से नहीं बांध सका। इस प्रभावशाली ढङ्ग में धर्म की शिक्षा देना रामायण ही का काम है। केवल यही एक कविता है, जो हमारे दिलों में ऐसी उत्तमता से सचाई का प्यार उत्पन्न कर देती है। हम रामायण को पढ़कर कुछ के कुछ बन जाते हैं। हम में ऊंचे २ ख्याल रच जाते हैं। और वह गुण जो मनुष्य की उत्कृष्टता के भूषण हैं, हमारे सामने आकर खड़े होजाते हैं। सत्य का आचरण, पुत्रों में पितृभक्ति, पतिव्रत धर्म, पति का कर्त्तव्य, पिता माता का स्नेह, विनय, धैर्य, दयालुता-निदान मानुषी गुणों की कौनसी तस्वीर है, जिसका असली चित्र जादू भरी कलम से कवि ने इसमें नहीं खींचा।

सचाई का ऐसा प्यार सारे संसार में ढूंढकर देखो कि जिसने दशरथ को अपने प्यारे पुत्र और प्राण से वियुक्त कर दिया, पर जिसने बचन से नहीं हटने दिया। यह किसी और जगह नहीं मिलेगा।

राम अपने पिता के वचन को सच्चा करने के लिये घने जङ्गलों में घूमते हैं, सख्तियां सहते हैं, कष्ट उठाते हैं, कन्द मूल को जीवन का सहारा बनाते हैं,पर अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टलते।

सीता पर विपत्तियें आती हैं, धमकियां दीजाती हैं, पर पति-भक्ति उसके हृदय से कोई दूर नहीं कर सकता।

रामायण जगत में हर समय हर देश में हरएक क्रिया और आचार को बड़ी सफलता के साथ ललकारती है, और मनुष्य जीवन के उच्च आदर्श की जो यह पूर्ण और मनोहर तस्वीरें राम और सीता में दृष्टि आती हैं, और कहीं नहीं मिलेंगी"

हमारा काम

जब एक योरुप के महानुभाव की रामायण में इतनी भक्ति है,तो हम भारतवासियों की, जिनके, कि रामचन्द्र और वाल्मीकि पूर्व पुरुष थे, जितनी भक्ति हो, उचित है। हम भारतवासी रामायण के बहुत बड़े ऋणी हैं। इसने भारतवासियों को विपत्तियों में धर्म पर स्थिर रक्खा है। सीता सतवन्ती का जीवन ही इस देश की सतवन्तियों का आदर्श जीवन रहा है, जिसने उनको जीतेजी चिता पर चढ़ने के लिये तय्यार किया, पर अपने सतीत्व पर धब्बा नहीं लगने दिया। अतएव हम बहुत बड़े इस के ऋणी हैं। और इस का प्रचार हमारा काम है। हमारा धर्म है।

असली वाल्मीकि रामायण

पर यह शोक की बात है, कि वाल्मीकि रामायण, जैसा वाल्मीकि मुनि के मुख से निकला था, ज्यों का त्यों हमारे पास नहीं पहुंचा, इस में बहुत कुछ मिलावट हुई है, जिसके कि हमारे पास बहुत दृढ़ प्रमाण हैं। पुराने हस्तलिखित पुस्तकों के देखने से यह बात बड़ी आसानी से सिद्ध होजाती है, कतकव्याख्या और दूसरी व्याख्याओं में कुछ प्रक्षिप्तों का निर्णय भी किया है। वर्तमान रामायण में २४००० श्लोक हैं। पर हम नहीं कह सक्ते, कि इसमें कितने और कौन २ से असली हैं, और कौन २ प्रक्षिप्त हैं। ऐसा निर्णय करने के लिये बहुत बड़ी सामग्री लेकर बरसों अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। हां कई ऐसे मनचले हैं, कि जो झटपट कह देते हैं, यह प्रक्षिप्त है वह प्रक्षिप्त है। पर वह प्रक्षिप्त कहते उसको हैं, जो उनकी समझ वा मत के विरुद्ध हो, बस जो बात वह आप न मानते हों, उसको प्रक्षिप्त कह देते हैं। पर यह उन के हृदय की दुर्बलता है। ऐसा करने से वह अपना और दूसरों का अनिष्ट करते हैं। हम किसी शास्त्र की सारी बातों को मानें वा न मानें, यह हमारा इख्तियार है। पर बिना प्रमाण प्रक्षिप्त कहना अनुचित है। प्रक्षिप्त तो वही होसक्ता है, कि ग्रन्थकार ने न लिखा हो, पीछे किसी ने डाल दिया हो। इसके लिये ऐसा प्रमाण चाहिये, कि जिससे यह सिद्ध होजाए, कि ग्रन्थकार ने यह नहीं लिखा था, और इस मनशा से पीछे किसी ने डाला है। अस्तु, मैं जानता हूं कि किस तरह असली रामायण को प्रक्षिप्त भाग से अलग किया जासक्ता है, पर मेरे पास इतनी सामग्री नहीं, इस लिये अभी एक दूसरा ज़रूरी काम आरम्भ किया जाता है।

और वह यह, कि रामायण को लोग आसानी के साथ पढ़ सकें। उसके लिये एक सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया गया है, जिससे सर्व साधारण पूरा २ लाभ उठा सकेंगे। इसमें वाल्मीकि रामायण के मूल श्लोक और भाषा अर्थ दोनों रहेंगे। पर यह पूरा २४००० श्लोक नहीं होगा। इतना पढ़ने में लोगों को अवकाश ही कहां है। इसलिये २४००० श्लोकों में से यह संक्षिप्त वाल्मीकि रामायण मथकर निकाला गया है। इसमें क्या है, और क्या नहीं है, इसका व्यौरा इसतरह है, कि स्पष्ट प्रक्षिप्त श्लोक छोड़े हैं और रामायणकी असली कथा सिलसिलावार सारीहै, असली कथा का कोई अंश नहीं छोड़ा गया, हां जो कथाएं प्रासङ्गिक आजाती हैं उनको छोड़ दिया गया है। जैसे ताडका राक्षसी को राम ने मारा है, इतना सम्बन्ध तो रामचन्द्र की कथा के साथ है, अतएव आवश्यक है। पर ताटका के जन्म आदि की कथा अनावश्यक है, उसके रहने में पढ़ने वालों को कोई लाभ नहीं, छोड़ने में उतना समय बचजाता है, जिसमें अगली ज़रूरी बात पढ़ी जा सकतीहै, अतएव वह छोड़ दी है। और दूसरा जो नगर बन आदि के लम्बे २ वर्णन हैं, उनमें से भी मनोहर और आवश्यक श्लोक रखकर शेष छोड़ दिये हैं। हां जो धर्म वा नीति के उपदेश हैं, वह लम्बे भी उसी तरह रखे गए हैं। बस इतना ही भेद है, और सारा रामायण ज्यों का त्यों है। कण्ठ करने योग्य उत्तम श्लोकों पर + यह निशान देदिया है। इन सारी बातों से ग्रन्थका सौन्दर्य और गौरव दोनों बढ़गये हैं। पढ़नेवाले स्वयं देख लेंगे।

वाल्मीकिरामायण की उत्पत्ति आदि } वाल्मीकि मुनि को जिस तरह रामायण रचने का विचार उत्पन्न हुआ और

उस के लिये जैसी २ उन को प्रेरणा हुई, और जिस तरह रामायण का प्रचार हुआ, यह सब भी रामायण के आरम्भ में लिखा गया है। उस का लिखने वाला वाल्मीकि से भिन्न ही कोई व्यक्ति होसक्ता है, जैसाकि उस की लेखप्रणाली से स्पष्ट प्रतीत होता है। चार सर्गों में यही बात है। वाल्मीकि की रचना पाञ्चवें सर्ग से आरम्भ होती है। सो हम ने पहले चार सर्गों का संक्षेप छोटे टाइप में दिया है। और उस का नाम प्रस्तावना रखा है। ऐसा होना बहुत उचित है। उस के आगे वाल्मीकि की रचना मोटे टाइप में है।

(सर्ग और श्लोकों के पते)

इस रामायण में हम ने सर्ग संख्या और श्लोक संख्या अपनी रखी है। पर वर्तमान रामायण के साथ पता मेलने के लिये अपनी सर्ग संख्या के आगे व० देकर वर्तमान रामायण की सर्ग संख्या देदी है। इस पते से वर्तमान रामायण में से सर्ग को देख सक्ते हैं। फिर हरएक श्लोक का मिलाना आसान है।

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्॥

कविता की शाखा पर चढ़कर 'राम, राम' ऐसी मधुर, मधुर अक्षरों वाली कू कू सुनाते हुए वाल्मीकि कोइल को वन्दना करता हूं॥



बालकाण्ड ।

प्रस्तावना ।

पहला सर्ग (मूल रामायण)

मूल—तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परि पप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनि-पुंगवम् ॥ १ ॥
कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान् कः क समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥ ३ ॥

टीका-तप और स्वाध्याय में तत्पर, वेद जानने वालों में श्रेष्ठ, मुनि-वर नारद से तपस्वी वाल्मीकिजी पूछते भए ॥१॥ (हे भगवन्!) कौन इस समय इस लोक में गुणवान, शक्तिमान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी, अपने व्रत का पक्का ॥२॥ चरित्र (Charector) से युक्त प्राणिमात्र का हितैषी, विद्वान्, समर्थ, अद्वितीय, प्यारा लगने वाला

मूल—आत्मवान् को जित-क्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥ ४ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥

टीका-(बलवान्-) आत्मवाला, क्रोध को जिसने जीता हुआ है, कान्ति वाला, और बिना असूया के है। हां कौन ऐसा है, कि युद्ध में जिस के क्रोध को देखकर देवता भी डरते हैं*॥४॥ यह मैं सुनना चाहता हूं, मुझे बड़ा कौतूहल है, हे महर्षि! तुम ऐसे पुरुष को जानने के समर्थ हो

---

* यह अलङ्कार के तौर पर कहा है, जैसे किसी शूरवीर के सामने पृथिवी का कांपना कहा जाता है।

मूल—श्रुत्वा चैतत् त्रिलोकज्ञो वाल्मीके र्नारदो वचः ।
श्रूयता मिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यम ब्रवीत ॥ ६ ॥
बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्त्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥ ७ ॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान्वशी ॥ ८ ॥

टीका—तीन लोकके जाननेवाले नारद्जी वाल्मीकिके इसवचन को सुनकर 'सुनिये' ऐसा सम्बोधित करके प्रसन्न हो कहने लगे ॥६॥ हे मुनि ! आपने जो गुण कीर्त्तन किये हैं, वह बहुत हैं, और दुर्लभ हैं। पर मैं जानता हूं,बतलाऊंगा,इनगुणों से युक्त पुरुष जो है,वह सुनिये ॥७॥ इक्ष्वाकु वंश से प्रकट हुआ,राम नाम, लोगों में विख्यात,स्थिर मनवाला, बड़ी शक्तिवाला, कान्तिवाला धैर्यवाला,और अपने आपको अपने बस में रखनेवाला ।८।

मूल—बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥ १० ॥
समः समविभक्तांगः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥ ११ ॥

टीका—बुद्धिमान्,नीतिमान्, मधुर बोलनेवाला,शोभावाला, (बाहर और भीतर के)शत्रुओं का नाश करनेवाला,मोटे कन्धोंवाला, बड़ी भुजाओंवाला, शंख की तरह (तीन रेखा वाली) गर्दनवाला, बड़ी ठोड़ीवाला ॥९॥ विशाल छाती वाला,बड़े धनुषवाला, (मांस से) ढकी हुई दोनों हसलियों वाला, शत्रुओं का मिथाने वाला, गोड़ों तक लम्बी भुजावाला, समगोल सिरवाला, सुन्दर मस्तक

वाला, सुन्दर गतिवाला।१०।(सारी बनावट में) एक जैसा, एक जैसे अलग २ अङ्गोंवाला, स्निग्ध (गूढ़े) रङ्गवाला, प्रतापवाला, विशाल छातीवाला, विशाल नेत्रोंवाला, लक्ष्मीवाला, सब शुभ लक्षणों वाला

मूल—धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥१२॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदांगतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥ १३ ॥
सर्वशास्त्रार्थ तत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥ १४ ॥
सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिंधुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥ १५ ॥

टीका—धर्मज्ञ, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, प्रजाओं के हित में रता हुआ, यशस्वी, ज्ञान में परिपूर्ण (बाहर अन्दर से) शुद्ध (बड़ों का) वशवर्ती, एकाग्र चित्त रहने वाला ॥१२॥ अपने धर्म का रक्षक, अपने जन का रक्षक, वेद वेदाङ्ग का तत्त्व जानने वाला, धनुर्वेद में पूरा गुणी ॥१३॥ सारे शास्त्रों के गूढ़ आशय को जाननेवाला, स्मृतिवाला और प्रतिभाशाली, * सारे लोकों का प्यारा, साधु (दूसरों के काम संवारने वाला), जिसका मन कभी दीन नहीं हुआ और बड़ा निपुण है ॥१४॥ नदियों से समुद्र की तरह सदा भले मनुष्यों से घिरा हुआ, (सच्चा) आर्य † सब में सम (एक जैसा बर्तन वाला) सदा ही प्यारे दर्शन वाला है ॥ १५ ॥

---

* स्मृति=जाने हुए का याद रखना, और प्रतिभा नया सूझना ।

† यह एक आर्य्य का आदर्श जीवन है, जो इन श्लोकों में वर्णन किया है ॥

मूल—सच सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।

तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १६ ॥

टीका—वह सारे गुणों से युक्त कौशल्या का आनन्द बढ़ानेवाला हुआ। इसप्रकार गुणों से सम्पन्न सच्चे पराक्रमवाले रामको-

मूल—ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् ।

प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिहितकाम्यया ॥ १७ ॥

यौवराज्येन संयोक्तु मैच्छत् प्रीत्या महीपतिः ।

तस्याभिषेकसंभारान् दृष्ट्वा भार्याऽथ कैकयी ॥ १८ ॥

टीका—जोकि सब से बड़ा,बड़ों के गुणों से युक्त,प्यारा पुत्र, सब लोगों की भलाई में तत्पर रहनेवाला था। उसको सब लोगों के हित की कामना से दशरथ ॥ १७ ॥ राजा ने प्रीति से युवराज बनाने की इच्छा की।(तब)उस के तिलक की सामग्री को देखकर रानी कैकेयी ने, ॥१८॥

मूल—पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेन मयाचत ।

विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥ १९ ॥

टीका—जिसको राजा पहले वर दे चुके हुए थे,यह वर मांगा, कि राम को वनवास हो, और भरत को तिलक ॥१९॥

मूल—स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः ।

विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥ २० ॥

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।

पितुर्वचननिर्देशात् कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥ २१ ॥

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।

स्नेहाद्विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ २२ ॥

भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् ।

रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता ॥ २३ ॥

टीका—अपने वचनकी सत्यतासे, धर्म्म की फांस से बन्धा हुआ राजा दशरथ, प्यारे पुत्र राम को वनवास देता भया।२०।वह वीर पिता का वचन बतलाया जाने से, कैकेयी की भलाई के निमित्त, प्रतिज्ञा का पालन करता हुआ वन को चला गया॥२१॥(रामको) प्यार करनेवाला, सुमित्राके आनन्द को बढ़ाने वाला, भाई का प्यारा भाई विनीत लक्ष्मण, सुभ्रातृभाव का नमूना दिखलाता हुआ, स्नेह से, जाते हुए भाई के साथ गया। राम की प्यारी पत्नी, जो उसको प्राण के तुल्य (प्यारी) सदा हितकारिणी, ॥२२,२३॥

मूल—जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता ।
सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥ २४ ॥
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ।
पौरै रनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥ २५ ॥

टीका—जनक के कुल में जन्मी हुई, देवमाया की तरह बनी हुई, सारे लक्षणों से युक्त, नारियों में से उत्तम नारी।२४।सीता थी, वह भी राम के पीछे चली, जैसे रोहिणी (नक्षत्र) चन्द्र के पीछे चलती है। पुर के लोग और पिता दशरथ दूर तक उसके पीछे गये ॥२५॥

मूल—शृंगवेरपुरे सूतं गंगाकूले व्यसर्जयत् ।
गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥ २६ ॥
गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥ २७ ॥
चित्रकूट मनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् ।
रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥ २८ ॥
देवगन्धर्व संकाशास्तत्रा तेन्यवसन् सुखम् ।
चित्रकूटगते रामे पुत्रशोकातुरस्तथा ॥ २९ ॥

टीका—धर्मात्मा राम गंगा के किनारे पर शृङ्गवेरपुर में, भीलों के स्वामी अपने मित्र गुह को मिले, और वहां गुह, सीता,

लक्ष्मण के साथ मिलकर राम ने सूत को वापिस लौटाया। अब वह (तीनों) बन से बन को जाकर, और बहुत जलवाली नदियों को पार करके ॥२६,२७॥ भरद्वाज के कहने से चित्रकूट में पहुंचकर वहां एक रमणीय कुटी बना उस बन में आनन्द मनाते वह तीनों-जोकि देव गन्धर्वों के सदृश हैं-सुख से रहने लगे। जब राम चित्रकूट को चलेगये तो पुत्र के शोक से आतुर हुआ-।२९।

मूल—राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन् सुतम् ।
गते तु तस्मिन् भरतो विसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥ ३० ॥
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः ।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥ ३१ ॥

टीका—राजा दशरथ पुत्र का विलाप करता हुआ स्वर्ग को पधार गया, उसके (स्वर्ग) जाने पर वसिष्ठ आदि द्विजों (तीन वर्ण के लोगों ने भरत को ॥३०॥ राज्य करने के लिये प्रेरणा की, पर उस महाबली (=राज्य की रक्षा में समर्थ) ने भी केवल (सुभ्रातृभाव से) राज्य नहीं चाहा, किन्तु पूज्य राम को प्रसन्न करने के लिये बन को गया ॥ ३१ ॥

मूल—गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥ ३२ ॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् ।
रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥ ३३ ॥
नचैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः ।
पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्वा पुनः पुनः ॥ ३४ ॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः ।
स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥ ३५ ॥

टीका—और सच्चे पराक्रमवाले महात्मा भाई राम के पास पहुंच कर, आर्यभाव का आदर करते हुए भरतजी बिनती करने लगे ॥३२॥ तू ही राजा धर्म का जाननेवाला है, यह उसने राम को वचन कहा। राम भी, परम उदार, प्रसन्न मुख, बहुत बड़े यशवाला ॥३३॥ महाबली, पिता की आज्ञा से राज्य को नहीं चाहता भया। तब भरत के उस बड़े भाई ने उसके राज्य के लिये बार बार खड़ाऔं अपनी अमानत देकर भरत को लौटाया। सो वह अपनी कामना को बिनपाए ही राम के चरणों को छूकर-॥३४,३५॥

मूल—नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया।
गते तु भरते श्रीमान् सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥ ३६ ॥
रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च
तत्रागमन मेकाग्रो दण्डकान् प्रविवेश ह ॥ ३७ ॥

टीका—नन्दिग्राम में आ राम के आने की बाट देखता हुआ राज्य करने लगा। भरत के चले जानेपर, श्रीमान् सच्ची प्रतिज्ञावाला जितेन्द्रिय-॥३६॥ राम नगर के लोगों का वहां फिर आना सम्भव जानकर, सावधान हो दण्डकबन में प्रविष्ट हुआ ॥ ३७ ॥

मूल—प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः।
विराधं राक्षसं हत्वा शरभंग ददर्श ह ॥ ३८ ॥
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा।
अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥ ३९ ॥
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षय सायकौ।
वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥ ४० ॥

टीका—उस बड़े बन में प्रवेश करके कमलनेत्र राम ने विराध राक्षस को मारा, और शरभङ्ग मुनि के दर्शन किये ॥३८॥ तथा

सुतीक्ष्ण,अगस्त्य और अगस्त्य के भाई के(दर्शन किए)और अगस्त्य के वचन से बड़े प्रसन्न होकर, इन्द्र का एक धनुष, एक तलवार, और जिनमें बहुत तीर आजायें ऐसे दो भत्थे (तरकश) ग्रहण किये। वहां वन में रहनेवाले मुनियों के साथ रहते हुए राम के पास-

मूल-ऋषयोऽभ्यागमन् सर्वे वधायासुर रक्षसाम् ।
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् ॥ ४१ ॥
तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी ।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥ ४२ ॥

टीका-असुर और राक्षसों के वध के लिये सब ऋषि इकट्ठे होकर आए। (उनकी बात सुनकर) राम ने युद्ध में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की ॥ ४१ ॥ और उसने वहीं * रहते हुए जनस्थान † की रहनेवाली प्यारे रूपवाली शूर्पणखा नाम राक्षसी बेरूप करदी ॥ ४२ ॥

मूल-ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान् ।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥ ४३ ॥
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् ।
ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४४ ॥
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् ।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ ४५ ॥
जगामसहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा ।
तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥ ४६ ॥

टीका-तब शूर्पणखा के कहने से तय्यार हुए सारे राक्षसों अर्थात् खर त्रिशिरा और दूषण राक्षस को।४२।और उनके अनुचरों को

* दण्डक वन में ही पञ्चवटी स्थान में † जनस्थान, दण्डक में रावण की छावनी की जगह थी।

राम ने रण में मार डाला। तब अपने जाति भाइयों के वध को सुनकर रावण क्रोध से भरा हुआ ॥ ४४ ॥ मारीच नाम राक्षस को अपना साथी चुनता भया। और उस (मारीच) के वाक्य (ऐसा काम मत करो इस वाक्य) का अनादर करके रावण–जिस को काल प्रेर रहा है–उस समय मारीच को साथ ले राम के आश्रम को गया। और तब उस मायावी (इन्द्र जाली) द्वारा दोनों राजपुत्रों को दूर निकाल कर-॥ ४५, ४६ ॥

मूल–जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम्।
गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥ ४७ ॥
राघवः शोकसन्तप्तो विललापाकुलेन्द्रियः।
ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥ ४८ ॥

टीका–गृध्रजटायु को मारकर राम की पत्नी को हर लेगया। अब गृध्र को हत हुआ देखकर और सीता को हरागया सुनकर ॥ ४७ ॥ शोक से तपे हुए व्याकुल इन्द्रियों वाला राम विलाप करता भया। तिस पीछे उसी शोक से (भरे हुए) वह गृध्रजटायु को यथाविधि दाह करके–॥ ४८ ॥

मूल–मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्शह।
कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोर-दर्शनम् ॥ ४९ ॥
तं निहत्य महाबाहु र्ददाह स्वर्गतश्चसः।
स चास्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥ ५० ॥
श्रमणां धर्मनिपुणा मभिगच्छेति राघव।
सोऽभ्यागच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥ ५१ ॥
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः।
पम्पातीरे हनुमता संगतो वानरेण ह ॥ ५२ ॥

टीका–वन में सीता को ढूंढते हुए, कबन्धनामी राक्षस को देखते भए, जो रूप से विकराल, भयंकर दर्शन वाला था। ४९। महा

बाहु रामने उस को मार कर उसका दाह किया और वह स्वर्ग को गया। और उसने (राम को) धर्म पर चलने वाली एक भीलनी का पता दिया ॥ ५० ॥ कि हे राघव! धर्म में निपुण उस तपस्विनी की ओर जाओ। तब वह शत्रुओं का मारने वाला बड़ा तेजस्वी उस भीलनी के पास आया ॥ ५१ ॥ भीलनी ने भली भान्ति पूजा की, फिर वह दशरथ सुत राम पम्पा के किनारे पर हनुमान वानर से मिले ॥ ५२ ॥

मूल—हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः।
सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥ ५३ ॥
आदितस्तद् यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः।
सुग्रीव श्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥ ६० ॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्।
ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥ ६१ ॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद् दुःखितेन च।
प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥ ६२ ॥

टीका-और हनुमान्‌के वचनसे सुग्रीवसे मिले, और सुग्रीव को महाबली रामने, वह सब (अपना वृत्तान्त) बतलाया। ५३। जो आदिसेले कर हुआ था, विशेष करके सीता का वृत्तान्त। वानर सुग्रीव भी राम की वह सारी कथा सुन कर—॥ ६० ॥ प्रसन्न होकर अग्नि को साक्षी करके (अग्नि को प्रज्वलित कर, उस में होम करके उस के सन्मुख) रामके साथ मित्रता करता भया। तब दुःखित वानरराज ने प्रेम से अपनी सारी (बालि के साथ) वैर की कथा राम को बतलाई। तब रामने वालि के वध के लिये प्रतिज्ञा की ॥ ६१, ६२॥

मूल—ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः।
किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा ॥ ६३ ॥

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिंगलः ।
तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥ ६४ ॥

टीका-तब सुग्रीव उससे प्रसन्नमन और विश्वासवाला होगया, और रामसहित किष्किन्धा गुफा की तर्फ गया ।६३।और सोने की तरह पीला वह वानरश्रेष्ठ सुग्रीव वहां जाकर गर्जा,उसके इस सिंह-नाद को सुन कर वानरों का राजा (बालि) बाहर आया ॥ ६४॥

अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः ।
निजघान च तत्रैन शरेणैकेन राघवः ॥ ६५ ॥
ततः सुग्रीववचनाद् हत्वा वालिन माहवे ।
सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥ ६६ ॥

टीका—तारा से अनुमति लेकर सुग्रीव के साथ आजुटा, वहां राम ने उस को एक तीर से मार डाला ॥ ६५ ॥ सो सुग्रीव के कहने से बाली को मार कर,राघव ने,सुग्रीव को ही उसके राज्य पर स्थापन किया ॥ ६६ ॥

मूल—सच सर्वान् समानीय वानरान् वानरर्षभः ।
दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥ ६७ ॥
ततो गृध्रस्य वचनात् संपाते र्हनुमान् बली ।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥ ६८ ॥
निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च ।
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥ ६९ ॥
ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः ।
समुद्रं क्षोभयामास शरै रादित्य सन्निभैः ॥ ७० ॥

टीका—तब उस बानरश्रेष्ठ ने सारे बानरों को इकट्ठा करके सीता के देखने के लिये चारों दिशाओं को भेजा ।६७।उन में से सम्पातिगृध्र के वचन से हनुमान् बली सौ योजन लम्बे समुद्र को उलांघ गया ॥६८॥ वह महावानर सीता को निशानी देकर

और समाचार कहकर, राम को प्यारी बात कहने के लिये फिर आया ।६९। तब सुग्रीव समेत राम महासागर के किनारे पर गये। और सूर्य के तुल्य तीरों से समुद्र को हलचल में डाल दिया ॥७०॥

मूल—दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः ।
समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥ ७१ ॥
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे ।
रामः सीता मनुप्राप्य परां व्रीडा मुपागमत् ॥ ७२ ॥
तामुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि ।
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती ॥ ७३ ॥

टीका—नदियों के पति समुद्र ने अपना आप उनके सामने दिखला दिया । समुद्र के कहने के अनुसार नल से पुल बन्धवाया* ।७१। इस (पुल) से लङ्कापुरी में जाकर, युद्ध में रावण को मारकर, सीता को फिर प्राप्त होकर राम (लोकापवाद की शङ्का से) बड़ी लज्जा को प्राप्त हुए।७२।उस जन समुदाय में राम ने सीता को कठोर वचन कहा । सती सीता उसे न सहकर अग्नि में प्रविष्ट हुई ॥ ७३ ॥

मूल—ततोऽग्निवचनात् सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् ।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ७४ ॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः ।
बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्व-दैवतैः ॥ ७५ ॥

* यहां अलङ्कार से वर्णन है । सूर्य के सदृश तीर जिन से समुद्र की भीतरी दशा का पता लगाया । यही समुद्र का अपना आप दिखलाना और कहना है, कि यहां पुल बनाओ । गूढ आशय यह है, कि महापुरुष के कदम को आगे बढ़ने के लिये समुद्र और पहाड़ अपने आप रस्ता देते हैं ।

टीका—तब अग्नि के कहने से सीता को निष्पाप जान, ग्रहण किया *। महात्मा राघव के इस बड़े कर्म से तीनों लोक चर अचर सहित और देव ऋषियों के गणों समेत प्रसन्न हुए। राम सब देवताओं से पूजित हुए, प्रसन्न हुए, शोभायमान होते भये ॥ ७४–७५ ॥

मूल—अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥ ७६ ॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान्।

---

* हमारे शास्त्र इस बात का विश्वास दिलाते हैं, कि जो सर्वथा शुद्धहृदय है, उस पर यदि झूठा दोष आरोप किया जाए, तो वह अग्नि के द्वारा अपनी परीक्षा देसक्ता है, अग्नि उस को दाह नहीं करेगी। स्मृतियों में यह बात दिव्य परीक्षा के प्रकरण में आती है। पर यह विश्वास स्मृतियों से भी और ऊंचा चढ़ कर उपनिषदों में भी पाया जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक ६ खण्ड १६ में उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु को बतलाते हैं, कि "हे सौम्य! जिस तरह राज-पुरुष किसी का हाथ पकड़ कर ले आते है, कि इस ने चोरी की है। यदि उस पर चोरी का पूरा विश्वास हो, और वह इन्कारी हो, तो उस के लिये लोहा तपाते हैं और वह पकड़ता है। अब यदि वह सच्चा है, तो सचाई उस को आग से ढांपे रखती है,और वह बचजाता है। दूसरा,जो झूठ से अपने आप को ढांपने वाला है, वह नहीं बचता है। जो इसको दाह से बचाता है, वह इस जड़ में आत्मा है, हे श्वेतकेतो"! ॥ आश्चर्य यह है, कि उद्दालक ने श्वेतकेतु को आठ बार नए २ दृष्टान्तों से 'तत्त्वमसि' बतलाया, पर उस की समझ में पूरा नहीं आया। हां नवीं बार, इस आग वाले दृष्टान्त से उसको पूरा समझ में आगया। उपनिषद् कहती है "तद्धास्य विजज्ञौ, तद्धास्य विजज्ञौ" उसने जान लिया'हां उस ने जान लिया'। सो यह हमने शास्त्र का विश्वास बतलादिया है,अपनी सम्मति देने का हम कोई साहस नहीं करसक्ते ॥

अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥ ७७ ॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।
भरतस्यान्तिके रामो हनुमन्तं व्यसर्जयत् ॥ ७८ ॥

टीका—लङ्का में राक्षसों के राजा विभीषण को तिलक देकर राम कृतकृत्य हुए, दूर हुए सन्ताप वाले, प्रसन्न भए ॥ ७६ ॥ देवताओं से वर (आशीर्वाद) पाकर, और वानरों को उठाकर, अपने मित्रों के समेत पुष्पक विमान द्वारा, अयोध्या को रवाना हुए॥ ७७॥ भरद्वाज के आश्रम में पहुंचकर, सच्चे पराक्रम वाले राम ने हनुमान् को भरत के पास भेजा ॥ ७८ ॥

मूल—पुनराख्यायिकां जल्पन् सुग्रीव सहितस्तदा ।
पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥ ७९ ॥
नन्दिग्रामे जटा हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
रामः सीता मनु प्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥ ८० ॥
प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥८१॥

टीका—सुग्रीव (आदि) के सहित फिर उस पुष्पक विमान पर चढ़कर, बीती कथाएं कहते हुए नन्दिग्राम में पहुंचे ॥ ७९ ॥ नन्दिग्राम में भाइयों समेत जटा त्यागकर, निष्पाप राम सीता को फिर पाकर, फिर राज्य को प्राप्त हुए ॥८०॥ सारी प्रजा प्रसन्न, मुदित, तुष्ट, पुष्ट, सुधार्मिक, आधि व्याधि से रहित, * दुर्भिक्ष (अकाल) के भय से रहित होगई † ।

* तुष्ट=अपने २ धनों में सन्तोषवाले, पुष्ट=धनबल आदि से भरपूर। आधि=मन के रोग=चिन्ता, उदासी, ईर्ष्या, असूया आदि, और व्याधि शरीर के रोग। † इस से यह जाना जाता है, कि जब राम रावण को मार कर राज्यशासन कर रहे थे, तब वाल्मीकि ने नारद के प्रति प्रश्न किया है ।

दूसरा सर्ग (वाल्मीकि द्वारा रामायण की रचना)

मूल—नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम् ॥ १ ॥
स मुहूर्तं गते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा ।
जगाम तमसा तीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥ २ ॥
विचचारह पश्यंस्तत् सर्वतो विपुलं वनम् ॥ ३ ॥

टीका—नारद के इस वाक्य को सुनकर, वाक्य कहने में निपुण धर्मात्मा (वाल्मीकि), अपने शिष्यों के साथ उस महामुनि (नारद) की पूजा करते भए ॥१॥ और जब वह मुनि देवलोक को चले गए, तो उस के थोड़ी देर पीछे वाल्मीकि मुनि गंगा के निकट तमसा के किनारे पर गए ॥ २ ॥ और वहां किनारे पर बड़े बन की शोभा देखते हुए इधर उधर घूम रहे थे ॥ ३ ॥

मूल—तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम् ।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिः स्वनम् ॥ ४ ॥
तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः ।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः ॥ ५ ॥
तं शोणितपरीतांगं चेष्टमानं मही तले ।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुरोद करुणां गिरम् ॥ ६ ॥

टीका—कि वहां उन्होंने पास ही घूमता हुआ मीठी स्वरों वाला, कभी एक दूसरे से अलग न होने वाला चकवे चकवी का जोड़ा देखा॥४॥ मुनि के देखते देखते ही उस जोड़े में से, नर को बुरे निश्चय वाले अकारण बैरी एक भील ने मार डाला ॥ ५ ॥ अब रुधिर से भरे हुए अंगों वाले, पृथिवी तल पर लोटते हुए, मरते हुए, उस(पक्षी) को देखकर उसकी पत्नी बड़ी करुणाभरी बाणी से रुदन करने लगी६

मूल—तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम् ।
ऋषेर्धर्मात्मन स्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥ ७ ॥
ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः ।
निशम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचन मब्रवीत् ॥ ८ ॥

टीका—ऐसी रसभरी अवस्था में भील से गिराए हुए उस पक्षी को देखकर,उस धर्मात्मा ऋषि को दया उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ तब दया का वेत्ता होने से वह ब्राह्मण, रोती हुई चकवी की पुकार का सुनकर, यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ ९ ॥

टीका—हे भील ! मत बहुत बरसों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त हो,जब कि चकवी चकवे के जोड़े में से, काम से मोहित हुए एक को तूने मार डाला है ॥ ९ ॥

मूल—तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया ॥ १० ॥
चिन्तयन् स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान् मतिम् ।
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुंगवः ॥ ११ ॥

टीका—उसने जब ऐसा कहकर हृदय में दृष्टि डाली,तो उसको चिन्ता हुई. कि इस पक्षी के शोक से पीडित हुए मैंने यह (मुनिजन के अनुचित,तप के नाश करनेवाला, शाप वचन) क्या कहा ॥१०॥ उस बड़े दाना बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ ने चिन्ता करते हुए यह निश्चय किया और शिष्य (भरद्वाज) का यह कहा ॥११॥

मूल—पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥ १२ ॥
तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षे र्भावितात्मनः ।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥ १३ ॥

टीका—श्लोक के चार चरणों से बन्धा हुआ, अक्षरों में बराबर

(आठ२ अक्षर के एक २ चरण वाला) वीणा (के स्वर) और लय से युक्त यह श्लोक जो शोक से पीडित हुए मुझ से प्रवृत्त हुआ है, अब यह अन्यथा न हो*।१२।इस संस्कृतमनवाले महर्षि की यह बुद्धि हुई, कि सारा ही रामायण काव्य ऐसे (श्लोकों)से बनाउं १३

मूल—उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदाऽस्य रामस्य चकारकीर्त्तिमान् ।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः ॥१४॥
तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवर चरितं मुनि प्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥१५॥

टीका—तब उदार दृष्टिवाले उस कीर्त्तिमान् ने, उदार वृत्तान्तरूपी अर्थ के बोधक, सुहावने पदों से. सम अक्षरोंवाले सैंकड़ों श्लोकों से, यशस्वी(राम)का यश प्रकट करनेवाला काव्य बनाया१४ सो समास सन्धि और (प्रकृति प्रत्यय के) योगवाले, सम, मधुर, और स्पष्ट अर्थों वाले, वाक्यों से बन्धे हुए. मुनि से रचे हुए, रघुवर के चरित और रावण के वध को सुनो ॥ †

---

* श्लोक यश को कहते हैं, श्लोक अन्यथा न हो, इस से यह अभिप्रेत है, कि यही श्लोक यश का हेतु बने। और इसलिये उन्हों ने इसी श्लोक को रामायण का आरम्भ समझा, और इसी श्लोक के परिमाण (वज़न) पर सारा रामायण रचा। यह श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है, जिसका एक २ चरण आठ २ अक्षर का होता है, सो यह श्लोक वाल्मीकि और रामचन्द्र दोनों के यश का हेतु बना। इस बात के बोधन के लिये अगले श्लोक१४में वाल्मीकि का विशेषण कीर्तिमान् और राम का यशस्वी दिया है।

† रावण का वध, इस कहने से स्पष्ट है, कि रावण के वध तक ही वाल्मीकि ने रामायण रचा है। उत्तरकाण्ड पीछे का है। नारद ने जो वाल्मीकि को रामचरित बतलाया है, जो पहले सर्ग में लिख आए हैं, वह भी रावण के वध तक ही है। सीता का त्याग जो उत्तरकाण्ड में कहा है, उसका ज़िकर तक नहीं। महाभारत

सर्ग ३ (व० ५) कोशलदेश और अयोध्या ।

मूल—कोशलो नाम मुदितःस्फीतो जनपदो महान् । निविष्टः सर-

में भी जो बनपर्व में रामचरित दिया है, वह भी रावण के बध तक ही है, यह स्पष्ट और पुष्कल प्रमाण इस बात के हैं, कि उत्तरकाण्ड पीछे का है । और इस में कोई सन्देह शेष नहीं रहता, जब हम पुराने टीकाकारों का यह नोट देखते हैं, कि उत्तरकाण्ड रामायण का खिलभाग (तितिम्मा) है, जैसा कि महाभारत का हरिवंश (देखो इसी श्लोक की व्याख्या में रामायण तिलक) । यद्यपि इससे आगे तीसरे और चौथे सर्ग में उत्तरकाण्ड का ज़िकर है,परन्तु तनिक ध्यान देने से यह और भी स्पष्ट होजायगा । कि तीसरा और चौथा सर्ग, उत्तरकाण्ड को रामयण का हिस्सा बनाने के लिए, पीछे डाले गये हैं । यह बात बड़ी स्पष्ट है । देखिये रामायण की प्रस्तावना इन दो सर्गों में पूर्ण होगई । वाल्मीकि के पूछने पर नारद ने वाल्मीकि को रामचन्द्र का जीवन चरित बतला दिया । " मा निषाद " इत्यादि श्लोक रामायण के बनने का सूत्रपात हुआ, और यह बतला दिया, कि मुनि ने सारा रामायण ऐसे ही श्लोकों में रचा । और अन्त में कहा, कि मुनि से रचे हुए रामचरित और रावण के बध को सुनो । अब यह सीधी बात है, कि इस से आगे रामायण आरम्भ होजाना चाहिए । पर रामायण आरम्भ पांचवें सर्ग से होता है, तीसरे का आरम्भ यह है "श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थ सहितं हितम् । व्यक्त मन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमतः"= धर्म्म और अर्थ से युक्त हितकारी संपूर्ण वृत्तान्त को सुनकर वाल्मीकि जी उस बुद्धिमान् (रामचन्द्र) का, जो इतिवृत्त है, उस को, फिर स्पष्ट ढूंढने लगे । अब यह स्पष्ट है, कि यहां यह बात सम्बन्ध नहीं खाती । पीछे रामायण का बनजाना कहकर, यह कहा है, कि इसको सुनो । अब फिर नए सिरे वृत्तान्त ढूंढने का क्या अर्थ,और क्या सम्बन्ध । तीसरे सर्ग में नए सिरेसे विषयों की अनुक्रमणिका दीगई है, जैसी कि पहले सर्ग में है । दुबारा अनुक्र-

यूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १ ॥ अयोध्या नाम नगरी तत्रासी-
ल्लोकविश्रुता । मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥ २ ॥
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी । श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा
सुविभक्तमहापथा ॥ ३ ॥ राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता ।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥४॥

टीका—हर्ष से भरा हुआ, दिन पर दिन वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, धन धान्य से भरपूर, कोशल नाम महान् देश है ।१। उस में जगत् प्रसिद्ध अयोध्या नाम नगरी है, जो नगरी कि मनुष्यों के राजा मनु ने स्वयं बनाई थी ।२। वह महपुरी १२ योजन (४८ कोस) लम्बी और ३ योजन (१२ कोस) चौड़ी है सारी ही शोभा वाली है, और उसके महापथ (सड़कें बाजार और गलियां) बड़े खुले हैं ।३। वह एक बहुत खुले बड़े राजमार्ग से सजी हुई है जिस पर कि सदा फूल खिले रहते हैं, और जल छिड़का रहता है ॥ ४ ॥

मणी देने का तात्पर्य्य यह है, कि पहली अनुक्रमणी में जो उत्तर काण्ड का नाम नहीं आया, वह भी आजाए । चौथे सर्ग में इसबात का वर्णन है, कि वाल्मीकि मुनि ने रामायण बनाकर आश्रमवासी कुश और लव को सिखाया, और वह नगर में गाते हुए श्रीरामचन्द्र जी की दृष्टि पड़े, तब श्रीरामचन्द्र जी ने उनको दरबार में बुलाकर उनसे रामायण सुना । इस चौथे सर्ग में भी उत्तरकाण्ड का कथन है, यहां रामायण की श्लोक संख्या २४००० हजार कही है, जब कि दूसरे सर्ग की समाप्ति में "सैकड़ों श्लोकों से" इतना ही कहा है । यहां कुश और लव को इकट्ठा मिलाकर कुशीलव कहा है, किन्तु कोई हेतु नहीं, कि "कुशलवौ" न कहकर "कुशीलवौ" क्यों कहा जाय । यह सम्भव है, कि नट का नाम जो कुशीलव है, उसका व्युत्पादन इस प्रकार किया हो ॥

मूल—तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः। दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥५॥ इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी। महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ ६ ॥ यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता। तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता॥७॥ तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुता । नरास्तुष्टा धनैःस्वैःस्वैर-लुब्धाःसत्यवादिनः॥८॥नाल्पसन्निचयःकश्चिदासीत्तस्मिन् पुरोत्तमे। कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥ ९ ॥

टीका—उस अयोध्यापुरी में वेदवेत्ता, सबका संग्राहक (कदरदान) दूरदर्शी, महातेजस्वी, पुर और देश के लोगों का प्यारा।५। इक्ष्वाकुओं* का अतिरथ बड़ा शूरवीर=Great Warrior(fighting from a car) सोमयाजी धर्मपरायण जितेन्द्रिय, महर्षियों के तुल्य तीनों लोक में विख्यात राजऋषि।६। राजा दशरथ सारी प्रजा का सब ओर से ऐसा रक्षक था, जैसा कि महातेजस्वी मनु अपनी प्रजा का परिरक्षक था।७।उस श्रेष्ठपुरी में सारे लोग हृष्ट(खुश), धर्मात्मा, बहुश्रुत (गुरुओं से शास्त्र का और वृद्धों से उनके अनुभव को बहुत सुने हुए), अपने२ धनों से सन्तुष्ट लोभ से रहित, सत्यवादी थे।८। उस उत्तम पुर में कोई कुटुम्बी ऐसा न था, जिसके पास आवश्यक वस्तुओं

* रामचन्द्र के बड़ों में इक्ष्वाकु, पुरञ्जय और रघु बड़े प्रतापी राजे हुए हैं। जिन्होंने नाम पैदा किया है! इन में से पुरञ्जय को ककुत्स्थ पदवी मिली थी, इन नामी राजों के नाम पर सारे सूर्य्य वंशियों को बुलाया जाता था। इसलिये दशरथ वा राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इनके लिये ऐक्ष्वाक, काकुत्स्थ वा राघव शब्द आए हैं, और सूर्य्य वंशी सारी जाति के लिये इक्ष्वाकु वा रघु शब्द आए हैं।

का सञ्चय थोड़ा हो, जिसके काम अड़े रहते हों, वा जिसके पास गौ घोड़े और धनधान्य की बहुतायत न हो ॥ ९ ॥

मूल—कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् । द्रष्टुं शक्य मयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिक ॥१०॥सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः । मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ११ नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् । नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥१२॥ नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः । कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥ १३ ॥

टीका—अयोध्या में कहीं कामी (केवल काम में रत) कदर्य * (कंजूस). दुर्जन अविद्वान् वा नास्तिक पुरुष का देखना अशक्य था ।१०। सारे नर नारी—धर्मशील, पूरे संयमी. मोद से भरे हुए, शील और बर्ताव में महर्षियों की तरह निर्मल थे ।११। अयोध्या में न कोई अस्वच्छ भोजन करने वाला. न अदाता, न सोने के अङ्गद (बहादुरों का डौले का भूषण माला और कड़े न पहने हुए दिखलाई देता था. और (साथ ही इन अमीरी में कोई अजितेन्द्रिय नहीं था. , न कोई अग्निहोत्र से रहित, न सोमयाग से रहित, न क्षुद्र. न सदाचार से हीन न सङ्कर वर्ण था ॥१२,१३॥

---

* आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत् ।
लोभाद्यः पितरौ भ्रातॄन् स कदर्य इति स्मृतः ॥

जो (धन के होते हुए) लोभ से युक्त हुआ अपने आप को, माता पिता पुत्र स्त्री और भाई बहिनों को तथा धर्मकार्य्य (देश जाति की सेवा वा धर्म के प्रचार) को तंग रखे (इनमें पूरा खर्च न करे) वह कदर्य कहा जाता है ।

मूल—स्वकर्मनिरता नित्यं ब्रह्मणा विजितेन्द्रियाः । दानाध्ययन
शीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥१४॥नास्तिको नानृती वापि न
कश्चिदबहुश्रुतः । नासूयको नाशक्तो नाविद्वान् विद्यते क्वचित्॥१५
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् । द्रष्टुं शक्यमयो-
ध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान् ॥ १६ ॥

टीका—ब्राह्मण सदा अपने कर्म में रते हुए, इन्द्रियों को जीते हुए, दान देने और पढ़ने के स्वभाव वाले, और दान लेने में संकोच रखने वाले थे । १४ । न कहीं कोई नास्तिक, न झूठ बोलने वाला, न अबहुश्रुत (बहुत शास्त्र न सुना हुआ), न असूया वाला, न (अपने लोक परलोक के अर्थ साधन में) अशक्त, न अविद्वान् ।१५। अयोध्या में कोई ऐसा नर नारी नहीं दिखाता है, जो श्रीमान् न हो वा रूपवान् न हो, अथवा राजा में भक्तिमान् न हो । १६ ।

मूल—वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः । कृतज्ञाश्च वदान्याश्च
शूराविक्रमसंयुताः॥१७॥दीर्घायुषो नराःसर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥ १८ ॥ क्षत्रं ब्रह्ममुखं
चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः । शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुप-
चारिणः ॥ १९ ॥

टीका—ब्राह्मणादि चारों वर्णों में लोग देवता और अतिथियों के पूजक, कृतज्ञ, बड़े दानी, शूरबीर और पराक्रम से युक्त थे ॥ १७ ॥ उस उत्तमपुर में सब लोग दीर्घ आयु वाले, धर्म और सत्य का सहारा पकड़े हुए पुत्रपोतों से और स्त्रियों से सदा युक्त थे । १८ । क्षत्रिय ब्रह्मप्रधान (ब्राह्मणों को प्रधान किये हुए) थे, वैश्य क्षत्रियों के अनुकूल थे, और शूद्र अपने कर्म में तत्पर हुए तीनों वर्णों के सेवक थे ॥१९॥

मूल—सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता। यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमता॥२०॥योधानामग्निकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम। सम्पूर्णा कृतविद्यानां गुहा केसरिणामिव ॥२१॥ काम्बोज विषये जातैर्बाल्हीकैश्च हयोत्तमैः। वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णा हरिहयोत्तमैः ॥२२॥ विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि। मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्वतोपमैः ॥ २३ ॥

टीका—इक्ष्वाकुओं का राजा उस पुरी की ऐसी ठीक२ रक्षा कर रहा था, जैसे पूर्वकाल में मनुष्यों के राजा बुद्धिमान् मनु ने की थी। २०। जो पुरी, अग्नि के तुल्य (भखते हुए चेहरों वाले), अकुटिल, (अनादर को) न सहने वाले, शस्त्रविद्या में बड़े निपुण योधों से भरी हुई, केसरी शेरों (बब्बर शेरों) की गुफा के सदृश थी।२१। काम्बोज, बाल्हीक (बलख,बख्तर) और वनायु देशों में उत्पन्न हुए, और सिन्धुनद के समीप उत्पन्न हुए उच्चैश्रवा*जैसे उत्तम घोड़ों से पूर्ण थी। २२। और विन्ध्याचल और हिमालय से उत्पन्न हुए, पर्वतों के तुल्य (महाकाय), बडे बलवाले,मद से भरे हुए मस्त हाथियों से पूर्ण थी ॥ २३ ॥

मूल—ऐरावतकुलीनैश्च महापद्मकुलैस्तथा। अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः॥२४॥भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव भद्रमन्द्रमृगैस्तथा। भद्र मन्द्रैर्भद्रमृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी ॥२५॥ नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसंनिभैः। सा योजने द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते॥ ॥२६॥ तां पुरीं स महातेजा राजा दशरथो महान्। शशास शमितामित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥ २७ ॥

टीका—ऐरावत नसल के, महापद्म नसल के, अञ्जन नसल के

* उच्चैश्रवा इन्द्र का घोड़ा।

और वामन नसल के हाथियों से.तथा भद्र, मन्द्र, मृग।२४। तथा भद्रमन्द्र, भद्रमृग, मन्द्रमृग और भद्रमन्द्रमृग*हाथियों से।२५। जोकि मदमत्त, पर्वत के तुल्य थे, ऐसे हाथियों से बाहर की तर्फ पूरे दो योजनों में सदा पूर्ण वह पुरी अपने नाम को सार्थक करती हुई† शोभा पा रही थी ॥ २६ ॥ उस पुरी को महातेजस्वी महान् राजा दशरथ, शत्रुओं को जीत कर नक्षत्रों में चन्द्र के तुल्य शासन कर रहा था ॥ २७ ॥

सर्ग ४ (व० ७) (राजा के मन्त्री)

मूल—अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः। शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः ।१। धृष्टिर्जयन्तो विजयो सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥ २ ॥ ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ। वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे ॥ ३ ॥ सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः काश्यपोऽप्यथ गौतमः। मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः ॥ ४ ॥ तेजः क्षमायशः प्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः। क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वच ।५

टीका—आठ उस यशस्वी वीर के अमात्य थे, शुचि (ईमानदार) अनुरक्त (वफादार) और राजकृत्यों में सदा तत्पर॥१॥धृष्टि, जयन्त, विजय सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप,धर्मपाल और आठवां अर्थ का जानने वाला सुमन्त्र ॥२॥ दो ऋषिश्रेष्ठ उसके ऋत्विज थे वसिष्ठ और वामदेव. तथा और भी ऋत्विज थे, और यह सब मन्त्री

* हिमालय, विन्ध्याचल और सह्य पर्वत के हाथी क्रम से भद्र, मन्द्र और मृग कहलाते हैं। इनके मेल से भद्रमन्द्र, भद्रमृग, मन्द्रमृग और भद्रमन्द्र मृग बनते हैं॥

† अयोध्या अर्थात् जिस से युद्ध न किया जासके।



भी थे ॥ ३ ॥ सुयज्ञ, जबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घ आयुवाला मार्कण्डेय और द्विजन्मा कात्यायन ॥४॥ यह सब (अमात्य, ऋत्विज्) तेज क्षमा और यश को पाए हुए, हंसकर बात करनवाले थे, जो क्रोध से, काम से वा किसी अर्थ के हेतु, कभी झूठ वचन न बोलें ॥ ५ ॥

मूल—तेषामविदितं किञ्चित् स्वेषु नास्ति परेषु वा । क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम् ॥६॥ शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां संप्रजानताम् । नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित् ॥ ७ ॥ कश्चिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः । प्रशान्तं सर्वमेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत् ॥८॥ ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः । उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुंधराम् ॥ ९ ॥ अवेक्ष्यमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रक्षयन् । प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन् ॥ १० ॥

टीका—उनको अपनों वा बेगानों में कुछ बे मालूम न था, यहां तक कि गुप्तचरों (जासूसों) द्वारा किया गया, किया जाता हुआ, वा करना चाहा हुआ भी बेमालूम न था ॥ ६ ॥ ऐसे शुद्ध, (परस्पर) एक बुद्धिवाले (पुर और देश का वृत्तान्त) ठीक २ जाननेवालों के पुर तथा देश में कहीं कोई मृषावादी (जअलसाज़) नर न था ॥७॥ न कहीं दुष्ट, न परनारी में रति वाला था, (उनकी जागृति से) वह पुरवर और सारा देश अमन चैन में था ॥ ८ ॥ ऐसे (उत्तम) गुणों से युक्त, उन मन्त्रियों के साथ निष्पाप राजा दशरथ पृथिवी का शासन कर रहा था ॥ ९ ॥ गुप्तचरों द्वारा देखकर, प्रजा की धर्म से रक्षा करता हुआ, प्रजा का पालन करता हुआ, और अधर्म को (उनसे) परे हटाता हुआ (शासन कर रहा था) ॥ १० ॥

सर्ग ५ (व० ८) यज्ञ करने का निश्चय।

मूल—तस्य चैवंप्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः ॥१॥ चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम् ॥ २ ॥ स निश्चितां मतिं कृत्वा यष्टव्यमिति बुद्धिमान्। मन्त्रिभिः सह धर्मात्मा सर्वैरपि कृतात्मभिः ॥३॥ ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तम। शीघ्रमानय मे सर्वान्गुरूंस्तान्सपुरोहितान्॥४॥ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः। समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् ॥ ५ ॥

टीका—उस, ऐसे प्रभाववाले, धर्मज्ञ महात्मा का वंश चलाने वाला कोई पुत्र नहीं था, अतएव पुत्र के लिये वह संतप्त होरहा था ॥१॥ इसी सोच में पड़े हुए उस महात्मा को यह विचार उत्पन्न हुआ, कि पुत्र के लिये क्यों न अश्वमेध यज्ञ करूं ॥२॥ तब उस बुद्धिमान् धर्मात्मा ने सारे धार्मिक मन्त्रियों के साथ यह विचार निश्चित किया, कि यज्ञ अवश्य करना चाहिये ॥३॥ ऐसा निश्चय करके वह महातेजस्वी सुमन्त्र से बोला, हे मन्त्रिसत्तम ! पुरोहित समेत मेरे सारे गुरुओं को जल्दी बुला लाओ ॥ ५ ॥ आज्ञा पाते ही सुमन्त्र त्वरितगति हो तुरत पहुंचकर उन सब को साथ ले आया, जो सब के सब वेदपारग थे ॥ ५ ॥

मूल—सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम्। पुरोहितं वसिष्ठं च ये चाप्यन्ये द्विजोत्तमाः॥६॥तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा। इदं धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ मम तातप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम्। तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ॥ ८ ॥ तदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। कथं प्राप्स्याम्यहं कामं बुद्धिरत्र विचिन्त्यताम् ॥९॥

टीका—सुयज्ञ,वामदेव,जाबालि,काश्यप,पुरोहित वसिष्ठ और दूसरे ब्राह्मण॥६॥धर्मात्मा राजा दशरथ उन सब को आदर करके धर्म अर्थ से युक्त यह वचन बोला ॥ ७ ॥ पुत्र के लिये संतप्त हूं, अत एव मुझे सुख नहीं, सो मैं इस प्रयोजन के लिये अश्वमेध यज्ञ करूं यह मेरा विचार है ॥ ८ ॥ मैं पूरी शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ करना चाहता हूं. आप यह बुद्धि सोचें, कि किसतरह मैं अपने मनोरथ को पाऊं ॥ ९ ॥

मूल—ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्य पूजयन् । वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखेरितम् ॥१०॥ऊचुश्च परमप्रीताः सर्वे दशरथं वचः । संभारः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥११॥ सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । सर्वथा प्राप्यसे पुत्रानभिप्रेतांश्च पार्थिव ॥ १२ ॥

टीका—राजा के मुख से निकले हुए इस वचन को वसिष्ठ आदि सब ब्राह्मणों ने 'साधु' ऐसा कहकर आदर दिया ॥ १० ॥ और बड़े प्रसन्न होकर दशरथ से यह वचन बोले, सारे संभार (सामग्री) तय्यार होवें, और घोड़ा छोड़ दिया जाए ॥ ॥११ ॥ सरयू के उत्तरी किनारे पर यज्ञ भूमि बने, हे पृथ्वीनाथ ! आप निःसन्देह मनोवाञ्छित पुत्रों को पाएंगे—॥ १२ ॥

मूल—यस्य ते धार्मिका बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता । ततस्तुष्टोऽभवद्राजा श्रुत्वैतद्‌द्विजभाषितम् ॥ ॥१३ ॥ अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षव्याकुललोचनः । संभारा संभ्रियन्तां मे गुरूणां वचनादिह ॥ १४ ॥ समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ १५ ॥

टीका--जिस को पुत्र के लिये यह धार्मिक बुद्धि मिली है। तब ब्राह्मणों के इस वचन (अवश्य मनो वाञ्छित पुत्रों को पाएंगे) को सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ ॥ १३ ॥ आनन्द के आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाला मन्त्रियों से बोला 'गुरुओं के बचनानुसार मेरे लिये संभार तैयार करो ॥१४॥ समर्थ पुरुषों के अधिकार में (स्वतन्त्र घूमने के लिये) घोड़ा छोड़ो, उपाध्याय साथ हो, और सरयू के उत्तरी किनारे पर यज्ञभूमि बनाओ॥१५॥

मूल--इत्युक्त्वा नृप शार्दूलः सचिवान् समुपस्थितान् । विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः ॥ १६ ॥ ततः स गत्वा ताः पत्नी नरेन्द्रो हृदयंगमाः । उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येऽहं सुतकारणात् ॥ १७ ॥ तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम् । मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये ॥ १८ ॥

टीका--उपस्थित मन्त्रियों को यह आज्ञा देकर और विसर्जन करके वह महामति राजशार्दूल अपने महल में प्रविष्ट हुआ ॥ १६ ॥ और हृदय की प्यारी उन पत्नियों से जाकर बोला, तुम (यज्ञ की) दीक्षा में जाकर प्रविष्ट होवो, मैं पुत्र के अर्थ यज्ञ करूंगा ॥ १७ ॥ इस बड़े सुहावने वचन से उन सुहावनी कान्तिवालियों के मुख पद्म ऐसी शोभावाले होगये, जैसे जाड़े के लङ्घ जाने पर (वसन्त में) पद्म शोभावाले होते हैं ॥१८॥

सर्ग ६ (व० १३-१७) यज्ञ कर्म का पूरा होना।

मूल--ततो वसिष्ठप्रमुखा सर्व एव द्विजोत्तमाः। ऋष्यश्रृङ्गंपुरस्कृत्य यज्ञकर्मारभंस्तदा ॥१॥ यज्ञवाटं गताः सर्वे यथाशास्त्रं यथाविधि । श्रीमांश्च सह पत्नीभि राजा दीक्षामुपाविशत् ॥२॥

कर्म कुर्वन्ति विधिवद् याजका वेदपारगाः । यथाविधि यथान्यायं परिक्रामन्ति शास्त्रतः ॥ ३ ॥ न चाहुतमभूत् तत्र स्खलितं वा न किञ्चन । दृश्यते ब्रह्मवत् सर्वं क्षेमयुक्तं हि चक्रिरे ॥ ४ ॥

टीका--तब वसिष्ठ आदि सारे ब्राह्मण ऋष्यशृङ्ग*को आगे करके यज्ञशाला में गये, और शास्त्रोक्त विधि से कर्म आरम्भ किया, श्रीमान् राजा पत्नियों सहित दीक्षा में प्रविष्ट हुआ ॥१-२॥ वेद के पार पहुंचे हुए याजक (यज्ञ करने वाले) विधि के अनुसार, युक्ति के अनुसार अपनी २ बारी शास्त्रानुसार कर्म करने लगे ॥ ३ ॥ न वहां अन्यथा होम हुआ, न कहीं किसी का फिसलना दीखता है, सब कुछ मन्त्रों से युक्त विघ्न रहित पूरा किया गया ॥ ४ ॥

मूल--दिवसे दिवसे तत्र संस्तरे कुशला द्विजाः । सर्वकर्माणि चक्रुस्ते यथा शास्त्रं प्रचोदिताः ॥ ५ ॥ क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः । ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः ॥ ६ ॥ + ऋत्विजस्त्वब्रुवन् सर्वे राजानं गतकिल्बिषम् । भवानेव महीं कृत्स्ना मेको रक्षितु मर्हति ॥ ७ ॥+न भूम्या कार्य मस्माकं न हि शक्ताः स्म पालने । रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप ॥ ८ ॥

टीका--दिन २ वहां यज्ञ में निपुण ब्राह्मण यथाशास्त्र प्रेरे जाकर कर्मों को करते भए ॥ ५ ॥ तब ठीक २ यज्ञ को समाप्त करके कुल के बढाने की इच्छावाला वह राजा ऋत्विजों

---

* ऋष्यशृङ्ग एक बडे तपस्वी और वेदवेत्ता ऋषि थे, दशरथ के सखा अङ्गदेश के राजा लोमपादकी कन्या शान्ता इन से ब्याही थी ।

को (दक्षिणा में) पृथिवी देता भया ॥ ६ ॥ पर ऋत्विज सारे निष्पाप हुए राजा से बोले । आपही एक इस सारी पृथिवी की रक्षा करने योग्य हैं ॥ ७ ॥ हमें पृथिवी से काम नहीं, न हम इस के पालन में समर्थ हैं, क्योंकि हे राजन् ! हम सर्वदा स्वाध्याय के करने में रते हुए हैं ॥ ८ ॥

मूल--निष्क्रियं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति । मणिरत्नं सुवर्णं वा गावो यद्वा समुद्यतम् ॥ ९ ॥ ततः प्रीतेषु विधिवद् द्विजेषु द्विजवत्सलः । प्रणाम मकरोत् तेषां हर्षव्याकुलितेन्द्रियः ॥ १० ॥ तस्याऽऽशिषोऽथ विविधा ब्राह्मणैः समुदाहृताः । ततोऽब्रवीद् ऋष्यश्रृङ्गं राजा दशरथस्तदा ॥ ११ ॥ कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्त्तु मर्हसि सुव्रत । तथेति च स राजान मुवाच द्विजसत्तमः ॥ १२ ॥ भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः ।१३।

टीका--हमें कुछ उस का थोड़ा बहुत तबादला दे दीजिये, बहुमूल्य रत्न वा सुवर्ण वा गौएं, अथवा जो कुछ तय्यार हो॥९॥ तब यथाविधि (गौ आदि की दक्षिणा से) ब्राह्मणों के प्रसन्न होने पर ब्राह्मणों का प्यार करने वाले, आनन्द के आंसुओं से भरे हुए नेत्रोंवाले, उस राजा ने उनको प्रणाम किया ॥१०॥ उस समय ब्राह्मणों ने उस को विविध आशिर्वाद दिये, तब राजा दशरथ ऋष्यश्रृङ्ग से बोले ॥ ११ ॥ हे अच्छे व्रतों वाले आपकी कृपा हो, मेरे कुल की वृद्धि हो। उस ब्राह्मणवर ने उत्तर में 'तथास्तु' कहकर कहा ॥१२॥ होंगे हे राजन् ! चार पुत्र जो तेरे कुल को ऊंचा उठाएंगे (तेरे कुल का नाम पैदा करेंगे) ॥ १३ ॥

सर्ग ७ (व० १८) रामादि का जन्म और विश्वामित्र का आगमन

मूल--ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः । ततश्च द्वादशे

मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ १ ॥ नक्षत्रेऽदितिदैवत्येस्वोच्च-संस्थेषु पञ्चसु । ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥ २ ॥ कौशल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् । लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥ ३ ॥ भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्य-पराक्रमः । अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राऽजनयत्सुतौ ॥ ४ ॥

टीका—यज्ञ को समाप्त हुए छः ऋतु बीत चुके, तब बारहवें महीने चैत्रमास नवमी तिथि * ॥ १ ॥ अदिति देवतावाले (अर्थात् पुनर्वसु) नक्षत्र में, जब कि पांचों ग्रह अपने उच्चस्थानों में थे † और बृहस्पति चन्द्रमा के साथ था, उस समय कर्क लग्न में ॥२॥ कौशल्या ने दिव्य लक्षणों से युक्त राम को जन्म दिया, जिस के नेत्र लाल, भुजा बडी, होंठ लाल और ध्वनि दुन्दुभी के तुल्य थी ॥ ३ ॥ कैकेयी में सच्चे पराक्रमवाला भरत उत्पन्न हुआ, और सुमित्री ने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न इन दो पुत्रों को जन्म दिया॥४॥

मूल--पुष्ये जातस्तु भरतो मीन लग्ने प्रसन्नधीः । सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ ॥ ५ ॥ उत्सवश्च महानासी-द्योध्यायां जनाकुलः । रथाश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः ॥ ६ ॥गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः । विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विताः ॥७॥ प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधबन्दिनाम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रसः ॥ ८ ॥

टीका—पुष्यनक्षत्र में मीन लग्न में निर्मल बुद्धिवाला भरत उत्पन्न हुआ, और अश्लेषा नक्षत्र में कर्क लग्न में सूर्य के उदय होते हुए सुमित्रा के दोनों पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ॥ ५ ॥

* यही तिथि इस महापुरुष की जन्मतिथि होने से अब रामनवमी के नाम से प्रसिद्ध है। † सूर्य, मङ्गल, शनि, बृहस्पति, शुक्र ग्रह मेष मकर तुला कर्क मीन में थे।

अयोध्या में बड़ी भीड़ भाड़का महान् उत्सव हुआ, गलियां नट और नर्तकों से (नचैयों) से भरी हुईं लोगों से भीड़ी हुई थी ॥ ६ ॥ वहां बड़ी खुली गलियें गवैयों और बाजों के शब्दों से गूंजती हुईं, सब प्रकार के रत्नों से युक्त चमकती थीं ॥ ७ ॥ पुराण पढ़ने वालों, वंशावली पढ़ने वालों, और स्तुति पढ़ने वालों को राजा ने पारितोषिक दिये, और ब्राह्मणों को धन और बहुत सी गौएं दीं ॥ ८ ॥

मूल—अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत् । ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयीसुतम् ॥ ९ ॥ सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा । वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा ॥ १० ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि । अददद्ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु ॥ ११ ॥ तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् । सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः ॥ १२ ॥

टीका—ग्यारह दिन बीतने पर उन का नाम-करण किया, सब से बड़े महात्मा का नाम राम, कैकेयी के पुत्र का नाम भरत, ॥ ९ ॥ सुमित्रा के पुत्रों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न। यह नाम परम प्रसन्न हुए वसिष्ठ ने उस समय किये॥१०॥ब्राह्मणों को भोजन दिया और पुर और देश के लोगों को भी, और ब्राह्मणों को बहुत से निर्मल रत्न दिये ॥ ११ ॥ जन्म से लेकर उन के सारे संस्कार वसिष्ठ ने कराए। सारे वेद के जानने वाले शूरवीर थे, सारे लोक के हित में रते हुए थे ॥ १२ ॥

मूल—सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः । तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ १३ ॥ इष्टः सर्वस्य लोकस्य

शशाङ्क इव निर्मलः । गजस्कंधेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु संमतः ॥१४॥ धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूणुषणे रतः । बाल्यात्प्रभति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥ १५ ॥ रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः। सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः॥१६।

टीका—सारे ज्ञान में पूर्ण, सारे गुणों में पूर्ण थे । और उन में से भी सच्चे पराक्रम वाला महातेजस्वी राम ॥१३॥ चन्द्र की तरह निर्मल और सारे लोक का प्यारा था। हाथी के कंधे पर, घोड़े की पीठ पर, और रथ की चालों में बड़ा निपुण था ॥१४॥ धनुर्वेद (शस्त्रास्त्र विद्या) में तत्पर, पिता की सेवा में रता हुआ था। लोक के प्यारे, बड़े भाई राम का इस लक्ष्मी बढ़ाने वाला लक्ष्मण बालकपन से लेकर बड़ा स्नेही था, अपने शरीर से भी बढकर उसका प्रिय करनेवाला था ॥ १५,१६ ॥

मूल—लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो बहिः प्राण इवापरः । न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥ मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना । यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ॥१८॥ अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् । भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः ॥१९॥ प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः । यदा ज्ञानसम्पन्नाःसर्वे समुदिता गुणैः ॥२०॥ अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति । चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायः सबान्धवः ॥२१॥ तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः । अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥२२॥

टीका—लक्ष्मी से पूर्ण लक्ष्मण मानों उसका दूसरा बाहर का प्राण (प्राण की तरह प्यारा) था। वह पुरुषोत्तम उस के

विना नींद नहीं पाता था ॥१७॥ बिना उसके पास आए स्वच्छ भोजन को नहीं खाता था। जब राम घोड़े पर सवार हो शिकार को जाते॥१८॥तो यह धनुष धारकर (राम के शरीर की) रक्षा करता हुआ उनके पीछे चलता। भरत को भी शत्रुघ्न, जोकि लक्ष्मण का छोटा भाई था, प्राणों से अधिक प्यारा था, और उसको वह प्यारा था। वह जब सारे भाई ज्ञान में अमीर औरगुणों से भरपूर होगए ॥१९-२०॥ तब धर्मात्मा राजा दशरथ उनके विवाह के लिये पुरोहित और बान्धवों के साथ सोचने लगे ॥२१॥ जब वह महात्मा मन्त्रियों के मध्य में बैठे ऐसा सोच रहे थे,तब महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र वहां आए॥२२॥

मूल—स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह। शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम् ॥२३॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राज्ञो वेश्मप्रदुद्रुवुः। ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा ॥२४॥ प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाःसमाहितः॥२५॥प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः। स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम् ॥२६॥

टीका—वह राजा का दर्शन चाहते हुए द्वारपालों से बोले, शीघ्र जाकर मेरा आना बतलाओ। कुशिकवंशी गाधि का पुत्र आया है ॥२३॥ उनके इस वचन को सुनकर वह राजा के भवन की तर्फ भागे गए, और राजभवन में जाकर उन्होंने इक्ष्वाकुओं के राजा से निवेदन किया, कि ऋषि विश्वामित्र पधारे हैं। उनके इस वचन को सुनकर दशरथ एकाग्रचित्त हो पुरोहित समेत ॥२३-२४-२५॥ प्रसन्न हुए लेने को आगे बढ़े

जैसे इन्द्र बृहस्पति के (आदर में आगे बढ़ता है)। तेज से भखते हुए तीक्ष्ण व्रतोंवाले तपस्वी को देखकर ॥ २६ ॥

मूल—प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत्। स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥२७॥ कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम्। पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च॥ २८ ॥

टीका—प्रसन्न मुख हुए राजा अर्घ्य लिवा लाए, वह राजा से शास्त्रोक्त विधि से अर्घ्य स्वीकार करके ॥२७॥ पुर, कोश, देश, बन्धुओं और सुहृदों में कुशल और वृद्धि पूछते भए ॥२८॥

मूल—अपि ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जिताः। दैवं च मानुषं चैव कर्म ते साध्वनुष्ठितम्॥२९॥ वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुंगवः। ऋषींश्च तान्यथान्यायं महाभाग उवाचह॥३०॥ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम्। विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्च यथार्हतः

टीका—क्या आपके आधीन राजे सब झुके हुए हैं, शत्रु सारे जीते हुए हैं, और दैव तथा मानुष कर्म (अग्निहोत्रादि और प्रजापालनादि) ठीक रहते हैं॥२९॥ फिर वह मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ से मिलकर और दूसरे ऋषियों से मिलकर यथाविधि उनसे कुशल पूछते भए ॥३०॥ वह सब प्रसन्नमन हुए उस राजा के मन्दिर में प्रविष्ट हुए, और राजा से आदर पाकर यथा योग्य बैठ गए ॥ ३१ ॥

मूल—अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम्। उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन्॥३२॥यथाऽमृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके। यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै॥३३॥ प्रनष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः। तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने॥३४

टीका—अब परम उदार राजा प्रसन्नमन हुआ महामुनि विश्वामित्र का बड़े हर्ष से आदर करता हुआ बोला॥३२॥जैसे किसी को

अमृत की प्राप्ति हो, जैसे मरुभूमि में वर्षा हो। जैसे निःसन्तान के घर सदृश (वर्ण, रूप आयु और गुणों में तुल्य) स्त्री से पुत्र का जन्म हो ॥३३॥ जैसे खोई वस्तु का लाभ हो, और जैसा किसी उत्सव का हर्ष हो, वैसे आपका आगमन मानता हूं, हे महामुने! आपका आगमन शुभ हो॥ ३४ ॥

मूल—कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः । पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद ॥३५॥+अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । यस्माद्विप्रेन्द्रमद्राक्षं सुप्रभाता निशा मम॥३६ पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः । ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ॥३७॥ तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम । शुभक्षेत्रगतश्चाहं तव संदर्शनात्प्रभो ॥३८॥+ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति । इच्छाम्यनुगृहीतोऽहंत्वदर्थं परिवृद्धये ॥३९॥

टीका—इस हर्ष से भरा हुआ मैं आप की कौनबड़ी कामना किस प्रकार पूरी करूं, हे ब्रह्मन्! आप मेरे पात्र (सब प्रकार की सेवा के योग्य) हैं, हे मान के देने वाले! आप मेरे भाग्य से आए हैं ॥३५॥ आज मेरा जन्म सफल हुआ है, आज मेरा जीवन सुजीवन हुआ है। क्योंकि आज एक उत्तम ब्राह्मण का दर्शन किया है, मेरी रात आज शुभ प्रभात वाली हुई है ॥३६॥ पहले आप राजऋषि शब्द से पुकारे जाकर, फिर तप से चमकते हुए तेज वाले होकर, ब्रह्मऋषिपन को प्राप्त हुए हैं, अतएव बहुत प्रकार से (राजऋषि के तौर और ब्रह्म ऋषि के तौर पर) मुझसे पूजा के योग्य हैं ॥३७॥ हे विप्र! यह आप का परमपवित्र मेरे पास आना बड़ा आश्चर्य हुआ है। हे प्रभो! आप के दर्शन से मैं शुभक्षेत्र (शुभशरीर) को प्राप्त हुआ हूं ॥३८॥ कहिये आप के

आने में जो कार्य अभिप्रेत है आप की आज्ञा से अनुगृहीत हुआ अपनी वृद्धि के लिये आपका अर्थ पूरा किया चाहता हूं ॥३९॥

मूल—कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत । कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान् मम ॥४०॥ इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुखमात्मवता विनीतमुक्तम् । प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टः परमऋषिः परमं जगाम हर्षम् ॥ ४१ ॥

टीका—हे सुव्रत ! आपको कार्य का विचार नहीं करना चाहिये मैं पूरी तरह करूंगा, आप मेरे देवता हैं * ॥४०॥ इस प्रकार उदारमन वाले राजा से नम्रता पूर्वक कहे हुए, हृदय के प्यारे-कानों के सुखदायक वाक्य को सुनकर, फैले हुए गुण और यश वाला, गुणों में बढ़ा हुआ परमऋषि परम हर्ष को प्राप्त भया

सर्ग ८ (व० १८) दशरथ विश्वामित्र का सम्वाद

मूल—तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् । हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१॥ सदृशं राजशार्दूल तवैव भुवि नान्यतः । महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः ॥२॥ यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम् । कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः ॥३॥ अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ । तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥४॥ व्रते तु बहुशश्चीर्णे समाप्त्यां राक्षसाविमौ । मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ॥५॥

टीका—राजसिंह के इस अद्भुत सविस्तर वाक्य को सुन कर महा तेजस्वी विश्वामित्र पुलकित हो कहने लगे ॥१॥ हे राजशार्दूल!

---

* गृहस्थ को अतिथि देवता मानना चाहिये, जैसा कि श्रुति कहती है "अतिथि देवो भव" ।

ऐसा वचन पृथिवी में आप ही के सदृश है दूसरे के नहीं, जो आप महावंश में जन्म लिये है, और वसिष्ठ के कहे में चलने वाले हैं ॥२॥ किन्तु जो बात मेरे हृदय की है, हे राजशार्दूल ! अब उस कार्य का निश्चय करो और सच्ची प्रतिज्ञा वाले बनो ॥ ३ ॥ सुनो हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं यज्ञ सिद्धि के लिये दीक्षा लेता हूं. उस में कामरूपी (इच्छा से भेस बदलने वाले) दो राक्षस विघ्न डालते हैं ॥४॥ मैंने बहुत बार व्रत किया है. पर सदा समाप्ति के समय मारीच और सुबाहु यह दो राक्षस जो बड़े वीर्य वाले और सुशिक्षित हैं ॥ ५ ॥

मूल—तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम्। अवधूते तथाभूते तस्मिन्निश्चयनिश्चये ॥ ६ ॥ कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे। न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥ ७ ॥ तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते। स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८ ॥ काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि। शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥ राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने। श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः ॥१०॥

टीका—वेदि में मांस और रुधिर छिड़क देते हैं। इस तरह उस दीक्षा के निश्चय का अनादर होने पर ॥६॥ थककर निरुत्साह हो अब उस देश से निकल आया हूं और हे राजन् उनपर क्रोध फैंकने का मेरा विचार नहीं होता है ॥ ७ ॥ क्योंकि वह चर्या (अमल) ही ऐसी है, उस में शाप नहीं दिया जाता है * हे राजशर्दूल अपने बड़े पुत्र सच्चे पराक्रम वाले, काकपक्ष के धारने वाले राम को मुझे देने की कृपा कीजिये, मेरी रक्षा में रहता

* भाव यह है कि तंग आकर ऋषि शाप रूप में उन पर क्रोध फैंकते तो उनका नाश होजाता पर शाप उस यज्ञ में वार्जित है।

हुआ यह अपने तेज से उन राक्षसों के भी विनाश में समर्थ होगा, जो बिगाड़ करने वाले हैं। और निःसन्देह मैं भी इसको बहुत प्रकार का कल्याण (शस्त्रास्त्र विद्यादि) दूंगा ॥ ८, ९, १० ॥

मूल—त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति। न च तौ राममासाद्य शक्तौ स्थातुं कथंचन ॥११॥ रामस्य राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः। अहं ते प्रतिजानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ ॥१२॥ यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि। स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ॥१३॥ दशरात्रं हि यज्ञस्य रामं राजीवलोचनम्। नात्येति कालो यज्ञस्य यथायं मम राघव ॥१४॥ तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः। इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ॥१५॥ विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामतिः ॥१६॥

टीका—जिस से तीनों लोकों में ख्याति को प्राप्त होगा। और न ही वह दोनों राम के सामने खड़ा होने के किसी तरह समर्थ हैं ॥११॥ हे राजशार्दूल! महात्मा राम की वह बराबरी नहीं करसक्ते, मैं तुझे प्रतिज्ञा से कहता हूं, कि उन दोनों राक्षसों को मरा जान ॥१२॥ हे राजेन्द्र यदि आप धर्म का लाभ और पृथिवी पर परम यश स्थिर करना चाहते हैं, तो आप राम को मुझे दीजिये ॥१३॥ यज्ञ की दस रातें कमलनेत्र राम की आवश्यकता है, सो अब हे राघव जैसे यज्ञ का काल लंघ न जाय ॥१४॥ वैसे कीजिये आप का कल्याण हो, मन को संशय में न डालिये। इस प्रकार धर्म और अर्थ सहित वचन कह कर महामति महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र जी चुप होगए ॥ १५, १६ ॥

सर्ग ९ (व०२०-२१) दशरथ, विश्वामित्र और वसिष्ठ का सम्वाद

मूल—तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम्। मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ॥१॥ अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता

समग्रमूर्धनि । निर्विघ्ना व्रतचर्या ते भविष्याति सुरक्षिता ॥ २ ॥ अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि । बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम् ॥३॥ न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः। न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि राक्षसाः ॥ ४ ॥

टीका—विश्वामित्र के इस वचन को सुन कर कुछ काल के लिये राजा के होश उड़ गए, फिर होश में आकर बोला ॥ १ ॥ मैं ही धनुष हाथ में लेकर रण के मैदान में (यज्ञका) रक्षक बनूंगा । इस तरह सुरक्षित हुई आपकी वह व्रतचर्या निर्विघ्न पूरी होगी ॥२॥मैंवहां जाउंगा,रामको न लेजाइये।क्योंकि अशिक्षित(नातजर्बाकार)बालक है, बलाबल को नहीं जानता है ॥३॥ न अस्त्रबल से युक्त है न युद्ध में निपुण है। यह राक्षसों के योग्य नहीं होगा, राक्षस युद्ध में धोखे देते हैं ॥ ४ ॥

मूल—विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे । जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि ॥५॥ यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत। चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय॥६॥ चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम। ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि॥७॥

टीका—और हे मुनिशार्दूल ! मैं राम से वियुक्त होकर एक मुहूर्त नहीं जीसक्ता, सो राम को न लेजाइये ॥५॥ और यदि हे सुव्रत ब्राह्मण ! राम को ही लेजाना चाहते हो,तो चतुरंग सेना (हाथी, घोड़े, रथ और प्यादों की सेना) के साथ और मेरे साथ उसको ले चलिये ॥६॥ क्योंकि चारों पुत्रों में से धर्मप्रधान बड़े में मेरी परमप्रीति है, आप राम को न लेजाइये ॥ ७ ॥

मूल—तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम् । समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम्॥८॥+पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातु-

मिच्छसि । राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥९॥ यदीदं ते क्षमं राजन्गमिष्यामि यथागतम्। मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सुहृद्वृतः ॥१०॥ तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः । चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भयं महत् ॥ ११ ॥

टीका–(पुत्र के) स्नेह से फिसलते हुए अक्षरों वाले उसके इस वचनको सुनकर क्रोध युक्त विश्वामित्र राजा से फिर बोला ॥ ८ ॥ पहले बात की प्रतिज्ञा करके अब प्रतिज्ञा को छोड़ना चाहते हो, रघुवंशियों के यह अयोग्य है, और इस कुल के विपरीत (उलटा) है ॥९॥ यदि आपको यही योग्य है, हे राजन् ! तो मैं जैसे आया हूं वैसा चला जाउंगा। हे ककुत्स्थ के वंशधर ! मिथ्या प्रतिज्ञा वाला होकर सुहृदों में घिरा हुआ तू सुखी हो ॥१०॥ इस बुद्धिमान् विश्वामित्र को रोष से भरा हुआ देखकर सारी पृथिवी कांप उठी और देवताओं को बड़ा भय हुआ॥११॥

मूल–त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः । नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥ + इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः। धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि॥१३॥ + त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः । स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥१४॥+प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः । इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय ॥१५॥ कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः । गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा ॥१६॥ एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वरः । एष विद्याधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥ १७ ॥

टीका–सारे जगत् को भयभीत देखकर उत्तमव्रतों वाले बुद्धिमान् महर्षि वसिष्ठ राजा से यह वाक्य बोले ॥१२॥ इक्ष्वा-

कुओं के वंश में जन्म लेकर, मानों साक्षात् दूसरा धर्म, धैर्यवाला, अच्छेव्रतों वाला और श्रीमान् है आपको धर्म नहीं हारना चाहिये ॥१३॥ रघु की सन्तान धर्मात्मा है, यह बात तीनों लोक में विख्यात है। आप अपने धर्म को स्वीकार करें, आपको अधर्म नहीं उठाना चाहिये ॥१४॥ करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके जो कहे वाक्य को नहीं करता है, उसके यज्ञ और दूसरी नेकियां नाश होजाती हैं, इसलिये राम को भेजो ॥१५॥ राम चाहे अस्त्रों में निपुण है वा नहीं, पर कुशिक वंशी (विश्वामित्र) से रक्षा किये हुए को राक्षस नहीं दबा सकेंगे, जैसे अग्नि से रक्षा किये हुए अमृत (हवि) को (राक्षस नहीं बिगाड़ते हैं) ॥१६॥ यह मूर्तिमान् धर्म है, यह शक्ति वालों में श्रेष्ठ है, यह जगत् के अन्दर विद्या में बड़ा है, यह तप का परम आश्रय है ॥ १७ ॥

मूल--एषोऽस्त्रान्विविधान्वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे। नैनमन्यः पुमान्वेत्ति न च वेत्स्यन्ति केचन ॥१८॥ अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित्। न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि ॥१९॥ तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः। तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते ॥ २० ॥ ॥

टीका—यह इतने विविध अस्त्रों को जानता है, कि चराचर से भरी हुई त्रिलोकी में और कोई पुरुष नहीं जानता है, और न कोई जानेगें ॥१८॥ और इससे बढ़कर यह धर्मवेत्ता, नयों (नए अस्त्रों) के उत्पन्न करने में समर्थ है, सो हे राजन् ! राम के जाने में संशय में न पड़ ॥१९॥ यह कुशिक का पुत्र उन (राक्षसों) के दबाने में तो स्वयं समर्थ है, यह तो तेरे ही पुत्रों के कल्याण के लिये तेरे पास आकर याचना कर रहा है ॥ २० ॥

सर्ग १०(व २२) राम लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ वन गमन

मूल—तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम् । प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम्॥१॥कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च । पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम् ॥२॥ स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा । ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥३॥ विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामोमहायशाः । काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ॥४॥ तदा कुशिकपुत्रं तु धनुष्पाणी स्वलंकृतौ । बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तौ महाद्युती ॥ ५ ॥ कुमारौ चारुवपुषौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयतामनिन्दितौ ॥ ६ ॥

टीका—वसिष्ठ के ऐसा कहने पर प्रसन्नमुख हुए स्वयं राजा दशरथ ने लक्ष्मण सहित राम को बुलवाया ॥ १ ॥ पहले माता ने और पिता दशरथ ने उनका स्वस्ति वाचन किया, फिर पुरोहित वसिष्ठ ने उन पर मंगलमन्त्र पढ़े ॥ २ ॥ तब राजा दशरथ ने पुत्र के सिर को चूमकर प्रसन्न मन से कुशिक के पुत्रके हवाले किया ॥ ३ ॥ अब विश्वामित्र आगे२ चले, उनके पीछे महा यशस्वी काकपक्षधारी राम धनुष धारण किये हुए चले,उनके पीछे लक्ष्मण चले॥४॥उस समय दोनों राजकुमार भाई राम और लक्ष्मण, हाथों में धनुष लिये हुए, सब प्रकार सजे हुए, गोह के चमड़े के अंगुलित्राण (अंगुलियों के दस्ताने) पहने हुए, तलवारें लगाए हुए, बड़ी कान्ति वाले, सुन्दर शरीर वाले, सर्वथा अनन्दित (जिन का कुछ भी निन्दा नहीं जासक्ता), शोभा से चमकते हुए पीछे २ चलते हुए कुशिक के पुत्र की शोभा को बढ़ा रहे थे ॥ ५—६ ॥

मूल—अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे। रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ ७ ॥ गृहाण वत्स सलिलं माभूत्कालस्य पर्ययः। मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा॥८॥ एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत्सदृशस्तव। बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥९॥ क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम। बलामतिबलां चैव पठतस्तव राघव ॥१०॥ विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि। पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजः समन्विते ॥ ११ ॥

टीका—डेढ़ योजन (छः कोस) चलकर सरयू के दक्षिणी किनारे पर पहुंच कर विश्वामित्र ने मधुरवाणी से कहा। 'हे राम! ॥ ७ ॥ वत्स! जल ले (आचमन कर), समय का उलंघन न हो (अर्थात् यह समय तुझे विद्याविशेष देने का है, यह टल न जाए) यह बला और अतिबला नाम की दो विद्याओं के मन्त्रसमूह मुझ से ग्रहण कर ॥ ८ ॥ जब तूने यह दोनों विद्याएं पालीं, तो फिर तेरी कोई बराबरी नहीं कर सकेगा, बला और अतिबला सर्वज्ञान की माताएं हैं ॥ ९ ॥ हे रघु की संतान! हे मनुष्यों में उत्तम राम! बला और अतिबला को पढ़ते हुए तुझे हे तात! भूख और प्यास नहीं होगी ॥ १० ॥ इन दोनों विद्याओं के पढ़ने पर सारी पृथिवी पर तेरा यश फैलेगा, ब्रह्मा की कन्याएं (ब्रह्मा ने जिनको प्रकट किया है) यह दोनों विद्याएं हैं, जो तेज से भरी हुई हैं ॥११॥

मूल—प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि पार्थिव। कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ॥ १२ ॥ तपसा संभृते चैते बहुरूपे भविष्यतः। ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः॥१३॥

प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः। विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भीमविक्रमः ॥ १४ ॥ सहस्ररश्मिर्भगवाञ्शरदीव दिवाकरः। ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां सुसुखं त्रयः ॥१५॥ दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां तृणशयनेऽनुचिते तदोषिताभ्याम् । कुशिकसुतवचोनुलालिताभ्यां सुखमिव सा विबभौ विभावरीति ॥ १६ ॥

टीका—तुझे देना चाहता हूं, हे पृथिवी के मालिक ! तू पात्र है, क्योंकि तुझमें बहुत गुण (जो इस विद्या के अधिकारी में होने चाहिये) खुले तौर पर हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ तप से धारण की हुई यह दोनों विद्याएं बहुरूप होंगी (बहुत साधनों की जगह यही काम देंगी),तब राम आचमन कर शुद्ध हो,प्रसन्नमुख हुए-॥१॥ शुद्ध हृदय वाले उस महर्षि से दोनों विद्याओं को ग्रहण करते भए। विद्या के सम्बन्ध से राम का पराक्रम प्रचण्ड होगया, और ऐसी शोभा को प्राप्त हुए ॥१४॥ जैसे शरत् ऋतु में भगवान् सूर्य होता है। उस रात उन तीनों ने वहीं सरयू के किनारे सुख से वास किया ॥१५॥ दशरथ राजा के दोनों श्रेष्ठ पुत्र यद्यपि तिनकों की अनुचित शय्या पर सोए, तथापि कुशिक के पुत्र (विश्वामित्र) के वचन से लालन किये हुए उन दोनों को रात बड़े सुख से प्रभात हुई ॥१६॥

सर्ग ११ (व० २३–२४) ताटकावन में प्रवेश

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः। अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे ॥१॥+कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥२॥+तस्यर्षेः परमोदारं वचःश्रुत्वा नरोत्तमौ। स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ॥३॥ कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम्। अभिवाद्यातिसंहृष्टौ गमनायाभितस्थतुः ॥४॥

टीका--जब रात प्रभात हुई, तब विश्वामित्र महामुनि पत्तों के बिस्तरे पर सोए हुए उन दोनो से बोले॥१॥कौसल्या(तुझ पुत्र से)हे राम ! सुपुत्रवती है,(सो तेरे जैसे सुपुत्र को इस समय निद्रा उचित नहीं है, क्योंकि) प्रातः सन्ध्या प्रवृत्त हुई है। उठो हे नरशार्दूल ! दिन में करने वाला दैव कर्म (सन्ध्या और अग्निहोत्र) करो ॥२॥ उस ऋषि के परमउदार वचन को सुनकर वह दोनों नरोत्तम वीर स्नानकर, आचमन करके, परम जप(गायत्री जप) जपते भए ॥३॥ दैनिक(सवेरका स्नानजपादि)कर्म करकेवह दोनों महावीर, तपोधनी विश्वामित्र को प्रणाम करके जाने के लिये सम्मुख खड़े होगये ४

मूल--तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम् । ददृशाते-ततस्तत्र सरय्वाः संगमे शुभे ॥५॥ तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम् । इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन ॥६॥ पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम् । इह वासः परोऽस्माकं सुखं वत्स्यामहे निशाम् ॥७॥ तेषां संवदतां तत्र तपोदीर्घेण चक्षुषा । विज्ञाय परमप्रीता मुनयो हर्षमागमन् ॥८॥ अर्घ्यं पाद्यं तथातिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे। रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नतिथिक्रियाम्॥९।

टीका--वह महावीर चलते २ जब दिव्य गंगानदी पर पहुंचे, वहां उन्होंने सरयू के शुभसंगम (गंगा सरयू के संगम)पर शुद्धात्मा ऋषियों का एक पुण्य आश्रम देखा। (विश्वामित्र बोले) हे राम हे शुभदर्शन ! आज रात यहां इन दोनों पवित्र नदियों के मध्य में रहें, कल हम पार होंगे, यहां हमारा रहना अच्छा होगा, आराम से रात रहेंगे ॥५,६,७॥ इस तरह जब वह आपस में बात चीत कर रहे थे, तो वहां के मुनि तप से दूर पहुंचने वाली दृष्टि द्वारा जान कर, परम प्रसन्न हुए हर्ष को प्राप्त भए ॥८॥ वह पहले कुशिक के

पुत्र का अर्घ्य पाद्य और आतिथ्य करके पीछे राम और लक्ष्मण का अतिथिसत्कार करते भए ॥९॥

मूल—ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिंदमौ । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ ॥१०॥ ते च सर्वे महात्मानो मुनयः संशितव्रताः । उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमिहाब्रुवन् ॥११॥ आरोहतु भवान्नावं राजपुत्रपुरस्कृतः । अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत्कालस्य पर्ययः॥१२॥विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृषीन्प्रतिपूज्य च । ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरंगमाम् ॥१३॥ स वनं घोर-संकाशं दृष्ट्वा नरवरात्मजः । अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छ मुनिपुंगवम् ॥१४॥ अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणसंयुतम् । भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः ॥१५॥ नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः । सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम् ॥१६॥

टीका--फिर निर्मल प्रभात में उठकर दैनिक कर्म समाप्त कर चुके हुए विश्वामित्र के पीछे २,दोनों भाई,जो शत्रुओं के सिधाने वाले हैं, नदी के किनारे पर आए ॥१०॥ वहां वह सारे तीक्ष्ण व्रतों वाले महात्मा मुनि शुभ नौका को उपस्थित कर विश्वामित्र से बोले ॥११॥ राजपुत्रों से पुरस्कृत हुए (आगे २ आप और पीछे दोनों राजपुत्र इस ढंग में शोभा पाते हुए) आप नौका पर सवार हो निर्विघ्न अपने मार्ग पर जाइये,समय का उल्लंघन न हो॥१२ विश्वामित्र जी "तथास्तु" कह कर, और उन ऋषियों का पूजन करके, उन दोनों के सहित उस नदी के पार उतरगए, जो समुद्र की ओर भागी जा रही है ॥१३॥ अब आगे एक भयंकर निर्जन वन को देखकर उस इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार (राम) ने मुनि श्रेष्ठ से पूछा॥१४॥अहो ! यह बन दुर्गम,झींगरों (बींडों)के झुण्डों से युक्त,

भयङ्कर हिंस्रों(दरिन्दों)से भरा हुआ और दारुणध्वनि वाले बाज़ों से और बहुत से भयंकर ध्वनि वाले बोलते हुए नाना प्रकार के पक्षियों से भरा हुआ, और शेर, बाघ,सूअर, और हाथियों से शोभित ।१६।

मूल—धवाश्वकर्णैः ककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः । संकीर्णं बदरीभिश्च किं न्विदं दारुणं वनम् ॥१७॥ तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घकालमरिंदम ॥१८॥ मलदाश्च करूषाश्च मुदिता धनधान्यतः । कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षिणि कामरूपिणी ॥१९॥ ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः । मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्य शक्रपराक्रमः॥२०॥इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव । सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यर्धयोजने ॥२१॥

टीका--धावे, असकर्ण, कौ, बिल्ल, तेंदे,पाटल और बेर के वृक्षों से भरा हुआ कौन सा यह दारुणवन है॥१७॥उसको महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र जी उत्तर देतेभए। हे शत्रुओं के दमन करने वाले! यहां बहुतकाल तक धन धान्य से बढ़े हुए हर्षसे भरे हुए,मलदा और करूष दो देश थे, कुछ काल से एक सुन्दरी ताटका नाम यक्षिणी (यक्षजाति की कन्या) ॥१८–१९॥ तुझे कल्याण हो, वह ताटका जो कि बुद्धिमान् सुन्द (राक्षस) की पत्नी है, और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी मारीच राक्षस जिसका पुत्र है ॥२०॥ वह इन दोनों देशों को हे राघव ! विनाश (तबाह) कर रही है, वह यहां कुछ अधिक आधे योजन के अन्तर पर मार्ग को रोकर कर रहती है ॥२१॥

मूल--अत एव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः। स्वबाहुबलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम्॥२२॥+मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः। एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम्॥२३॥+ गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम् । नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा

कार्या नरोत्तम ॥२४॥ +चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना। नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्॥२५॥ ।-पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा। राज्यभारनियुक्तानामेषधर्मः सनातनः ॥२६॥ अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते ॥२७॥

टीका—सो यहां से हमें उधर जाना चाहिये, जिधर ताटका का वन है, अपनी भुजबल के सहारे इस दुष्टचारिणी को मार ॥ २२ ॥ मेरी आज्ञा से फिर इस देश को निष्कण्टक बना। हे राघव ! इस दुर्वृत्त परम दारुण दुष्ट पराक्रम वाली यक्षिणी को गौ ब्राह्मण के हितके अर्थ मार। हे नरोत्तम तुझे स्त्री वध के निमित्त घृणा नहीं करनी चाहिये ॥ २३--२४ ॥ क्योंकि राजपुत्र को चारों वर्णों के हितकी बात अवश्य करनी चाहिये। क्रूर हो वा अक्रूर, पातक (गोवधादि) हो वा दोषवाला कर्म हो * प्रजा की रक्षा के अर्थ, रक्षा करने वाले को सदा

* शास्त्र के अनुसार स्त्रीवध दोष है। पर पाप सारे अपनी २ जगह पर होते हैं, जिस पुरुष पर देश की रक्षा की ज़िम्मावारी है, उस को देशरक्षा के निमित्त देशघातिनी स्त्री का वध पाप ही नहीं। अतएव कहा है रक्षा की जिम्मावारी उठाए हुए को पातक वा दोष युक्त कर्म भी प्रजा की रक्षा के अर्थ कर लेना चाहिए॥ यहां 'पातक वा दोष वाला भी' उसे लोक प्रसिद्धि से कहा है, तत्वदृष्टि से तो वह ऐसे अवसर पर दोष वाला है ही नहीं, हां यह धोखा सब को होता है और इस धोखे से बचने वाला कोई विरला होता है। जैसे श्री कृष्ण जी कहते हैं "किं कर्म किमकर्मेति कवयो ऽप्यत्र-मोहिताः' क्या कर्म है और क्या अकर्म है पण्डित भी इसमें मोहित हैं [गीता ४। १६]। रामचन्द्र को विश्वामित्र जैसा और अर्जुन को श्रीकृष्ण जैसा उपदेष्टा राजा जयपाल को भी मिल जाता, वा यही विश्वामित्र का उपदेश ही उस को सुना देता, कि "नृशंसमनृशं

करना चाहिये। राज्य की ज़िम्मावारी उठाए हुओं का यही सनातन धर्म है ॥ २५--२६ ॥ हे काकुत्स्थ अधर्म की भरी हुई इस स्त्री को निःशंक मार, क्योंकि धर्म इस में नहीं है।

सर्ग १२ (व० २५) ताटका का वध

मूल—मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वा नरवरात्मजः। राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः ॥१॥ अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना। पित्रा दशरथेनाहं नावज्ञेयं हि त्वद्वचः॥२॥ सोऽहं पितुर्वचः श्रुत्वा शासनाद्ब्रह्मवादिनः। करिष्यामि न सन्देहस्ताटकावधमुत्तमम् ॥३॥+गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च। तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥४॥ एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये बध्वा मुष्टिमरिंदमः। ज्याघोषमकरोत्तीव्रं दिशःशब्देन नादयन्॥५॥ तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता। श्रुत्वा चाभ्यपतत्क्रुद्धा यत्र शब्दो विनिस्सृतः ॥६॥ तं दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम्। प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत ॥७॥

टीका—मुनि के अक्लीब (मरदाना)वचन को सुनकर दृढ़ व्रतों वाला राजपुत्र राघव हाथ जोड़कर बोला ॥१॥ अयोध्या में मुझे गुरुओं (वसिष्ठ आदि) के सामने पिता दशरथ ने आज्ञा दी है, कि आपके वचन की मुझे अवज्ञा नहीं करनी चाहिये ॥२॥ सो मैं पिता

वा प्रजारक्षणकारणात्। पातकं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सदा। राज्यभारनियुक्तानामेष धर्म्मः सनातनः" तो गौओं की आड़ में जयपाल से न कोई शस्त्र छुडवा सकता,न जयपाल पर और देश पर हार का धब्बा लगता, और न उस समय उस थोड़ी सी गोहानि के पलटे इतनी बड़ी गोहानि सहनी पड़ती, जो उस समय से आज तक सही जा रही हैं।

के वचन को सुनकर और आप जो ब्रह्मवादी *हैं, उनकी आज्ञा से यह उत्तम काम, ताटका का वध, करूंगा, इसमें सन्देह नहीं ॥३॥ गौ ब्राह्मण के हित के लिये और देशके हित के लिये,आप जो(ज्ञान में)अथाह हैं, उनका वचन करने के लिये तय्यार हूं यहकहकर उन शत्रुओं के दबाने वाले ने धनुष के मध्य में मुट्ठी बांधकर चिल्ले की तीव्र ध्वनि की, जिससे सारी दिशाएं गूंज उठीं॥५॥ उस शब्द को सुनकर और उसको लक्ष्य में रखकर के क्रोध से पागल हुई वह राक्षसी वहां दौड़ती आई, जहां से शब्द निकला था ॥६॥ उस क्रुद्ध हुई विकरालरूप, विकराल मुख वाली और कद में बहुत बड़ी को देखकर राम लक्ष्मण से बोले ॥७॥

मूल—पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः। भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च ॥ ८ ॥ एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोधमूर्च्छिता। उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत ॥९॥ उद्धुन्वाना रजो घोरं ताटका राघवावुभौ । रजोमेघेन महता मुहूर्तं सा व्यमोहयत ॥ १० ॥ तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव। शरेणोरसि विव्याध सा पपात ममार च *॥११॥

टीका—देख हे लक्ष्मण ! यक्षिणी का भयंकर दारुण शरीर,इस के देखने से भीरुओं के हृदय फटजाएं। ८। राम के ऐसा कहते हुए क्रोध से पागल हुई ताटका भुजा उठाकर गर्जती हुई

---

* ब्रह्मवादी=वेदवादी । वेदवादी ऋषि की आज्ञा में धर्मविरुद्ध होने का संशय ही नहीं होता ।

* बम्बई निर्णयसागर वाली रामायण में "सा पपात ममारच" की जगह "पपात च ममारच" अपपाठ है। "सा" के बिना गिरना मरना राम का प्रतीत होगा, न कि ताटका का ।

राम की ओर दौड़ी। ९। और भयंकर धूलि उड़ाकर धूलि के बड़े मेघ से राम लक्ष्मण को विमोहित कर दिया। १०। बिजली की तरह वेग से झपटती हुई उस बहादुर राक्षसी को राम ने तीर मार कर छाती में बींध दिया, वह गिर पड़ी और मरगई ॥११॥

मूल—ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः। मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत् ॥१२॥ इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन। श्वःप्रभाते गमिष्याम स्तदाश्रमपदं मम॥१३॥निहत्य तां यक्ष सुतां स रामःप्रशस्यमानः सुरसिद्धसंघैः। उवास तस्मिन् मुनिना सहैव प्रभातवेलां प्रतिबोध्यमानः ॥१४॥

टीका—तब वह मुनिवर ताटका के वध से प्रसन्न हो प्रीति के साथ रामको सिर पर चूमकर यह वचन बोले।१२।हे शुभदर्शन राम! आज यहां रात रहें, कल प्रभात के समय मेरे आश्रमपद की ओर जाएंगे ॥१३॥ उस यक्षकन्या को मारकर देवता और सिद्धगणों से प्रशंसा किये हुए राम मुनि के साथ वहीं रहे, और प्रभात के समय जागे ॥ १४ ॥

१३ (व० २७) मुनि का राम को अस्त्र दान

मूल—अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः। प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम् ॥१॥ परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः। प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥२॥ यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि। तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥ ३ ॥ दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघव। धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च। ॥४॥ विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्र मस्त्रं तथैव च। वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा

टीका—तब वह रात वहां रहकर महायशस्वी विश्वामित्र हंसकर

मधुरस्वर से राघव को यह वचन बोले ॥१॥ तुझपर प्रसन्न हुआ हूं, तेराकल्याण हो, हे बड़े यशवाले राजपुत्र परम प्रीति से युक्त हुआ मैं तुझे बहुत से अस्त्र देता हूं ॥२॥ जिनसे तू संग्राम में सारे शत्रुओं को दबाकर बस में करके जीत सकेगा, वह दिव्य अस्त्र तुझे सारेके सारे देता हूं,॥३॥हे राम!तुझे एक बड़ा दिव्य* दण्डचक्र धर्मचक्र कालचक्र॥४॥विष्णु चक्र और बड़ा उग्र इन्द्र अस्त्र दूंगा और हे नरश्रेष्ठ राघव! वज्रास्त्र और शैव शूलवर ॥ ५ ॥

मूल—अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव । ददामि ते महाबाहो ब्रह्ममस्त्रमनुत्तमम् ॥६॥ गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे । प्रदीप्ते नरशार्दुल प्रयच्छामि नृपात्मज ॥७॥ धर्म्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च । वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम् ॥८॥अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन। ददामिचास्त्रं पैनाक मस्त्रं नारायणं तथा॥९॥आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नाम नामतः। वायव्यं प्रथनं नाम ददामि तव चानघ ॥१०॥ अस्त्रं हयशिरो नामक्रौञ्चमस्त्रं तथैव च। शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव॥

टीका--ब्रह्मशिर अस्त्रऐषीक अस्त्रऔर हेमहाबाहो!सबसे उत्तम ब्रह्म अस्त्र देत हूं॥६॥और हे काकुत्स्थ! दो शुभ गदा मोदकी औरशिखरी, जो बड़ी प्रचण्ड हैं हे नर शार्दूल ! राजपुत्र तुझे देता हूं ॥७॥ तथा धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश जो उत्तमोत्तम अस्त्र हैं, तुझे देता हूं ॥८॥हे रघुनन्दन ! दो अशनी(बिजली) अस्त्र, शुष्क और आर्द्र। औरपिनाक अस्त्र, नारायण अस्त्र ॥९॥ और अग्नि का प्यारा अस्त्र (अग्नि अस्त्र)जिसका प्रसिद्ध नाम शिखर है,

* दण्डचक्र आदि भिन्न २ प्रकार के अस्त्रों के नाम हैं। इन अस्त्रों का विशेषज्ञान अब किसी पुस्तक में नहीं मिलता।

तथा हे निष्पाप ! वायु का प्रथन अस्त्र तुझे देता हूं ॥१०॥ हय-शिर अस्त्र, और क्रौञ्च अस्त्र, और हे काकुत्स्थ हे राघव ! दो शक्ति अस्त्र देता हूं ॥११॥

मूल—कङ्कालं मुसलं घोरं कापालमथ किङ्किणीम्।धारयन्त्यसुरा यानि ददाम्येतानि सर्वशः ॥१२॥ वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः । असिरत्नं महाबाहो ददामि नरवरात्मज।१३। गान्धर्व मस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः। प्रस्वापनं प्रशमनं दाम्र सौम्यंचराघव।१४।

टीका—और कंकाल,मुसल,घोर कापाल,किंकिणी जिन को असुर धारण करते हैं, यह सारे तुझे देता हूं ॥१२॥ और विद्याधरों का महान् अस्त्र जो नन्दन नाम से प्रसिद्ध है, वह जिस से छुरे निकला करते हैं, हेनरवरसुत! तुझे देता हूं ॥१३॥ गन्धर्वों का प्यारा अस्त्र जो मोहन नाम से प्रसिद्ध है। हे राघव कोमल और प्रस्वापन, और प्रशमन अस्त्र देता हूं॥ १४ ॥

मूल— वर्षणं शोषणं चैव संतापनविलापने । मादनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा॥१५॥ गान्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः। पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः॥१६॥ प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः । तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम् ॥१७॥

टीका—वर्षण, शोषण,संतापन,विलापन और काम का प्यारा किसी से न दबनेवाला मादन नाम अस्त्र॥१५॥और गन्धर्वों का प्यारा जो मानव नाम से प्रसिद्ध है, और पैशाच अस्त्र जो मोहन नाम से प्रसिद्ध है ॥१६॥ हे बड़े यशवाले नरवर राजपुत्र ! इसको ग्रहणकर और हे नर शार्दूल! तामस और बड़े बलवाला सौमन।१७

मूल—संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज।सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा

मायामयं परम् ॥१८॥ सौरं तेजःप्रभं नाम परतेजोऽपकर्षणम् । सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम् ॥१९॥ दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम् ।एतान्राम महाबाहो कामरूपान्महाबलान् ॥२०॥ गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज । स्थितस्तु प्राङ्मुखोभूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा ॥२१॥ ददौ रामाय सुप्रीतो मन्त्रग्राममनुत्तमम् । सर्वसंग्रहणं येषां दैवतैरपि दुर्लभम् ॥२२॥ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम् । अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे ॥ २३॥

टीका—तथा हे नृपसुत ! संवर्त और न दबनेवाला मौसल (यह असुरों के मुसल से अलग है)और हे महाबाहो ! सत्य अस्त्र और मायामय अस्त्र ॥१८॥ सूर्य का तेजःप्रभ नाम जो शत्रु के तेज का खींचनेवाला है, सोम का अस्त्र शिशिरनामी, और त्वष्टा का अस्त्र सुदारुण ॥१९॥ और भग का भयंकर अस्त्र और शीतेषु नामी मानव । इन बड़े बलवाले सारी इच्छाओं के पूरनेवाले परम उदार अस्त्रों को हे महाबाहो राजपुत्र ! जल्दी ही ग्रहणकर । तब मुनिवर शुद्ध हो पूर्वाभिमुख खड़ा होकर बड़ा प्रसन्न हो सब से उत्तम मन्त्र समूह राम को देता भया, जिन सब का संग्रह करना देवताओं को भी दुर्लभ है ॥२०,२१,२२॥ तब प्रसन्न मन महातेजस्वी राम महामुनि विश्वामित्र को अभिवादन करके यात्रा के लिये तय्यार हुए ॥ २३॥

सर्ग १४ (व० २८)अस्त्रों के संहारों का दान

मूल—प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनःशुचिः । गच्छन्नेव च काकुत्स्थो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥१॥ गृहीतास्त्रोऽस्मि भगवन्दुराधर्षः सुरैरपि ।। अस्त्राणां त्वहमिच्छामि संहारान्मुनिपुंगव ॥२॥ एवं

ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रो महातपाः । संहारान्व्याजहाराथ धृतिमान् सुव्रतः शुचिः॥३॥ सत्यवन्तं सत्यकीर्तिं धृष्टं रभसमेव च। प्रतिहारतरं नाम पराङ्मुखमवाङ्मुखम् ॥ ४ ॥ लक्षाक्षविषमौ चैव दृढनाभसुनाभकौ । दशाक्षशतवक्त्रौ च दशशीर्षशतोदरौ ॥५

टीका—अस्त्रों को ग्रहण करके राम प्रसन्नमुख शुद्ध हो चलते २ ही उन्होंने विश्वामित्र को कहा ॥१॥ हे भगवन् ! मैंने अस्त्र सब ग्रहण कर लिये हैं, अब देवता भी मुझे नहीं दबा सके, किन्तु हे मुनि श्रेष्ठ!अब मैं इन अस्त्रों के संहार(=इनको रोकनेवाले अस्त्र) जानना चाहता हूं ॥२॥राम के ऐसा कहने पर महातपस्वी धैर्य-वाले,अच्छे व्रतोंवाले,शुचि विश्वामित्र संहार कहने लगे॥३॥(जिनके नाम यह हैं) सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, परा-ङ्मुख, अवाङ्मुख ॥४॥ लक्षाक्ष, विषम, दृढनाभ, सुनाभ,दशाक्ष शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर ॥५॥

मूल—पद्मनाभमहानाभौ दुन्दुनाभस्वनभकौ । ज्योतिषं कृशनं चैव नैराश्यविमलावुभौ ॥६॥ यौगंधरविनिद्रौ च दैत्यप्रमथनौ तथा।शुचिबाहुर्महाबाहुर्निष्कलिर्विरुचिस्तथा। सार्चिमालि धृतिमाली वृत्तिमान् रुचिरस्तथा ॥७॥ पित्र्यः सौमनसश्चैव विधूतमकरावुभौ परवीरं रतिं चैव धनधान्यौ च राघव ॥८॥ कामरूपं कामरुचिं मोहमावरणं तथा । जृम्भकं सर्पनाथं च पन्थानवरुणौ तथा ॥९॥

टीका—पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, कृशन, नैराश्य, विमल ॥६॥ यौगन्धर, विनिद्र, दोनों दैत्यप्रमथन शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कलि, विरुचि, सार्चिमालि, धृतिमालि, वृत्तिमान् रुचिर ॥ ७ ॥ पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर,

रति, धन, धान्य ॥८॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान, वरुण, ॥९॥

मूल—कृशाश्वतनयान्राम भास्वरान्कामरूपिणः। प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोऽसि राघव ॥१०॥ स च तान्राघवो ज्ञात्वा विश्वामित्रं महामुनिम्। गच्छन्नेवाथ मधुरं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥११॥ किन्न्वेतन्मेघसंकाशं पर्वतस्याविदूरतः। वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतुहलं हि मे ॥१२॥ दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च। नानाप्रकारैः शकुनैर्वल्गुनादैरलंकृतम् ॥१३॥ निःसृताः स्म मुनिश्रेष्ठ कान्ताराद्रोमहर्षणात्। अनया त्ववगच्छामि देशस्य सुखवत्तया ॥१४॥

टीका—हे राम! यह सब जो कृशाश्व के पुत्र (कृशाश्व ऋषि के प्रकट किए हुए)चमकते हुए कामरूपी हैं,इन को मुझ से स्वीकार कर, तुझे कल्याण हो, हे राघव ! तू पात्र है ॥१०॥ राम उन सब को जान करके जाते २ विश्वामित्र महामुनि से यह मधुर स्पष्ट वचन बोले ॥११॥ (भगवन्) यह मेघ के तुल्य प्रतीत होता हुआ, पर्वत के निकट, वृक्षझुण्ड क्या है, इस के जानने का मुझे परम कौतूहल है ॥१२॥ बडा सुहावना है, हिरणों से युक्त, मन को अत्यन्त खींचने वाला है, मधुर गाते हुए पक्षियों से अनेक प्रकार से शोभायमान है।१३। यह ऐसा सुखदायी स्थान आजाने से मैं जानता हूं कि रोंगटे खडे करने वाले बन से अब हम निकल आए हैं ॥१४॥

सर्ग १९ (व० २९) सिद्धाश्रम प्रवेश

मूल—अथ तस्याप्रमेयस्य तद्वनं परिपृच्छतः विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमुपचक्रमे ।१। एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य

महात्मनः । सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः ।२। एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः अत्रैव पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः।३।अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम ।४। इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम् । प्रविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महामुनिः ॥५॥ तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः। उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन् ॥६॥ यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते । तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम् ॥७॥

टीका—तब उस बन को पूछते हुए उस बड़ी शक्ति वाले राम को महातेजस्वी विश्वामित्र बतलाने लगे ॥१॥ हे राम यह महात्मा वामन का पूर्व आश्रम है, सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि वह महातपस्वी यहां सिद्ध हुआ था ॥२॥ इस आश्रम में वह विघ्नकारी राक्षस आते हैं, यहां हे पुरुषश्रेष्ठ ! तूने दुष्टचारियों को मारना है ॥३॥ आज हम इस परमोत्तम सिद्धाश्रम में आपहुंचे हैं, हे तात ! यह आश्रमपद तेरा भी वैसा ही है, जैसा मेरा है ॥४॥ इतना कह परम प्रसन्न हुआ महामुनि राम लक्ष्मण को साथ ले आश्रमपद में प्रवेश करता हुआ शोभा देता भया ॥५॥ उस को देख करके सिद्धाश्रमवासी सारे मुनि झटपट उठ २ कर विश्वामित्र की पूजा करते भए ॥६॥ बुद्धिमान् विश्वामित्र की यथायोग्य पूजा करके वैसे ही दोनों राजपुत्रों का आतिथिसत्कार करते भए ॥७॥

मूल—मुहूर्तमिव विश्रान्तौ राजपुत्रावरिन्दमौ । प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ ॥८॥ अद्यैव दीक्षां प्रविशत्वं भद्रं ते मुनिपुंगव । सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात्सत्यमस्तु वचस्तव ॥९॥

एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः ॥१०॥ कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ । प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च ॥११॥ स्पृष्टोदकौ शुची जप्यं समाप्य नियमेन च । हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥१२॥

टीका—थोड़ी देर विश्राम करके शत्रुओं के दमन करनेवाले

वह राजपुत्र रघुनन्दन हाथ जोड़ मुनिवर से कहने लगे ॥८॥ आज ही हे मुनिवर ! दीक्षा में प्रवेश करो, आपका कल्याण हो, यह सिद्धाश्रम सिद्ध हो, (यज्ञ की सिद्धि से यथार्थ नाम हो) आपका वचन (यहां तूने दुष्टचारियों को मारना है, मुझे कहा यह वचन) सत्य हो ॥९॥ महातेजस्वी जितेन्द्रिय, महामुनि को जब यह कहा गया, तब वह नियम धारकर दीक्षा में प्रविष्ट हुए ॥१०॥ वह दोनों भाई कुमारों (स्कन्द और विशाख) की तरह बड़ी सावधानी से रात्रि रहकर प्रभात समय उठे ॥११॥ पवित्र हुए, पूर्वा सन्ध्या उपासकर नियम से परम जप को समाप्त करके विश्वामित्र को अभिवादन करते भए जो कि अग्निहोत्र होमकर बैठे हुए हैं ॥१२॥

सर्ग १६ (व० ३०) मारीच और सुबाहु पर विजय

मूल—अथ तौ देशकालज्ञौ राजपुत्रावरिन्दमौ । देशकाले च

वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः ।१। भगवञ्छ्रोतुमिच्छावोयस्मिन्काले निशाचरौ । संरक्षणीयौ तौ ब्रह्मन् नातिवर्तेत तत्क्षणम् ।२। एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ त्वरमाणौ युयुत्सया । सर्वे ते मुनयः प्रीताः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ ।३। अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतां राघवौ युवाम् । दीक्षां गतो ह्येषमुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति । ४ ।

टीका—तब शत्रुओंके दमन करनेवाले,देशकालके पहचाननेवाले, वाक्य के जाननेवाले वह दोनों राजपुत्र देशकाल के अनुसार विश्वामित्र से वचन बोले ।१। भगवन्? हम सुनना चाहते हैं,जिस समय हम दोनों ने वह राक्षस रोकने हैं, हे ब्रह्मन्! वह क्षण न टल जाए । २ ।जब उन दोनों ककुत्स्थवंशी राजपुत्रों ने युद्ध के उत्साह से जल्दी करते हुए ऐसे कहा तो वह सारे मुनि प्रसन्न हो राजपुत्रों को कहते भए ।३ । आज से छः रातें हे राघवो ! तुम दोनों रक्षा करो, यह मुनि इतने दिन मौनी (चुप) रहेगा, क्योंकि दीक्षा ले चुका है ॥ ४ ॥

मूल—तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ।अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्।५।अथ काले गते तस्मिन्षष्ठेऽहनि तथागते । सौमित्रिमब्रवीद्रामो यत्तो भव समाहितः ।६। रामस्यैवंब्रुवाणस्य त्वरितस्य युयुत्सया । मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचरास्तथा ॥७॥ आगम्य भीमसंकाशौ रुधिरौघानवासृजन् । तावापतन्तौ सहसा दृष्ट्वा राजीवलोचनः । ८ । मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम् । चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघवः । ९ । विचेतनं विघूर्णन्तं शीतेषुबलपीडितम्। निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्१०

टीका—वह यशस्वी दोनों राजपुत्र उनके वचन को सुनकर छः दिन रात नींद छोड़कर तपोवन की रक्षा करते भए।५।जब और काल बीत गया और वह छटा दिन आया,तब रामने लक्ष्मण को कहा, वीर सावधान होकर तय्यार रहो।६।राम जब युद्ध की इच्छासे जल्दी करते हुए ऐसा कह ही रहे थे,कि भीममूर्त्ति मारीच और सुबाहु और उनके अनुचर आकर रुधिर के प्रवाह छिड़कने लगे । उन को एकदम आपड़ते हुए देखकर कमलनेत्र । ७,८ । राघव परम

क्रुद्ध हो अतीव चमकते हुए परम उदार मानव अस्त्र को मारीच की छाती पर फेंकते भए। ९। तब बेहोश हुए, घूर्ण हुए, और शीतेषु (ठंडे तीरों वाले मानव अस्त्र) के बल से पीड़ित हुए मारीच को परे फेंका हुआ देखकर राम लक्ष्मण से बोले। १०।

मूल—पश्य लक्ष्मण शीतेषुं मानवं मनुसंहितम्। मोहयित्वा नयत्येनं न च प्राणैर्वियुज्यते॥ ११॥ इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः। राक्षसान्पापकर्मस्थान्यज्ञघ्नान्रुधिराशनान्। १२। इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव। विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः॥ १३॥ सुबाहूरसि चिक्षेप सविद्धः प्रापतद्भुवि।शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः॥१४॥

टीका—हे लक्ष्मण! मनुष्य से प्रयोग किए हुए ठंडे तीरोंवाले मानव अस्त्र को देख, कि इसको बेहोश करके लिये जाता है, और यह प्राणों से वियुक्त नहीं होता है।११। अब इन दूसरे राक्षसों को भी मारता हूं, जोकि निर्दय, दुष्टचारी, पाप कर्म में स्थित, यज्ञ के नाशक, रुधिर भक्षण करने वाले हैं। १२। लक्ष्मण को यह कहकर जल्दी तेज़ी दिखलाते हुए राम ने बहुत बड़े आग्नेय अस्त्र को खींचकर।१३। सुबाहु की छाती पर फेंका, वह बिधकर भूमि पर गिर पड़ा। फिर महा यशस्वी राम ने वायव्य अस्त्र लेकर शेषों को मार डाला। १४।

मूल—स हत्वा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान्रघुनन्दनः। ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा॥ १५॥ अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः। निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत्॥ १६॥ कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया। सिद्धाश्रम

मामिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ॥ १७ ॥ स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां सन्ध्यामुपागमत् ॥ १८ ॥

टीका—वह रघुनन्दन यज्ञ के नाशक सारे राक्षसों को मारकर ऋषियोंसे पूजे गये, जैसे पूर्वकालमें अपने विजयमें इन्द्र पूजे गये थे ।१५। अब यज्ञ के समाप्त होने पर महामुनि विश्वामित्र दिशाओं को उपद्रव रहित हुआ देखकर राम से बोले । १६ । हे महाबाहो ! मैं कृतार्थ हुआ हूं, तूने गुरुओं के वचन को पूरा किया है, हे बड़े यशवाले वीर सचमुच ही तूने इस स्थान को सिद्धाश्रम बना दिया है । १७ । वह राम की इस तरह प्रशंसा करके उन दोनों भाइयों को साथ ले सन्ध्या उपासते भए । १८ ।

सर्ग १७ (बा० ३१-३८) मिथला यात्रा

मूल—अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ । ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥१॥ प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ । विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्सहिताविभिजग्मतुः॥२॥ अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् । ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ ॥३॥ इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपस्थितौ । आज्ञापय यथेष्टं वै शासनं करवाव किम् ॥४॥ एवमुक्ते तयोर्वाक्ये सर्व एव महर्षयः।विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन् ।

टीका—अब कृतार्थ हुए मोद से भरे हुए दोनों वीर राम लक्ष्मण प्रसन्न मन से वह रात वहां रहे ॥१॥ रात के प्रभात होने पर सवेरे का नित्यकर्म करके दोनों भाई इकट्ठे विश्वामित्र और दूसरे ऋषियों के सम्मुख गये ।२। जलती हुई अग्नि की तरह (तपस्वी) मुनि श्रेष्ठ को अभिवादन करके मधुर बोलनेवाले वह दोनों भाई परम उदार वाक्य बोले ।३। हे मुनिवर ! यह

दोनों सेवक उपस्थित हैं,जो इच्छा हो आज्ञा दीजिये(हे मुनि श्रेष्ठ!) क्या आज्ञा पूर्ण करें।४। जब उन दोनों ने यह वाक्य कहा, तो सारे महर्षि विश्वामित्र को आगे करके* राम से यह बचन बोले।

मूल—मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति। यज्ञः परम धर्मिष्ठ स्तत्र यास्यामहे वयम् ॥६॥ त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि। अद्भुतं च धनूरत्नं तत्र त्वं द्रष्टुमर्हसि ॥७॥ तद्धि पूर्वं नरश्रेष्ठ दत्तं सदसि दैवतैः। अप्रमेयबलं घोरं मखे परमभास्वरम् ॥८॥ धनुषस्तस्य वीर्यं हि जिज्ञासन्तो महीक्षितः। न शेकुरारोपयितुं राजपुत्रा महाबलाः ॥९॥ तद्धनुर्नरशार्दूल मैथिलस्य महात्मनः। तत्र द्रक्ष्यामः काकुत्स्थ यज्ञं च परमाद्भुतम् ॥१०॥ इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कौशिकः स तपोधनः। उत्तरां दिशमुद्दिश्य प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥११॥ ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे। वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः ॥१२॥

टीका—हे नर श्रेष्ठ! मिथिलाधिपति जनक† के यहां परम धर्म वाला यज्ञ होगा, हम सब वहां जाएंगे।६। तुम भी हे नर शार्दूल! हमारे संग चलो, और वहां अद्भुत धनुष रत्न देखोगे। ७। हे नर श्रेष्ठ! अत्यन्त चमकता हुआ अप्रमेय बलवाला वह घोर धनुष पूर्वकाल में यज्ञ के अंदर‡ (यज्ञशाला के) सभास्थान में बैठे हुए देवताओं ने दिया था।८। इस धनुष की शक्ति को जानना चाहते हुए महाबली राजपूत राजे नहीं चढ़ासके हैं।९। वह धनुष हे नर शार्दूल राम! मिथिलाधिपति महात्मा के वहां

---

* अर्थात् विश्वामित्र सारे ऋषियों की ओर से यह कहनेलगे।

† मिथला के राजा का जनक उपनाम होता था असली नाम अलग होता था जैसा कि इस जनक का नाम सीरध्वज था।

‡ देवरातनामी प्राचीन जनक के यज्ञ के अन्दर।

देखोगे, और परम अद्भुत यज्ञ देखोगे। १० । यह कहकर वह तपोधन मुनिवर विश्वामित्र उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित(रवाना) हुए । ११ । वह मुनिगण दूर मार्ग जाकर सूर्य जब अस्त होने को हुआ,तो सावधान हो शोणानदी के किनारे वास करते भए १२

मूल—उपास्य रात्रिशेषं तु शोणाकूले महर्षिभिः। निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१३॥ सुप्रभाता निशा राम ! पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभि रोचय ॥१४॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतपूर्वाह्णिकक्रियः । गमनं रोचयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥१५॥ अयं शोणः शुभजलोऽगाधः पुलिनमण्डितः । कतरेण पथा ब्रह्मन्सन्तरिष्यामहे वयम् ॥१६॥ एवमुक्तस्तु रामेण विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् । एष पन्था मयोद्दिष्टो येन यान्ति महर्षयः ॥१७॥

टीका—शोणा के किनारे पर महर्षियों के सहित रात बिताकर रात के प्रभात होने पर विश्वामित्र ने कहा । १३ । राम रात प्रभात हुई है, पूर्वा संध्या प्रवृत्त हुई है, उठो उठो हे भद्र! चलने के लिये तय्यार होवो । १४ । उसके इस वचन को सुनकर सवेरे का नित्यकर्म करके राम चलने के लिये तय्यार हुए और यह वचन बोले । १५ । यह शोण शुभ जलवाला बरेतों (बालू के टीलों) से भूषित गाध *है, किस मार्ग से हे ब्रह्मन्! हम पार होंगे । १६ । राम के ऐसा पूछने पर विश्वामित्र बोले, यह मार्ग मैंने निश्चित किया है, जिससे कि महर्षि जाया करते हैं।

मूल—ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धदिवसे तदा।जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम्॥१८॥तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारसमेविताम्। बभूवुर्मुनयः सर्वे मुदिताः सहराघवाः॥१९॥तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम् । ततः प्रभाते विमले पुण्यां त्रिपथगां नदीम्

*गाध = पाओं से चलने योग्य। पदच्छेद आगाध भी होसक्ता है।

॥ २० ॥ संतारं कारयामास सर्षिसंघस्य कौशिकः । उत्तरंतीरमा-
साद्य संपूज्यर्षिगणं तदा ॥ २१ ॥ गंगाकूले निविष्टास्ते विशालां
ददृशुः पुरीम् । विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥
टीका—वह दूर मार्ग जाकर आधा दिन बीते नदियों में श्रेष्ठ
गंगा को देखते भए, जिस पर मुनिजन बसते हैं। १८। पवित्र
जलवाली, हंस और सारसों से सेवित उस नदी को देखकर
राम लक्ष्मण समेत सब मुनि बड़े प्रसन्न भए। १९। तब उसके
किनारे पर उन सब ने वास ग्रहण किया। फिर प्रभात निर्मल
होने पर विश्वामित्र ऋषिसमूह सहित राम को पवित्र गंगा नदी
से पार लेगये। उत्तरी किनारे पहुंचकर वहां रहनेवाले ऋषिगण
का पूजन करके ॥२०, २१॥ गंगा के किनारे डेरे डालकर वह
विशालापुरी को देखते भए। सुहावनी स्वर्ग के तुल्य दिव्य
उस विशाला नगरी में उस समय। २२।

मूल—भावसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः । सुमतिस्तु महा-
तेजा विश्वामित्रमुपागमत् ॥ २३ ॥ पूजां च परमां कृत्वा सोपा-
ध्यायः सबान्धवः। प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाऽब्रवीत्
॥ २४ ॥ इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ । परस्परेण सदृशौ
प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ॥ २५॥ किमर्थं च नरश्रेष्ठौ संप्राप्तौ दुर्गमे
पथि। वरायुधधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२६ ॥
टीका—दुर्जय (जिसको कोई जीत नहीं सक्ता) वह परम
प्रसिद्ध सुमति राजा वास करता था । महातेजस्वी सुम-
ति विश्वामित्र के पास आया। २३। और पुरोहित तथा बन्धुओं
के साथ योग्य पूजा करके हाथ जोड़ कुशल पूछकर विश्वामित्र
से बोला। २४। यह दोनों कुमार, तेरा भला हो, जोकि देवों
के तुल्य पराक्रम वाले हैं, प्रमाण (कद) इंगित और चेष्टाओं

*से आपस में एक सदृश हैं । २५ । यह दोनों नरश्रेष्ठ वीरश्रेष्ठ शस्त्र धारण किये हुए किसतरह इस दुर्गम मार्ग में आए हैं, यह मैं तत्त्व से सुनना चाहता हूं ॥ २६ ॥

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं न्यवेदयत् । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राजा परमविस्मितः ॥ २७ ॥ अतिथी परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ । पूजयामास विधिवत्सत्कारार्हौ महाबलौ ॥२८॥ ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ । उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः ॥२९ ॥ तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम् । साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलां समपूजयन् ॥३०॥

टीका—उस के इस वचन को सुनकर विश्वामित्र ने पूरा वृत्त † निवेदन किया । विश्वामित्र के वचन को सुनकर राजा बड़ा विस्मित हुआ । २७ । अतिथिरूप से प्राप्त हुए परम आदरणीय महाबली दशरथ के उन पुत्रों की पूजा करता भया ॥ २८॥ वह दोनों राघव सुमति से परम आदर पाकर वहां एक रात रहकर मिथिला को चले गये ॥ २९ ॥ जनक की उस सुहावनी पुरी को देखकर सारे मुनि साधु २ कहते हुए मिथला का आदर करते भए । ३० ।

---

* इङ्गित अन्दर के भावका बोधक इशारा और चेष्टा बोलना चालना आदि । † अथार्त् यह दशरथकुमार हैं, यज्ञ का विघ्न दूर करने के लिए अयोध्या से मेरे साथ सिद्धाश्रम में आए है, और वहां विघ्नकरनेवाले राक्षसों को मारकर और मार्ग में ताटका को मारकर अब जनक का यज्ञ देखने की इच्छा से इधर हमारे साथ आए हैं ।

सर्ग १८ (व० ५०) मिथला में जनक से भेंट

मूल—ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ १ ॥ रामस्तु मुनिशार्दूलमुवाच सहलक्ष्मणः । साध्वी यज्ञसमृद्धिर्हि जनकस्य महात्मनः ॥ २ ॥ बहूनीह सहस्राणि नानादेशनिवासिनाम् । ब्राह्मणानां महाभाग वेदाध्ययनशालिनाम् ॥ ३ ॥ ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशत संकुलाः । देशो विधीयतां ब्रह्मन्यत्रवत्स्यामहे वयम् ॥ ४ ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः । निवासमकरोद्देशे विविक्ते सलिलान्वते ॥ ५ ॥ विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वास नृपतिस्तदा । शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितम् ॥ ६ ॥

टीका * तब पूर्वोत्तर दिशा की ओर जाकर विश्वामित्र को आगे करके राम लक्ष्मण समेत यज्ञस्थान में आए । १ । लक्ष्मण समेत राम मुनिवर से बोले । महात्मा जनक की यज्ञ समृद्धि बड़ी प्रशंसनीय है ।२। यहां नाना देश के निवासी वेदाध्ययन करने वाले

---

*यहां हम ने अहल्या की प्रसिद्ध कथा छोड़ दी है, जो वर्तमान वाल्मीकि रामायण में है। छोड़ने का हेतु यह है, कि यह कोई असली वृत्तान्त नहीं, ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्द्र को 'अहल्यायैजार' कहा है। इस के तत्त्व को न समझ कर लोग भूले हैं, और यूं ही अहल्या और इन्द्र पर दोष लगाया है। यह बात तन्त्र वार्तिक के शिष्टाचार प्रकरण में श्रीकुमारिल भट्टाचार्य्य ने पूरी तरह स्पष्ट की है, कि "समस्ततेजाः परमैश्वर्य्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनि लीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मकजरणहेतुत्वाज्जीर्यत्यस्मादनेनवोदितेनेत्यादित्य एवाहल्याजार इत्युच्यते नतु परस्त्रीव्यभिचारात्" भाव यह है, कि इन्द्र का अर्थ है परमैश्वर्य्य वाला, वह कौन है ? सूर्य्य, जिस का सारे तेज हैं। और

ब्राह्मण सहस्रों की संख्या में विद्यमान हैं ।३। ऋषिस्थान सैंकड़ों (अग्निहोत्र की सामग्री) के छकड़ों से भरे हुए दीखते हैं । स्थान निश्चित कीजिये हे ब्रह्मन् जहां हम सब रहेंगे ।४। राम के वचन को सुनकर विश्वामित्र महामुनि जल से युक्त एकान्त स्थान में निवास करते भए ।५। विश्वामित्र को प्राप्त हुआ सुनकर वह राजा उस समय प्रशंसनीय पुरोहित शतानन्द को आगे करके । ६ ।

मूल—प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः ॥७॥ ऋत्विजोऽपि महात्मान स्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम् । विश्वामित्राय धर्मेण ददुर्मन्त्रपुरस्कृतम् ॥८॥ प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः । पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम् ॥ ९॥ स तांश्चापि मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्यायपुरोधसः । यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवत् ॥१०॥ अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव ॥११॥ यज्ञोपसदनं ब्रह्मन् प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह । इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥ गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ । अश्विनाविव रूपेण

अहल्या दो शब्दों से बना है । अह और ल्या । अह का अर्थ दिन, ल्या का छिपने वाली अर्थात् दिन में छिपने वाली । वह कौन ? रात । जार का अर्थ है, जीर्ण करने वाला । सो सूर्य्य रातको जीर्ण (क्षीण) करता है, इसलिये इन्द्र (सूर्य्य) अहल्या (रात) का जार (क्षीण करने वाला) कहा है, न कि परस्त्री से व्यभिचार के हेतु उसे जार कहा है । सो जिस लिये यह कथा सच्ची नहीं, और इसकी भूलको आर्य्यावर्त के एक नामी पण्डित और सुधारक महात्मा ने प्रकटकर दिया है, और अब यही तात्पर्य्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी वेदभाष्य भूमिका में खोला है । तब इस कल्पित कथा को छोड़ना ही उचित है ।

समुपस्थितयौवनौ ॥ १३ ॥ वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने । भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ॥ १४ ॥

टीका—नम्रता से युक्त हुआ झटपट आगे लेने को गया ।७। महात्मा ऋत्विज् भी जल्दी अर्घ लेकर के धर्म मर्यादा के साथ विश्वामित्र को देते भए ।८। महात्मा जनक की उस पूजा को स्वीकार करके (मुनि ने) राजा को कुशल पूछा और यज्ञ में निर्विघ्नता पूछी ।९। और उपाध्याय और पुरोहित समेत उन सारे मुनियों से कुशल पूछकर तब उन सब के साथ प्रसन्न होकर यथायोग्य मिले ।१०। अब राजा हाथ जोड़कर मुनिवर से बोला । मैं धन्य हूं अनुगृहीत हूं, हे मुनि श्रेष्ठ! ।११। हे ब्रह्मन्! आप मुनियों के साथ जिसके यज्ञ स्थान में आए हैं ।हे ब्रह्मऋषि ! हे देव तुल्य पराक्रम वाले यह दोनों कुमार तेरा भला हो । १२ । जोकि हाथी और शेर की चाल वाले शार्दूल और वृषभ के तुल्य (बड़े बलवान्), रूप में अश्विनी कुमारों के तुल्य भरे हुए यौवन वाले हैं ।१३। सुन्दर शस्त्रों को धारण किये हुए यह दोनों वीर हे महामुने ! किसके पुत्र हैं, जो इस स्थान को शोभायमान कर रहे हैं, जैसे सूर्य, चन्द्र आकाश को । १४ ।

मूल—परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः । काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१५॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः। न्यवेदयन्महात्मानौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥१६॥ सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा । तत्रागमनमव्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥ १७ ॥ एतत्सर्वं महातेजा जनकाय महात्मने । निवेद्य विरराभाथ विश्वामित्रो महामुनिः ॥ १८ ॥

टीका—प्रमाण इंगित और चेष्टामें परस्पर एक दूसरे के सदृश काक पक्षधारी यह जो दो वीर हैं, इन को तत्व से सुनना चाहता हूं ।१५। जनक महात्मा के इस वचनको सुनकर मुनिने निवेदन किया यह दोनों महापुरुष दशरथ के पुत्र हैं । १६ । सिद्धाश्रम में उन का निवास, राक्षसों का वध, और वहां निर्भय आना और मार्ग में विशालापुरी को देखना ।१७। यह सब कुछ महात्मा जनक को निवेदन करके महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप होगए ।१८।

मूल—जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम् । धन्योऽस्म्य-नुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव ! ॥ १९ ॥ यज्ञं काकु-त्स्थसहितैः प्राप्तवानसि कौशिक । पावितोऽहं त्वया ब्रह्मन्दर्शनेन महामुने ॥ २० ॥ अप्रमेयं तपस्तुभ्यमप्रमेयं च ते बलम् । अप्र-मेया गुणाश्चैव नित्यं ते कुशिकात्मज ॥ २१ ॥ कर्मकालो मुनि-श्रेष्ठ लम्बते रविमण्डलम् । श्वः प्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः

टीका—अब जनक फिर हाथ जोड़कर विश्वामित्र से वचन बोला । मैं धन्य हूं, अनुगृहीत हूं, जिस के यज्ञ में हे मुनिवर कौशिक ! आप राम सहित पधारे हैं, हे ब्रह्मन् ! आपने अपने दर्शन से मुझे पवित्र किया है ।१९,२०। हे कुशिक की सन्तान ! अप्रमेय आपका तप है, अप्रमेय आपका बल है, और अप्रमेय सदा आपके गुण हैं । २१ । हे मुनि श्रेष्ठ ! सूर्य मण्डल नीचे चला गया है (अस्त होने को है) अब कर्म का समय है । हे महातेजस्वी कल प्रभात के समय फिर आप मुझे देखने योग्य हैं

मूल—स्वागतं जयतां श्रेष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि । एवमुक्तो मुनिवरः प्रशस्य पुरुषर्षभम् ॥२३॥ विससर्जाशु जनकं प्रीतं प्रीतमनास्तदा

टीका—हे स्वाध्यायवालों में श्रेष्ठ! आपका आना शुभ हो, अब मुझे आज्ञा दीजिये। ऐसा कहने पर मुनिवर ने प्रसन्नमन हो, प्रसन्न हुए नरश्रेष्ठ जनक की प्रशंसा करके उसे विसर्जन किया २३,२५

सर्ग १९ (व०६६) धनुष की महिमा

मूल—ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः। विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम् ॥ १ ॥ तमर्चयित्वा धर्मात्मा शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। राघवौ च महात्मानौ तदा वाक्यमुवाच ह ॥ २॥ भगवन् स्वागतं तेऽस्तु किंकरोमि तवानघ। भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवताह्यम् ॥४॥ एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना। प्रत्युवाच मुनिर्वीरं वाक्यं वाक्यविशारदः॥५॥ पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ। द्रष्टुकामौ धनुःश्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति॥६

टीका—तब प्रभात के निर्मल होने पर राजा ने नित्यकर्म करके राम लक्ष्मण सहित महात्मा विश्वामित्र को बुलवाया। १। धर्मात्मा (जनक) शास्त्रानुसार उसको और महात्मा राम लक्ष्मण को पूज कर वचन बोले। २। भगवन् आपका आना शुभ हो, हे निष्पाप! मैं आपका क्या कार्य करूं, आज्ञा दीजिये मैं आपसे आज्ञा पाने योग्य हूं।३।महात्मा जनक ने जब उस धर्मात्मा को ऐसे कहा, तो वाक्यनिपुण उस मुनिश्रेष्ठ ने उत्तर में यह वाक्य कहा।४। दशरथ के यह दोनों पुत्र लोक विख्यात क्षत्रिय उस श्रेष्ठ धनुष को देखने की इच्छा रखते हैं,जो आप के यहां स्थित है

मूल—एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम्। श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिह तिष्ठति ॥ ६ ॥ देवरात इति ख्यातो निमेः षष्ठो महीपतिः। न्यासोऽयं तस्य भगवन्हस्ते दत्तो महा-

त्मनः ॥ ७ ॥ दक्षयज्ञवधेपूर्व मस्माकं पूर्वजे विभौ ॥ ८ ॥ अथमे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता मया । क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ॥ ९ ॥ भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा । वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ॥ १० ॥ भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् । वरयामासुरागम्य राजानो मुनिपुंगव ॥११॥ तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् । वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम् ॥ १२ ॥ ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंगव । मिथिलामभ्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा ॥ १३ ॥ तेषां जिज्ञासमानानां वीर्यं धनुरुपाहृतम् । न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा ॥ १४ ॥ तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने । प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन ॥ १५ ॥ तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् । रामलक्ष्मणयो श्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत ॥ १६ ॥

टीका—जनक यह सुन कर मुनि से बोला, सुनिये हे भगवन् ? यह धनुष अब जिस प्रयोजन के लिये यहां स्थित है । पूर्वकाल में दक्षयज्ञ के वध में राजा देवरात के हाथ में देवताओं से अमानत दिया गया था, जो कि राजा निमि से छटी * पीढ़ी हमारा पूर्वज एक बड़ा समर्थ राजा हुआ है ।७,८। अब मैं जब (अग्निचयन के लिये) खेत को कर्षण कर रहा था, तब हल के आगे से (एक कन्या) निकली, सो मैंने

*वेङ्कटेश्वर छापेखाने के रामायण में 'निमेर्ज्येष्ठः' निमिका बड़ा पुत्र अशुद्ध है । देवरात निमि का पुत्र न था, छटी पीढ़ी में था, यह रामायण से ही स्पष्ट है ।

क्षेत्र को जोतते हुए पाई थी इसलिये सीता † नाम से विख्यात हुई । ९ । भूतल से निकली हुई, वह मेरी कन्या जब बड़ी हुई, तब मैंने इस अयोनिजा कन्या का मूल्य बहादुरी (उस धनुष को पूरने की शक्ति) ठहराई । १० । भूतल से निकली हुई उस मेरी कन्या को बड़ी होने पर हे मुनिश्रेष्ठ बहुत राजों ने आकर वरने की प्रार्थना की । ११ । उन वरनेवाले सारे राजों को यह कन्या मैंने नहीं दी, क्योंकि हे भगवन् ? बहादुरी इसका मूल्य है । १२ । तब सारे राजे हे मुनिश्रेष्ठ ! मिलकर भी मिथिला में आये और अपना बल जानना चाहा । १३ । उन जिज्ञासावालों के सामने यह शिव का धनुष रक्खा गया, वह उस धनुष को न उठा सके न तोल सके । १४ । हे महामुने ! उन बहादुरों की बहादुरी छोटी जानकर उनको नां किया गया है, हे तपोधन ! यह जान । १५ । सो यह हे मुनि परम तेजवाला धनुष है, अब हे सुव्रत ! राम और लक्ष्मण को भी यह दिखलाऊंगा । १६ ।

सर्ग २० (व० ६७) धनुष का तोडना

मूल—जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः । धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम् ॥१॥ ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह । धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यविभूषितम् ॥२॥ जनकेन समादिष्टाः सचिवाः प्राविशन्पुरम् । मञ्जूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन ॥३॥ तामादाय तु मञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः। सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥ ४ ॥ इदं धनुर्वरं राजन्पूजितं सर्वराजभिः । मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शनीयं यदिच्छसि ॥५॥

† सीता हल की रेखा को कहते हैं । हल की रेखा से बाहर आने के हेतु सीता नाम से प्रसिद्ध हुई । यह कन्यारत्न किसतरह खेत में आई, रामायण में इसकी बाबत कुछ नहीं कहा ।

टीका—जनक के वचन को सुनकर विश्वामित्र महामुनि ने राजा से कहा, कि धनुष राम को दिखलाइये।१। तब राजा जनक ने कर्मचारियों को आज्ञा दी, कि गन्धमाला से शोभायमान दिव्य धनुष को लेआओ।२। जनक से आज्ञा दिये हुए वह कर्मचारी पुरी में प्रविष्ट हुए, और आठ पहियों वाली उस पेटी को बड़ी कठिनता से खींचकर लाए।३। उस पेटी को लाकर जिसमें कि यह धनुष था, वह कर्मचारी देव तुल्य जनक से यह बोले।४। हे राजन्! यह धनुषवर है, जिसका सब राजाओं ने आदर किया है, हे मिथिला के स्वामी राजेन्द्र यह है जिनको आप देखना चाहते हैं ॥५॥

मूल—तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत। विश्वामित्रं महात्मानं तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ॥६॥ इदं धनुर्वरं ब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम्। राजभिश्च महावीर्यैरशक्तैः पूरितुं पुरा ॥७॥ तदेतद्धनुषां श्रेष्ठ मानीतं मुनिपुंगव। दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥

टीका—राजा जनक उन के वचन को सुनकर हाथ जोड़ महात्मा विश्वामित्र और दोनों रामलक्ष्मण से बोला।६। हे ब्रह्मन्! यह धनुषवर है, जिसका सारे जनक आदर करते आए हैं, और इससे पूर्व बड़े २ वीर राजे इसको पूर नहीं सके हैं।७। सो यह धनुष श्रेष्ठ हे मुनिवर यहां लाया गया है, हे महाभाग! यह इन राजपुत्रों को दिखलाइये ॥८॥

मूल—विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम्। वत्स! राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥९॥ महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः। मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥१०॥ इदं धनुर्वरं ब्रह्मन् संस्पृशामीह पाणिना। यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा

धर्मात्मा विश्वामित्र जनक के वचन को सुनकर रामचन्द्र से बोले, वत्स राम धनुष को देखो ।९। राम ब्रह्मऋषि की आज्ञा पाकर जिस में वह धनुष स्थित था, उस पेटी को खोलकर धनुष को देखकर फिर बोला । १० । इस धनुषवर को हे ब्रह्मन् ! मैं हाथ डालता हूं, और इसके तोलने और पूरने (कान तक खींचने) में यत्न करता हूं ॥११॥

मूल—बाढमित्येव तद्राजा मुनिश्च समभाषत । लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥१२॥ पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः । आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः॥१३॥तद्बभञ्ज धनुर्मध्येनरश्रेष्ठो महायशाः।तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः॥१४॥

टीका—राजा ने और मुनि ने कहा हां । मुनि की आज्ञा पाकर उस रघु की सन्तान ने सहस्रों मनुष्यों के देखते हुए लीला से धनुष को मध्य में से पकड़ लिया । महायशस्वी नरश्रेष्ठ ने चिल्ला चढ़ाकर उस धनुष को कानों तक खींचा और मध्य में से दो टुकड़े कर दिया ॥ बिजली की कड़क के तुल्य उसका बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ १२,१३,१४॥

मूल—भूमिकम्पश्च सुमहान्पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १५ ॥ निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः । वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥ १६ ॥ प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्राजा विगतसाध्वसः । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुंगवम् ॥ १७ ॥ भगवन्दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः। अत्यद्भुतमचिन्त्यं च न तर्कितमिदं मया ॥१८॥ जनकानां कुले कीर्त्तिमाहरिष्यति मे सुता । सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥१९॥ मम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्यशुल्केति कौशिक। सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता

टीका—और फटते हुए पर्वत की तरह आस पास की भूमि जोर से कांप गई ।१५। विश्वामित्र जनक और राम लक्ष्मण के सिवाय और सब लोग दहलकर गिर पड़े ।१६। लोगों के तसल्ली पकड़ने पर राजा जनक जिस का सारा भय मिट गया है, हाथ जोड कर वाक्य के जानने वाला मुनिवर से यह वचन बोला ।१७। भगवन् दशरथ सुत राम की वीरता मैंने देख ली है, बडा अद्भुत और अचिन्त्य इस का बल है, मैं ऐसा ख्याल नहीं कर सका था ।१८। मेरी पुत्री सीता दशरथ-सुत राम को भर्त्ता पा कर जनकों की कुल में यश लाएगी ।१९। हे कौशिक ! मेरी प्रतिज्ञा कि सीता का मूल्य बहादुरी है सत्य हुई, मेरी पुत्री सीता जो प्राणों से अधिक प्यारी है राम को दूंगा ।२०।

मूल--भवतोऽनुमतेब्रह्मञ्शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः । मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः ॥२१॥ कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः । अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनान् ॥२२॥ यथावृत्तं समाख्यातुमानेतुं च नृपं तदा ॥२३॥

टीका—आपकी अनुमति में हे ब्रह्मन् ! तेरा भला हो, मेरे मंत्री अब शीघ्र रथों पर सवार हो अयोध्या को जावें ।२१। विश्वामित्र ने "तथास्तु" कहा, तो धर्मात्मा राजा ने मंत्रियों को बुला कर उन को संदेश पत्र देकर अयोध्या की ओर भेजा ।२२। कि वह यथावृत्त जाकर राजा (दशरथ) को बतलावें और लावें ।२३।

सर्ग २१ (व० ६८) दूतों का दशरथ के पास पहुंचना

मूल—जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः । त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन्पुरीम् ॥१॥ ते राजवचनाद्दूता राज-

वेश्म मेत्राशिताः । ददृशुर्देवसंकाशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥२॥ बद्धा-ञ्जालिपुटाः सर्वे दूता विगतसाध्वसाः । राजानं प्रश्रितं वाक्यमब्रुवन्मधुराक्षरम् ॥३॥ मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्रपुरस्कृतः । मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंरक्तया गिरा ॥४॥ कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम् । जनकस्त्वां महाराज ! पृच्छते सपुरःसरम् ॥ ५ ॥ पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः । कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥६॥ पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा । राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥७॥

टीका—जनक से आज्ञा दिये हुए वह दूत तीन रातें मार्ग में रह कर अयोध्या में प्रविष्ट हुए, जिन के घोड़े थक गये हैं।१। दूत राजा की आज्ञा से राजमन्दिर में प्रवेश कराये गये, वहां उन्हों ने देवतुल्य वृद्ध दशरथ राजा को देखा।२। दूत सारे निर्भय हो हाथ जोड़ मधुर अक्षरों वाला यह नम्र वाक्य राजा से कहते भये।३। हे महाराज ! स्नेह से भरी हुई मधुर वाणी से पुरोहित सहित मैथिल राजा जनक ने आपका क्षेम कुशल, आपके पुरोहित उपाध्याय और नौकरों सहित बार २ पूछा है।४, ५। और कुशल पूछ कर धैर्य के साथ विदेहों के राजा मिथिलाधीश ने विश्वामित्र की अनुमति में आप से यह वाक्य कहा है।६। मेरी कन्या का मूल्य बहादुरी है; यह मेरी प्रतिज्ञा पूर्व विख्यात हो चुकी है जिस पर बहुत से राजे शक्तिहीन हो विमुख हो चुके हैं।७।

मूल—सेयं मम सुता राजन्विश्वामित्रपुरस्कृतैः । यदृच्छयागतै राजन्निर्जिता तव पुत्रकैः ॥ ८ ॥ तच्च रत्नधनुर्दिव्यं मध्य भग्नं महात्मना । रामेण हि महाबाहो महत्यां जनसंसदि ॥९॥ अस्मै देया मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने। प्रतिज्ञा तर्तुमिच्छामि

तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१०॥ सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरःसरः। शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥११॥ प्रीतिं च मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि। पुत्रयोरुभयोरेव प्रीतिं त्वमुपलप्स्यते ॥१२॥

टीका—सो यह मेरी कन्या हे राजन्! विश्वामित्र के साथ यदृच्छा से आए हुए तेरे वीर पुत्र ने जीती है ।८। और हे महाबाहो ! वह दिव्य धनुष महात्मा रामने भरी सभा के अन्दर मध्य में से तोड़ डाला है ।९। इस महात्मा को मुझे अब वह सीता देनी है, जिस का मूल्य बहादुरी है, सो मैं प्रतिज्ञा के पार पहुंचना चाहता हूं, आप इस में अनुज्ञा देने योग्य हैं ।१०। हे महाराज उपाध्याय और पुरोहित समेत शीघ्र आइये, आपका कल्याण हो, आकर राम लक्ष्मण को देखने योग्य हैं ।११। महाराज मेरी प्रीति को पूरा करने योग्य हैं आप भी दोनों ही पुत्रों की प्रीति देखेंगे* १२

मूल—दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः। वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणोऽन्यांश्च सोऽब्रवीत् ॥१३॥ दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना। संप्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति॥१४॥ यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः। पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत्कालस्य पर्ययः॥१५॥ मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सहसर्वैर्महर्षिभिः। सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः ॥१६॥

टीका—दूत के वाक्य को सुन कर राजा परम प्रसन्न हुआ वसिष्ठ वामदेव और दूसरे मन्त्रियों से बोला ।१३। महात्मा जनक ने राम के बल को देखा है, वह राम को अपनी कन्या देना चाहता

* इससे यह प्रतीत होता है कि जनक ने अपनी दूसरी कन्या ऊर्मिला को लक्ष्मणसे व्याहने का विचार कर लिया था।

है । १४। आपको यदि महात्मा जनक का कुल शील पसन्द है, तो जल्दी उस पुरी को चलें, समय का विलम्ब न हो । १५ । सब मन्त्रियों ने सारे महार्षियों के साथ मिलकर 'बहुत अच्छा, ऐसा कहा, तिसपर राजा बड़ा प्रसन्न होकर मंत्रियों से बोला, कल यात्रा होगी । १६ ।

सर्ग २२ (व० ६९) दशरथ का मिथला गमन

मूल—ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः । राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम् । व्रजन्त्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः ॥ २ ॥ चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः । वासिष्ठो वामदेवश्च जावालिरथ काश्यपः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुर्ऋषिः कात्यायनस्तथा । एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे ॥ ४ ॥ वचनाच्च नरेन्द्रस्य सेना च चतुरङ्गिणी । राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥ ५ ॥ गत्वा चतुरहं मार्गं विदेहानभ्युपेयिवान् । राजा च जनकः श्रीमाञ्छ्रुत्वा पूजामकल्पयत् ॥ ६ ॥ ततो राजानमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम् । उवाच च नरश्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितम् ॥ ७ ॥

टीका—तब रात के बीतने पर उपाध्याय और बान्धवों समेत प्रसन्न हुआ राजा दशरथ, सुमन्त्र से यह बोला । १ । आज सारे धनाध्यक्ष [खज़ानची]पुष्कल धन ले कर नाना रत्नों से युक्त पूरे तय्यार हुए आगे चलें । २ । (हाथी,घोड़े,रथ और प्यादे) इन चार अंगों वाली सेना चारों ओरसे जल्दी चले । वसिष्ठ,वामदेव, जावालि, काश्यप । दीर्घायु मार्कण्डेय और ऋषि कात्यायन यह ब्राह्मण आगे चलें, और मेरा रथ जोड़ । ३,४ । राजा की आज्ञा पाकर वह चार अङ्गों वाली सेना ऋषियों के साथ चलते हुए

राजा के पीछे चलो। ५। चार दिन मार्ग चलकर विदेहों के देश में पहुंचे, श्रीमान् राजा जनक सुनकर उनकी पूजा तय्यार करते भए। ६। तब वृद्ध राजा दशरथ को पाकर हर्ष से भरा हुआ वह नरश्रेष्ठ (जनक) नरश्रेष्ठ (दशरथ) से बोला। ७।

मूल—स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव। पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम् ॥ ८ ॥ दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः। सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः ॥ ९ ॥ दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम्। राघवैः सह संबन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः ॥ १० ॥ ततः सर्वे मुनिगणाः परस्पर समागमे। हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन् सुखम् ॥११॥ राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः। उवास परमप्रीतो जनकेनाभिपूजितः ॥१२॥ जनकोऽपि महातेजाः क्रिया धर्मेण तत्त्ववित्। यज्ञस्य च सुताभ्यां च कृत्वा रात्रिमुवास ह ॥ १३ ॥

टीका—महाराज आपका आना शुभ हो, हे राघव! हमारे भाग्य से आए हो, अपने बल से जीती हुई दोनों पुत्रों की प्रीति (खुशी) लाभ करोगे।८।यह बड़ा तेजस्वी भगवान् वसिष्ठऋषि दूसरे श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ हमारे भाग्य से देवों के साथ इन्द्र की तरह आया है। ९। भाग्य से मेरे विघ्न जीते गए हैं, भाग्य से मेरा कुल पूजित होगया है, जब कि बल में श्रेष्ठ महात्मा राघवों के साथ सम्बन्ध हुआ है। १०। तब सारे मुनिगण परस्पर के समागम में बड़े हर्ष से युक्त हुए, वह रात आराम से रहे। ११। राजा भी दोनों पुत्रों को देखकर जनक से पूजा हुआ परम प्रीति के साथ वास करता भया। १२। तत्त्ववेत्ता महातेजस्वी जनक भी यज्ञ के अवशिष्ट कर्म को और दोनों कन्याओं के लिये (विवाह सम्बन्धि) कर्म को विधि पूर्वक करके रात को सोया ॥ १३ ॥

सर्ग २३ (व०७०) दशरथ की वंशावालि

मूल—ततः प्रभाते जनकःकृतकर्मा महर्षिभिः। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम् ॥ १ ॥ भ्राता मम महातेजा वीर्यवानतिधार्मिकः । कुशध्वजइति ख्यातःपुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥२॥ सांकाश्यांपुण्यसंकाशां विमानामिव पुष्कम् ॥३॥ तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे मतः। प्रीतिं सोऽपि महातेजा इमां भोक्ता मया सह ॥४॥आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः। सददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम् ॥५॥ सोऽभिवाद्य शतानन्दं जनकं चातिधार्मिकम् । राजार्हं परमं दिव्यमासनं सोऽध्यरोहत ॥६॥ उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितद्युती । प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम् ॥ ७ ॥ गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमिक्ष्वाकुममितप्रभम् । आत्मना सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम् ॥८॥ औपकार्यां स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम् । ददर्श शिरसा चैतमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयोध्याधिपते वीर विदेहो मिथिलाधिपः । स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम् ॥ १० ॥

टीका—तब प्रभात के समय जनक महर्षियों के साथ कर्म करके वाक्य के जानने वाला वह शतानन्द पुरोहित से वाक्य बोला । १ । मेरा छोटा भाई बड़ा तेजस्वी अतिधार्मिक कुशध्वज जो पुष्पक विमान की तरह स्थित स्वर्ग तुल्य सांकाश्य पुरी में रहता है । २ । ३ । मैं उसको देखना चाहता हूं, वह मेरे यज्ञ का रक्षक होगा, वह भी महातेजस्वी मेरे साथ इस प्रीति (खुशी) को भोगेगा ।४। तब राजा की आज्ञा से कुशध्वज आगया, और आकर धर्मवत्सल महात्मा जनक को मिला ।५। वह शतानन्द को और धर्मात्मा राजा को प्रणाम करके राजा के योग्य दिव्य

आसन पर बैठा । ६ । वह दोनों तेजस्वी शूरवीर भाई बैठ गए और सुदामा मन्त्री को भेजते भए। ७। हे मन्त्रिश्रेष्ठ! महातेजस्वी इक्ष्वाकुओं के राजा के पास शीघ्र जाओ, और बडे साहस वाले राजा को मन्त्रियों और पुत्रों सहित यहां लाओ । ८ । दशरथ की छावनी में जाकर उसने रघुओं के कुल बढ़ाने वाले (दशरथ) को देखा और सिर झुकाकर प्रणाम करके यह बोला । ९ । हे अयोध्याधिपतेवीर ! वैदेह राजा मिथिलाधिपति उपाध्याय और पुरोहित सहित आपके दर्शनों को चाहता है ।१० ।

मूल—मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तदा । सबन्धुरगमत्तत्र जनको यत्र वर्तते ॥ ११ ॥ राजा च मन्त्रिसहितः सोपाध्यायः सबान्धवः । वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत् ॥ १२ ॥ विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम् । वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वसिष्ठो भगवानृषिः ।

टीका—मन्त्रिश्रेष्ठ के वचन को सुनकर राजा ऋषिगण और वन्धुओं समेत वहां गए जहां जनक था । ११ । वाक्य के जानने वालों में श्रेष्ठ वह राजा मन्त्रियों पुरोहित और बान्धवों सहित वैदेह राजा से यह वाक्य बोला । १२ । आपको विदित है, हे महाराज ! इक्ष्वाकुकुल का देवता (परम गुरु) भगवान् वसिष्ठ ऋषि हमारे सारे कार्य्यों में वक्ता है । १३ ।

मूल—एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठोऽयं यथाक्रमम् । तूष्णींभूते दशरथे वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१४॥ उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोधसम् । मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः ॥ १५ ॥ तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् । इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः ॥ १६ ॥ कुक्षेरथात्मजः

श्रीमान्विकुक्षिरुदपद्यत। विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतावान् ॥

टीका—यह धर्मात्मा वसिष्ठ मेरे वंश को यथाक्रम कहेगा। दशरथ के चुप होने पर वाक्य के जाननेवाला भगवान् वसिष्ठ ऋषि पुरोहित सहित विदेह राजा से यह वाक्य बोला, कि मनु पहला प्रजापति, (प्रजा का मालिक राजा) हुआ है, इक्ष्वाकु मनु का पुत्र ॥ १४, १५ ॥ उस इक्ष्वाकु को अयोध्या में सब से पहला राजा जान, इक्ष्वाकु का पुत्र श्रीमान् कुक्षि हुआ ॥१६॥ कुक्षि का पुत्र श्रीमान् विकुक्षि, विकुक्षि का पुत्र बड़ा तेजस्वी प्रतापी बाण हुआ है ॥ १७ ॥

मूल—बाणस्य तु महातेजा अनरण्यः प्रतापवान् । अनरण्याद पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि ॥१८॥ त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः । धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः ॥ १९ ॥ युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः । मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान्सुसन्धिरुदपद्यत ॥ २० ॥ सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसन्धिः प्रसेनजित् । यशस्वीध्रुवसन्धेस्तु भरतो नाम नामतः ॥ २१॥ भरतात्तु महातेजा असितो नाम जायत । यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः ॥ २२ ॥

टीका—बाण का बड़ा तेजस्वी प्रतापी अनरण्य, अनरण्य से पृथु हुआ, पृथु का पुत्र त्रिशंकु हुआ ।१८। त्रिशंकु का पुत्र महायशस्वी धुन्धुमार, धुन्धुमार से तेजस्वी युवनाश्व हुआ।१९। युवनाश्व का पुत्र राजा मान्धाता, मान्धाता का पुत्र श्रीमान् सुसन्धि हुआ ।२०। सुसन्धि के दो पुत्र ध्रुवसंधि और प्रसेनजित्, ध्रुवसन्धि का यशस्वी भरत हुआ।२१। भरत से महातेजस्वी असित हुआ, जिसके यह मुकाबिले के क्षत्रिय शत्रु उत्पन्न हुए ॥ २२॥

मूल—हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः। तांश्च स प्रतियुध्यन्वै युद्धे राजा प्रवासितः ॥ २३ ॥ हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा। असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान् २४ ॥ द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः। एका गर्भविनाशार्थं सपत्न्यै सगरं ददौ ॥ २५ ॥ ततः शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः। भार्गवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः ॥ २६ ॥ तत्र चैका महाभागा भार्गवं देववर्चसम्। तमृषिं साभ्युपागम्य कालिन्दी चाभ्यवादयत ॥ २७ ॥ स तामभ्यवदद्विप्रः पुत्रेप्सुं पुत्रजन्मनि। तव कुक्षौ महाभागे सुपुत्रः सुमहाबलः॥२८॥ महावीर्यो महातेजा अचिरात्संजनिष्यति ॥ २९ ॥ च्यवनं च नमस्कृत्य राजपुत्री पतिव्रता। पत्या विरहिता तस्मात्पुत्रंदेवी व्यजायत ॥ ३० ॥ सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया। सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत् ॥ ३१ ॥

टीका—हैहय, तालजंघ, और बहादुर शशबिन्दु उनके साथ युद्ध में लड़ता हुआ राजा राज्य से निकाला गया। २३। तब वह दो पत्नियों समेत हिमालय में आकर, वह थोड़े बल वाला असित राजा मरगया। २४। उस समय उसकी दोनों पत्नियें गर्भवती थीं, उनमें से एक ने गर्भ के नाश के लिये सौतिन को विषवाला भोजन दिया। २५। वहां उस रमणीय उत्तम पर्वत में प्रीतिवाला भृगुवंशी च्यवन नाम मुनि हिमालय में रहता था। २६ ॥ सो वह रानी कालिन्दी उस देवतुल्य तेजवाले भृगुवंशी ऋषि के पास आई, और उसकी बन्दना की। २७। उस ब्राह्मण ने उस पुत्र की इच्छा वाली को पुत्र जन्म के विषय में आशीर्वाद दिया, तेरी कुक्षि से हे महाभागे बहुत बड़ा बली, बड़ा पराक्रमी

बड़ा तेजस्वी सुपुत्र जल्दी उत्पन्न होगा । २८, २९ । पति से रहित पतिव्रता वह राजपुत्री देवी च्यवन को नमस्कार करके उसके अनुग्रह से पुत्र को जन्म देती भई । ३० । सौतिन ने उसके गर्भ के नाश की इच्छा से विष दिया था, वह उस विष के साथ उत्पन्न हुआ इसलिये सगर * हुआ ॥ ३१ ॥

मूल—सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान् । दिलीपोऽंशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ॥ ३२ ॥ भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा । रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ॥ ३३ ॥ कल्माषपादोऽप्यभवत्तस्माज्जातस्तु शङ्खणः । सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात् ॥ ३४ ॥ शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः । मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात् ३५॥ अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः । नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः ॥ ३६ ॥ नाभागस्य बभूवाज अजाद्दशरथोऽभवत् । अस्माद्दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३७॥ रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप । सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि ॥

टीका—सगर का असमञ्ज हुआ, असमञ्ज से अंशुमान, अंशुमान का पुत्र दिलीप हुआ, दिलीप का भगीरथ । ३२ । भगीरथ से ककुत्स्थ, ककुत्स्थ से रघु, रघु का पुत्र तेजस्वी प्रवृद्ध, जो पुरुषादक और कल्माषपाद भी कहलाया है, उसका पुत्र शंखन हुआ, शंखन का सुदर्शन, सुदर्शन का अग्निवर्ण । ३३, ३४ । अग्निवर्ण का शीघ्रग, शीघ्रग का मरु, मरु का प्रशुश्रुक, प्रशुश्रुक का अम्बरीष । ३५ । अम्बरीष का पुत्र राजा नहुष हुआ,

---

* विष का नाम गर है गर के साथ होने से सगर हुआ ॥

नहुष का ययाति, ययातिका नाभाग।३६। नाभाग का अज,*
अज का दशरथ,इस दशरथ से यह दोनों भाई राम लक्ष्मण जन्मे
हैं। ३७। इन राम लक्ष्मण के अर्थ हे राजन् तेरी दोनों कन्याओं
को वरता हूं, हे नरश्रेष्ठ इन (वंश, रूप, यौवन में) सदृशों को
सदृश (कन्याएं) देने योग्य हो। ३८।

सर्ग २४ (व० ७१) जनक की वंशावलि

एवं ब्रुवाणं जनकःप्रत्युवाच कृताञ्जलिः॥१॥प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ
कुलं निरवशेषतः। वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामते॥२॥राजा
भूवत्रिषु लोकेषुविश्रुतःस्वेनकर्मणा।निमिःपरमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतां
वरः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो मिथिर्नाम मिथिलायेननिर्मिता †। प्रथमो
जनको नाम जनकादप्युदावसुः ॥ ४ ॥ उदावसोस्तु धर्मात्माजातो
वै नन्दिवर्धनः। नन्दिवर्धनसुतः शूरः सुकेतुर्नाम नामतः॥५॥सुके-
तोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः। देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति
स्मृतः ॥ ६ ॥ बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान्। महावीरस्य
धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः॥७॥ सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सु-
धार्मिकः। धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः ॥ ८ ॥

टीका—ऐसे कहते हुए (वसिष्ठ) से जनक हाथ जोड़कर बोले।१।
कन्यादान के समय हे मुनिश्रेष्ठ! कुलीन पुरुष को अपना कुल
पूरी तरह कहना चाहिये, सो हे महामुने! सुनिये। २। तीनों

---

* यह वंशावलि कालिदास के रघुवंश से और कई पुराणों से बहुत भेद रखती है, इतिहास के लिए उपयोगी होने से यहां ज्यों की त्यों लिख दी है, पर इसको ठीक करने की आवश्यकता है।

† "मिथिलायेननिर्मिता" की जगह "जनको मिथि पुत्रकः" 'मिथि का पुत्र जनक हुआ' भी पाठान्तर है। इस में एक पीढ़ी का भेद पड़ता है, ठीक करने के लिये अनुसन्धान होना चाहिये।

लोकों में अपने कर्म से विख्यात, सारे दिलेरों में चुना हुआ, परमधर्मात्मा राजा निमि हुआ है । ३ । उसका पुत्र मिथि हुआ, जिसने मिथला की नींव डाली, वही पहला जनक हुआ है (उसी के नाम से हमारे वंशीय जनक कहलाते हैं,) जनक से उदावसु हुआ । ४ । उदावसु से धर्मात्मा नन्दिवर्धन उत्पन्न हुआ, नन्दिवर्धन का पुत्र सुकेतु नामी हुआ ।५। सुकेतु का भी धर्मात्मा देवरात हुआ (इसी के समयका यह धनुष था) राजऋषि देवरात का पुत्र बृहद्रथ, बृहद्रथ का प्रतापी सूरमा महावीर हुआ है, महावीर का बड़े धैर्य वाला सच्चे पराक्रम वाला सुधृति ।६,७। सुधृति का भी धर्मात्मा धृष्टकेतु जो बड़ा धार्मिक हुआ है, धृष्टकेतु राजऋषि का हर्यश्व हुआ है ।८।

मूल—हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोःपुत्रः प्रतीन्धकः । प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्त्तिरथः सुतः ॥ ९ ॥ पुत्रः कीर्त्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः ।देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः॥ १० ॥ महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः । कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत ॥ ११ ॥ महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत । स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १२ ॥ तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः । ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः॥१३॥ मां तु ज्येष्ठं पिता राज्ये सोऽभिषिच्य पिता मम । कुशध्वजं समावेश्य भारं मयि वनं गतः ॥१४॥ वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम् । भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात्पश्यन्कुशध्वजम् ॥१५॥

टीका—हर्यश्व का पुत्र मरु, मरु का प्रतीन्धक, प्रतीन्धक का पुत्र धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ।९। कीर्तिरथ का पुत्र देवमीढ़, देवमीढ का

विबुध, विबुध का महीध्रक । १० । महीध्रक का पुत्र महाबली कीर्तिरात, कीर्तिरात राजऋषि का महारोमा उत्पन्न हुआ । ११ । महारोमा का धर्मात्मा स्वर्णरोमा उत्पन्न हुआ, स्वर्णरोमा ऋषि का ह्रस्वरोमा उत्पन्न हुआ । १२ । उस धर्मज्ञ महात्मा के दो पुत्र हुए, बड़ा मैं हूं मेरा छोटा भाई वीरकुशध्वज है । १३ । मुझ बड़े को पिता राजतिलक देकर और कुशध्वज को सौंपना करके बनको चले गए । १४ । वृद्ध पिता का स्वर्गवास होने पर मैंने धर्म से राज्य की धुरा को उठाया, और देव तुल्य भाई कुशध्वज को स्नेह से देखता रहा । १५ ।

मूल—कस्यचित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात् । सुधन्वा वीर्यवान्राजा मिथिलामवरोधकः ॥१६॥ स च मे प्रेषयामास शैवं धनुरनुत्तमम् । सीता कन्या च पद्माक्षी मह्यं वै दीयतामिति ॥ १७॥ तस्याप्रदानाद् ब्रह्मर्षे युद्धमासीन्मया सह । स हतोऽभिमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे ॥१८॥ निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम् । सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम् ॥१९॥

टीका—कुछ समय के पीछे सांकाश्यपुर से बड़े बलवान् सुधन्वा राजा ने आकर मिथिला को घेर लिया । १६ । उसने मेरे पास दूत भेजे, कि अत्युत्तम शैवधनुष और पद्मतुल्य नेत्रों वाली अपनी कन्या सीता मुझे दीजये । १७ । किन्तु उसके न देने से हे ब्रह्मऋषि मेरे साथ युद्ध हुआ, वह राजा सुधन्वा रणमें सम्मुख लड़ता हुआ मुझसे मारा गया । १८ । हे मुनिश्रेष्ठ ! सुधन्वा राजा को मारकर सांकाश्य में अपने भाई वीरकुशध्वज को तिलक दिया॥

मूल—कनीयानेष मे भ्राता अहं ज्येष्ठो महामुने । ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥२०॥ सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्म-

णाय च ॥ २१ ॥ वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ।
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः ॥२२॥ रामलक्ष्म-
णयो राजन्गोदानं कारयस्व ह। पितृकार्यं च भद्रं ते ततो
वैवाहिकं कुरु ॥२३॥ मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीयादिवसे प्रभो ।
फाल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन्वैवाहिकं कुरु ॥२४॥ रामक्ष्मणयोरर्थे
दानं कार्यं सुखोदयम् ॥२५॥

टीका—हे महामुने ! यह मेरा छोटा भाई है, और मैं बड़ा हूं,
हे मुनिश्रेष्ठ ! परमप्रसन्न हुआ दो बहुएं तुझे देता हूं ।२०।
सीताराम के लिये और ऊर्मिला लक्ष्मण के लिये ।२१। देवक-
न्या के तुल्य मेरी कन्या सीता जिसका बहादुरी मूल्य है, वह,
और दूसरी ऊर्मिला देता हूं, तीनवार कहता हूं इस में संशय
नहीं ।२२। हे राजन् ! रामलक्ष्मण का समावर्तन संस्कार कीजिये
और पितृकार्य कीजिये, तदनन्तर विवाह सम्बन्धि कर्म कीजिये
।२३। आज मघा है, हे बड़ी भुजा वाले ! तीसरे दिन उत्तरा-
फाल्गुनी में हे राजन् ! विवाह कीजिये ।२४। और हे राजन् !
रामलक्ष्मण से दान करवाइये, जो कि कल्याण का हेतु है ।२५।

सर्ग २९ (व० ७२) चारों के विवाह का निश्चय

मूल—तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः । उवाच वचनं
वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥ १ ॥ अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि
नरपुंगव । इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन
॥ २ ॥ सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसंपदा । रामलक्ष्मणयो
राजन्सीते योर्मिलया सह ॥ ३ ॥ वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं
मम । भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः ॥ ४ ॥ अस्य
धर्मात्मनो राजन्रूपेणाप्रतिमं भुवि । सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वर-

यामहे ॥ ५ ॥ भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः ॥ ६ ॥ पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः । लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ॥ ७ ॥

टीका—जब विदेह राजा ऐसा कह चुके तो वासिष्ठ सहित महामुनि विश्वामित्र उस वीर राजा से यह वचन बोले ।१। हे नरश्रेष्ठ ! इक्ष्वाकुओं के और विदेहों के कुल अचिन्त्य और अप्रमेय हैं, इन के तुल्य कोई नहीं है । २ । हे राजन् ! सीता और उर्मिला के साथ रामलक्ष्मण का धर्म सम्बन्ध अनुरूप है, और रूप की संपदा से सदृश है । ३ । पर हे नरश्रेष्ठ ! कुछ और भी कहना है, मेरा वचन सुनिये । आप का यह छोटा भाई धर्मज्ञ राजा कुशध्वज है । ४ । इस धर्मात्मा की हे राजन् ! दोनों कन्याएं जो इस भूमि में रूप से अतुल हैं, उन दोनों को हे नरश्रेष्ठ ! कुमार भरत और बुद्धिमान् शत्रुघ्न की पत्नी के अर्थ हम वरते हैं । ५, ६ । दशरथ के पुत्र रूपयौवन से शोभा वाले, सारे लोकपालों के तुल्य, देवतुल्य पराक्रम वाले हैं ।७ ।

मूल—उभयोरपि राजेन्द्र संबन्धेनानुबध्यताम् । इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः ॥८॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वासिष्ठस्य मते तदा । जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुंगवौ ॥९॥ कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुङ्गवौ । सदृशं कुलसम्बन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम् ॥ १० ॥ एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे । पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥११॥ एकान्हा राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने । पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ॥ १२ ॥ तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः । राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥१३॥ युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ । ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः ॥१४॥

टीका--तुम दोनों (भाइयों) के सम्बन्ध से हे राजन्! इक्ष्वाकु का कुल, और आप जो पुण्यकर्मा है उनका कुल, पूरा सम्बन्ध वाला होजाए।८। वसिष्ठके मत में विश्वामित्र के वचन को सुनकर जनक हाथ जोड़ मुनिवरों से बोला।९। मैं इस कुल को धन्य समझता हूं, जिनके कुल सम्बन्ध को हे मुनिवरो! आप स्वयं सदृश बतलाते हैं।१०। ऐसे ही हो, आपका कल्याण हो, यह दोनों कुशध्वज की कन्याएं भरत और शत्रुघ्न की पत्नी हों।११। एक ही दिन हे महामुने! महाबली चारों राजपुत्र चारों राजपुत्रियों के हाथ पकड़ें।१२। वैदेह जनक के ऐसा कहने पर रघु की संतान राजा दशरथ प्रसन्न हो राजा (जनक) से बोले। १३ ॥ आप दोनों भाई मिथिला के मालिक असंख्यात गुणों वाले हैं। आपने ऋषि और राज समूह पूजे हैं ॥ १४ ॥

मूल--स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामि स्वमालयम्। श्राद्धकर्माणि सर्वाणि विधास्यामीति चाब्रवीत् ॥ १५ ॥ तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा। मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः ॥१६॥ स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः। प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ॥ १७ ॥

टीका और कहा, आप को स्वस्ति प्राप्त हो, आप का भला हो, मैं अपने स्थान पर जाता हूं, और सारे श्राद्ध कर्म* करता हूं ॥१५॥ इस प्रकार उस राजा से आज्ञा लेकर महायशस्वी राजा दशरथ उस समय दोनों मुनियों को आगे करके शीघ्र चले गए। १६। और घर जा विधि से श्राद्ध करके प्रभात के समय दिन खुलते ही उठकर वह राजा (पुत्रों का) उत्तम समावर्तन करते भए॥

* विवाहोत्सव के आरम्भ में कर्तव्य ब्रह्म भोज।

सर्ग २६ (व० ७३) विवाहविधि

मूल—यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम् । तस्मिंस्तु दिवसे शूरो युधाजित्समुपेयिवान् ॥ १ ॥ पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः । दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ केकयाधिपती राजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत् । येषां कुशलकामोऽसि तेषां संप्रत्यनामयम् ॥ ३ ॥ स्वस्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामो महीपतिः । तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन ॥ ४ ॥

टीका—जिस दिन राजा ने उत्तम समावर्तन किया, उसी दिन केकय राजा का पुत्र, भरत का साक्षात् मामा सूरमा युधाजित् वहां आया, और मिलकर तथा कुशल पूछकर राजा से यह बचन बोला ॥ १, २ ॥ केकयदेश के अधिपति राजा ने स्नेह से आप के प्रति कुशल कहा है, जिनका आप कुशल चाहते हैं, उनका इस समय कुशल है । ३ । और हे राजेन्द्र राजा ! (केकय) मेरे भानजे (भरत) को देखना चाहता है, इसलिए हे रघुनन्दन ! मैं पहले अयोध्या में आया ॥ ४॥

मूल—श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान् । मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते ॥ ५ ॥ त्वरयाभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम् । अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम् ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत् । ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७ ॥ प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि कर्मवित् । ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ ८ ॥

टीका—फिर अयोध्या में यह सुन कर कि आप के पुत्र हे राजन् ! आप के सहित मिथिला में गए हैं । ५ । भानजे को देखने की कामना से तुरंत यहां आया हूं । अब राजा

दशरथ प्राप्त हुए अपनी प्यारी के अतिथि ।६। पूजा के योग्य को परमसत्कारों से पूजते भए। तब महात्मा पुत्रों के सहित उस रात आनन्द से वास किया ॥ ७ ॥ प्रभात के समय फिर उठ कर वह कर्म का जानने वाला सारे कर्म करके ऋषियों को आगे कर यज्ञ स्थान में आया ॥ ८ ॥

मूल—युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः । भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ९ ॥ पितुः समीपमाश्रित्य तस्थौ भ्रातृभिरावृतः । वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत् ॥ १० ॥ राजा दशरथो राजन्कृतकौतुकमङ्गलैः । पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते ॥ ११ ॥ इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना । प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित् ॥ १२ ॥

टीका—और राम उचित विजय मुहुर्त में सारे भूषणों से भूषित भाइयों समेत कौतुक मङ्गल करके ।९। भाइयों समेत पिता के समीप आखड़ा हुआ, अब वसिष्ठ विदेह राजा के पास जाकर यह बोले ॥ १० ॥ हे नरवरश्रेष्ठ हे राजन् ! राजा दशरथ कौतुक मंगल कर चुके हुए पुत्रों सहित (प्रवेश के लिये) दाता [आप] की आज्ञा चाहता है ॥ ११ ॥ महात्मा वसिष्ठ ने जब उन जनक परम उदार को यह कहा, तो वह परम धर्म का जानने वाला महातेजस्वी उत्तर देता भया ॥ १२ ॥

मूल—कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां संप्रतीक्षते । स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव ॥ १३ ॥ कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः । मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्ता वह्नेरिवार्चिषः ॥ १४ ॥ सज्जोऽहं त्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः। अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते ॥ १५ ॥ तद्वाक्यं

जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तथा। प्रवेशयामास सुतान्सर्वानृषि-
गणानपि ॥ १६ ॥ ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत्।
कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक ॥ १७ ॥

टीका—कौन मेरा द्वारपाल खड़ा है, किस की आज्ञा की प्रतीक्षा (उडीक, इन्तजारी) करते हैं, अपने घर में क्या विचार है, जैसा वह राज्य आपका है वैसा यह भी है ॥ १३ ॥ विवाह का सारा कौतुक (मङ्गल कर्म) करके हे मुनिवर! अग्नि की चमकती हुई किरणों की तरह मेरी कन्याएं वेदि के पास आई हुई हैं ॥ १४ ॥ सो मैं तय्यार हो इस वेदि में खड़ा आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूं, अब महाराज बिना विलम्ब के कार्य करें, किस लिए (द्वार पर ठहरकर) देर लगा रहे हैं ॥ १५ ॥ जनक के कहे हुए वाक्य को सुनकर दशरथ ने पुत्रों का प्रवेश कराया, और उन सारे ऋषि गणों को भी ॥ १६ ॥ तब विदेहों का राजा वसिष्ठ से यह बोला, हे धार्मिक ऋषि! इन ऋषियों के साथ सारा कर्म कराइये ॥ १७ ॥

मूल—तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः। विश्वामित्रं पुर-
स्कृत्य शतानन्दं च धार्मिकम् ॥ १८ ॥ प्रपामध्ये तु विधिवद्वेदिं
कृत्वा महातपः। अलंचकार तां वेदिं गन्धपुष्पैः समन्ततः॥ १९ ॥
सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुम्भैश्च सांकुरैः। अङ्कुराढ्यैः शरावैश्च
धूपपात्रैः सधूपकैः ॥२०॥ शङ्खपात्रैः स्रुवैः स्रुग्भिः पात्रैरर्घ्यादि-
पूरितैः। लाजपूर्णैश्चपात्रीभिरक्षतैरपि संस्कृतैः ॥ २१ ॥

टीका—तब महातपस्वी भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने जनक को "तथास्तु" कह कर, विश्वामित्र को और धार्मिक शतानन्द को आगे करके। १८। मण्डप के मध्य में विधिपूर्वक वेदि बनाकर उस वेदि

को चारों ओर गन्ध पुष्पों मे सजाया । १९ । सुन्दरी रेखाओं मे और अंकुरों से युक्त विचित्र गमलों मे तथा अंकुरों से भरे हुए प्यालों से और धूप युक्त धूप के पात्रों मे । २० । शंखों से स्रुवों से स्रुचों से और अर्घ्यजल से पूरित पात्रों से, लाजा (फुल्लियों) से पूर्ण पात्रों से और संस्कार किये हुए अक्षतों से (सजा दिया) । २१ ।

मूल—दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् । अग्निमाधायवेद्यां तु विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ २२ ॥ जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः । ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् ॥ २३ ॥ समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा । अब्रवीज्जनको राजा कौशल्यानन्दवर्धनम् ॥२४॥इयं सीता मम सुता सह धर्मचरी तव । प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना॥२५॥पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा । इत्युक्त्वा प्राक्षिपद्राजा मन्त्रपूतं जलं तदा २६

टीका—एक तुल्य कुशाओं को यथाविधि बिछाकर मन्त्र पूर्वक अग्नि को वेदि में स्थापन करके महातेजस्वी भगवान् वसिष्ठ ऋषि अग्नि में होम करते भए, तब सारे भूषणों से भूषित सीता को लाकर ।२२, २३ । अग्नि के समक्ष राम के सम्मुख स्थापन करके राजा जनक कौशल्या के आनंद बढ़ाने वाले (=राम)से बोला । २४ । यह सीता मेरी कन्या तेरी सहधर्मचारिणी (साथ धर्मकार्य करनेवाली) हो, इस को स्वीकार करो, तुम्हारा कल्याण हो, हाथ को हाथ से पकड़ । २५ । पतिव्रता होकर यह महाभागा छाया की तरह सदा तेरी अनुगत रहेगी, यह कह कर राजा ने मन्त्र से पवित्र किया हुआ जल छोड़ दिया ॥ २६ ॥

मूल—साधु साध्विति देवानामृषीणां वदतां तदा । देवदुन्दुभिनिर्घोषः पुष्पवर्षो महानभूत् ॥ २७ ॥ एवं दत्त्वा सुतां सीतां

मन्त्रोदकपुरस्कृताम् । अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः॥२८॥
लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया । प्रतीच्छ पाणिं गृणीष्व
मा भूत्कालस्य पर्ययः॥२९॥तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत।
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दनः ॥३०॥ शत्रुघ्नं चापि
धर्मात्मा अब्रवीन्मिथलेश्वरः । श्रुतकीर्तेमहाबाहो पाणिं गृणीष्व
पाणिना ॥३१॥ सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ।
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥ ३१ ॥

टीका—देवताओं और ऋषियों ने साधु २ कहा, देवताओं की दुन्दुभियें बजीं, और फूलों की बहुत बड़ी वर्षा हुई ।२७। इसप्रकार मंत्र और जल से आदर के साथ सीता का दान करके राजा जनक हर्ष से भरा हुआ फिर बोला ।२८। लक्ष्मण आओ, तुम्हारा कल्याण हो, ऊर्मिला को स्वीकार कर, इसका हाथ पकड़, समय का विलम्ब मत हो ।२९। जनक उसको ऐसा कह कर फिर भरत से बोला हे रघुनन्दन ! माण्डवी के हाथ को हाथ से ग्रहण कर ।३०। शत्रुघ्न को भी धर्मात्मा जनक बोला, हे महाबाहो श्रुतकीर्ति के हाथ को हाथ से ग्रहणकर ।३१। सारे आप सौम्य हैं, सारे ब्रह्मचर्य को पूरी तरह पालन किये हुए हैं, हे ककुत्स्थ वंशियो ! तुम पत्नियों के सहित होवो, समय का विलम्ब नहो।

मूल—जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन्पाणिभिरस्पृशन् । चत्वारस्ते
चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः ॥ ३३ ॥ अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा
वेदिं राजानमेव च । ऋषींश्चापि महात्मनः सहभार्या रघूद्वहाः।३४।
यथोक्तेन ततश्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम् । त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहु-
र्भार्या महौजसः ॥३५॥ अथोपकार्यां जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः ।
राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥ ३६ ॥

टीका—जनक के वचन को सुनकर वसिष्ठ की आज्ञा में वह चारों अपने हाथों से उन चारों के हाथों को स्पर्श करते भए। ३३। अग्नि की, वेदि की, राजा की और ऋषियों की प्रदक्षिणा करके वह रघुवर महात्मा पत्नियों समेत।३४। शास्त्रोक्त प्रकार से विधि पूर्वक विवाह करते भए। तीन बार वह महापराक्रमी अग्नि की परिक्रमा करके स्त्रियों को व्याहते भए। ३५। तब वह रघुनन्दन पत्नियों समेत अपनी छावनी को गये, राजा (जनक) भी ऋषि समूह के सहित और बान्धवों के सहित इस कल्याण सम्बन्ध को देखता हुआ उनके पीछे गया॥ ३६॥

सर्ग २७ (व० ७४) परशुराम का मिलना

मूल—अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः। आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम् ॥ १ ॥ विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम्। आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम्।२॥ अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु। दत्त्वा बहुविधं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम् ॥३॥ प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः। राजाप्ययोध्याधिपतिः सह पुत्रैर्महात्मभिः॥ ४ ॥

टीका—अब रात के बीतने पर महामुनि विश्वामित्र उन दोनों राजाओं (जनक दशरथ) से आज्ञा लेकर उत्तर पर्वत की ओर चला गया। १। विश्वामित्र के चले जाने पर मिथिला के स्वामी जनक से आज्ञा लेकर राजा दशरथ अपनी पुरी की ओर चला।२। तब विदेहों के राजा ने बहुत सा कन्याधन (दहेज)दिया, अनेक प्रकार का धन (सोना चान्दी हाथी घोड़ा नौकर चाकर) देकर और दशरथ से आज्ञा लेकर । ३। मिथिला का स्वामी मिथिला में अपने घर प्रविष्ट हुआ,और अयोध्यापति राजा अपने महानुभाव पुत्रों के साथ।४।

मूल–ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्य जगाम स बलान्वितः। ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् ॥ ५ ॥ भार्गवं जामदग्न्येयं राजा राज-विमर्दनम्। ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुनिरीक्ष्यं पृथग्जनैः ॥ ६॥ स्कन्धे चासज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम्। प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ॥ ७ ॥ तं दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम्। वसिष्ठ-प्रमुखा विप्रा जपहोमपरायणाः ॥ ८ ॥ संगता मुनयः सर्वे संज-जल्पुरथोमिथः। कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्रं नोत्सादयिष्यति ॥९॥पूर्वं क्षत्र वधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः क्षत्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम् ॥१०॥एव मुक्त्वार्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम्। ऋषयो रामरामेति मधुरं वाक्यमब्रुवन् ॥११॥ प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषीदत्तां प्रतापवान्। रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥ १२ ॥

टीका–ऋषियों को आगे करके सेना समेत जब आगे गया, तो राजा ने भयङ्कर दर्शनवाले, जटामण्डल धारी। ५। राजाओं को कुचलने वाले जमदग्नि के पुत्र भार्गव (भृगुवंशी,परशुराम) को देखा,जो मानों तेजों से जाज्वल्यमान है,और साधारण पुरुष जिस की ओर आंख उठाकर देख नहीं सक्ते।६। बिजली की रेखा के तुल्य (चमकते हुए) कुल्हाड़े और धनुष को कन्धे पर डाले हुए है और हाथ में तीर लेकर त्रिपुर के मारने वाले शिव की तरह स्थित है। ७। जलते अग्नि के तुल्य उस भीममूर्त्ति को देखकर वसिष्ठ आदि ब्राह्मण जो स्वाध्याय और होमपरायण हैं। ८। वह सारे मुनि मिलकर आपस में कहने लगे, क्या पितृवध का बदला चुकाता हुआ क्षत्र बल को तो नहीं उखाड़ेगा। ९। पहले क्षत्र वध करके इसका क्रोध और सन्ताप दूर होचुका था। फिर क्षत्र का उखाड़ना इसको अभीष्ट नहीं होना चाहिए। १०।

ऐसा कहकर अर्घ्य लेकर भयङ्कर दर्शनवाले परशुराम को ऋषि-जन हे राम! हे राम! ऐसा मधुर वचन बोले।११। ऋषियों से दी हुई उस पूजा को स्वीकार करके वह प्रतापी जमदग्नि का राम दशरथ के राम से बोला। १२।

सर्ग २८ (वा० ७५) परशुराम पर विजय

मूल—राम दाशरथे राम वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम्। धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम्॥१॥ तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा तच्छ्रुत्वाऽहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्य परं शुभम्॥२॥ तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः। पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च॥३॥ तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे। द्वंद्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यस्य राघव॥४॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा। विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥५॥

टीका—राम हे दशरथ के राम तेरा बल बड़ा अद्भुत सुना जाता है, धनुष का तोड़ना भी मैंने सारा सुना है।१। धनुष का तोड़ना तूने बड़ा अद्भुत और अचिन्त्य * काम किया है, यह सुनकर मैं एक दूसरा शुभ धनुष लेकर आया हूं।२। सो यह भयंकर प्रतीत होने वाला बड़ा भारी धनुष जो जमदग्नि (अपने पिता) से मेरे पास आया है, इसको तीर से पूर्ण कर, और अपना बल दिखला।३। इस धनुष के पूरने में तेरे बल को देख कर हे राघव! बल में सराहनीय तुझको मैं द्वन्द्वयुद्ध †

---

* अचिंत्य जो दूसरों के ख्याल में भी नहीं आसकता है।

† अभिप्राय यह है, कि जिस धनुष को मैं आसानी से चाढ़या करता हूं, यदि तू इसे न चढ़ा सका, तो फिर मैंने तेरे साथ क्या लड़ना है, इतने थोड़े बलवाला जो इस धनुष को न चढा सके, इस योग्य हो नहीं, कि मैं उसे द्वंद्वयुद्ध दूं। हां यदि तूने चढ़ा

दूंगा । ४ । उसके उस वचन को सुनकर राजा दशरथ खिन्न-मुख हुआ हाथ जोड़कर यह वचन बोला । ५ ।

मूल—क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः । बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि ॥ ६ ॥ ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान् । अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥ ७ ॥ इदं च वैष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् । ऋचीके भार्गवे प्रादाद्विष्णुः संन्यासमुत्तमम् ॥ ८॥ ऋचीकस्तु महातेजाः पुत्रस्याप्रतिकर्मणः । पितुर्मम ददौ दिव्यं जमदग्नेर्महात्मनः ॥ ९ ॥ न्यस्तशस्त्रे पितरि मे तपोबलसमन्विते । अर्जुनो विदधे मृत्युं प्राकृतां बुद्धिमास्थितः॥१०

टीका—क्षत्रियों पर क्रोध से अब तू शान्त हो चुका है, और महायशस्वी ब्राह्मण है, मेरे छोटे पुत्रों को तू अभय देने योग्य है । दशरथ यह कहता रहा, पर प्रतापी परशुराम उसकी बात की परवाह न करके राम से ही बोला । ६, ७ । यह वैष्णव धनुष हे राम ! शत्रुओं के किलों का जीतने वाला विष्णु ने भृगु के पुत्र ऋचीक के पास रखा था । ८ । महातेजस्वी ऋचीक ने यह दिव्य धनुष अपने पुत्र मेरे पिता महात्मा जमदग्नि को दिया, जिसके मुकाबिल में कोई खड़ा नहीं हो सकता था । ९ । तपोबल से युक्त मेरे पिता ने जब शस्त्र छोड़ दिये थे तो नीच बुद्धि का आश्रय ले कर अर्जुन (सहस्त्र बाहु) ने उसको मार डाला । १० ।

मूल—वधमप्रतिरूपं तु पितुः श्रुत्वा सुदारुणम् । क्षत्रमुत्सादयं रोषाज्जातं जातमनेकशः ॥ ११ ॥ पृथिवीं चाखिलां प्राप्य

लिया, तो तुझे द्वंद्वयुद्ध दूंगा । द्वंद्वयुद्ध=दो का आमने सामने युद्ध जिसमें और कोई किसी की सहायता नहीं दे सकता ।

कश्यपाय महात्मने। यज्ञस्यान्तेऽददं राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ॥१२
दत्त्वा महेन्द्रनिलयस्तपोबलसमन्वितः। श्रुत्वा तु धनुषो भेदं
ततोऽहं द्रुतमागतः ॥ १३ ॥ तदिदं वैष्णवं राम पितृपैतामहं
महत्। क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृह्णीष्व धनुरुत्तमम् ॥ १४ ॥ योजय-
स्व धनुः श्रेष्ठे शरं परपुरंजयम्। यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ
द्वंद्वं दास्यामि ते ततः ॥ १५ ॥

टीका—पिता का बड़ा दारुण अयोग्य वध सुनकर क्रोध से मैंने अनेक बार उत्पन्न हुए क्षत्रबल को उखाड़ा। ११। और सारी पृथिवी जीतकर हे राम! यज्ञ (विश्वजित् यज्ञ) की समाप्ति में पुण्यकर्मा महात्मा कश्यप को देदी। १२। दे करके तपोबल से युक्त मैं महेन्द्र पर्वत पर रहने लगा, अब धनुष का तोड़ना सुनकर जल्दी वहां से आरहा हूं। १३। सो यह वैष्णव धनुष हे राम! जो पिता दादा से मेरे पास पहुंचा है इस उत्तम धनुष को क्षत्र धर्म का आदर करता हुआ तू ग्रहण कर। १४। और इस श्रेष्ठ धनुष में शत्रुओं के किलों का जीतनेवाला, तीर जोड़, यदि तू ऐसा करने में समर्थ है, तब हे राम! मैं तुझे द्वन्द्वयुद्ध दूंगा। १५।

सर्ग २९ (व० ७६) धनुष खींचकर तीर छोड़ना

मूल—श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा। गौरवाद्य-
न्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रुतवानस्मि यत्कर्म कृत-
वानसि भार्गव। अनुरुध्यामहे ब्रह्मन्पितुरानृण्यमास्थितः ॥ २ ॥
वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव। अवजानासि मे तेजः
पश्य मेऽद्यपराक्रमम् ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य
वरायुधम्। शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ४ ॥

टीका—तब दशरथ का पुत्र जमदग्नि के पुत्र के वाक्य को सुन कर पिता के गौरव से बातों में संकोच करके राम से इतना बोला ॥ १ ॥ हे भार्गव ! अपने पिता के ऋण को चुकाते हुए (पिता के मारने वालों से बदला लेते हुए) आपने जो कर्म (क्षत्रवध) किया है, वह मैंने सुना है, हे ब्रह्मन् ! हम उसे स्वीकार करते हैं (सूरमे को अवश्य वैर का बदला लेना ही चाहियें) ॥ २ ॥ पर हे भार्गव! क्षत्र धर्म से युक्त मेरे तेज को जो आप बलहीन अशक्त सा मान कर अपमान करते हैं, (यह मैं सहने को तैयार नहीं हूं) सो आज मेरे पराक्रम को देखिये ॥ ३ ॥ यह कहकर क्रुद्ध * हो तेज पराक्रम वाले राम ने परशुराम के हाथ से धनुष और तीर लेलिया ॥ ४ ॥

मूल—आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह । जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ ५ ॥ "ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च । तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्" ॥ ६ ॥ जडीकृते तदालोके रामे वरधनुर्धरे । निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत ॥ ७ ॥ तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः । रामं कमल पत्राक्षं मन्दमन्दमुवाच ह ॥८॥

टीका—राम ने धनुष को खींचा, और उनके चिल्ले में तीर को जोड़ दिया, और क्रुद्ध हुआ जमदग्नि के पुत्र राम से यह वाक्य बोला ॥ ५ ॥ "आप ब्राह्मण हैं, मेरे पूज्य हैं, इस हेतु से और विश्वामित्र के सम्बन्ध से † हे राम ! तेरे प्राण हरनेवाला तीर

---

* रामचन्द्र बड़े गंभीर और क्षमाशील थे, पर अपने तेज का अपमान होने पर क्रोध उत्पन्न होना, विशेषतः क्षत्रिय का स्वभाविक धर्म है । † परशुराम का पिता जमदग्नि विश्वामित्र की बहिन सत्यवती के पेट से था ॥

नहीं छोड़ सक्ता हूं" ॥ ६ ॥ राम उस चुने हुए धनुष को धारे हुए हैं, लोग हैरान होकर निश्चल खड़े हैं, और जमदग्नि का पुत्र राम निर्वीर्यमा होकर राम को देख रहा है ॥ ७ ॥ तेज से वीर्य्य (वीरता) दब जाने से परशुराम हैरान हो निश्चल खड़ा हुआ कमलनेत्र राम से धीरे २ बोला ॥ ८ ॥

मूल—शरमप्रतिमं राम मोक्तुमर्हसि सुव्रत । शरमोक्षे गमिष्यामि महेन्द्र पर्वतोत्तमम् ॥ ९ ॥ तथा ब्रुवीत रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान् । रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥ १० ॥ रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥ ११ ॥

टीका—हे सुव्रत राम ! इस अतुल तीर को आप छोड़ने योग्य हैं, तीर के छोड़ने पर मैं महेन्द्र पर्वत को चला जाऊंगा ॥ ९ ॥ जमदग्नि के पुत्र राम ने जब ऐसा कहा, तो प्रतापी श्रीमान् दशरथ के पुत्र राम ने उत्तम तीर छोड़ा ॥ १० ॥ तब प्रभु जामदग्न्य राम दाशरथि राम की प्रशंसा करके और उसकी प्रदक्षिणा करके अपने स्थान को चला गया ॥ ११ ॥

सर्ग ३० [व० ७७] दशरथ का अयोध्या पहुंचना

मूल—अभिवाद्य ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन् । पितरं विह्वलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ॥ १ ॥ जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी । अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता ॥२॥ गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः । पुनर्जातं तदा मेने पुत्रमात्मानमेव च ॥ ३ ॥ चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् । पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्घुष्टनिनादिताम् ॥ ४ ॥

टीका—तब राम वसिष्ठ आदि ऋषियों को प्रणाम करके पिता

को घबराया हुआ देखकर बोला ॥ १ ॥ जामदग्न्य राम चला गया है, अब आप नाथ से रक्षा की हुई चतुरंगिणी सेना अयोध्या की ओर चले ॥ २ ॥ "राम चला गया" यह सुन कर राजा हर्षित हुआ और प्रमुदित हुआ, और तब अपने पुत्र को और अपने आप को फिर जन्मा हुआ मानता भया ॥ ३ ॥ उस सेना को चलने की आज्ञा दी, और जल्दी पुरी को चला गया जो झंडियों और झंडों से शोभायमान है, बाजों की ध्वनियों से गूंज रही है ॥ ४ ॥

मूल—सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम् । राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलवादिभिः ॥ ५ ॥ संपूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलंकृताम् । पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः ॥ ६ ॥ पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्श्रीमद्भिश्च महायशाः । प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम् ॥ ७ ॥ ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम् । कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः ॥ ८ ॥

टीका—जिस के राजपथ छिड़के गए हैं, और फूलों का बिखेर जगह जगह पर है, राजा के प्रवेश से जिन के चहरे खिले हुए हैं और मंगल बोल रहे हैं, ऐसे पुरवासियों से भरी हुई और जमघटों से शोभायमान पुरी में प्रविष्ट हुआ। पुर के लोग और पुरवासी ब्राह्मण दूरतक जिस को आगे लेने के लिये गए॥५,६॥ और श्रीमान् पुत्र जिस के पीछे हैं, वह महायशस्वी श्रीमान् राजा फिर हिमालय के तुल्य घर में प्रविष्ट हुआ ॥ ७ ॥ इसके पीछे राजपत्नियें महाभागा सीता को और यशोमति ऊर्मिला को और कुशध्वज की दोनों कन्याओं को ग्रहण करती भईं ।८।

मूल—अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा । रेमिरे मुदिताः

सर्वा भर्तृभिःसहिता रहः ॥९॥ कुमाराश्च महात्मानो रूपेणाप्रतिमा भुवि । कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः ॥१०॥ शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः । कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ॥११॥ भरतं कैकयीपुत्र मब्रवीद्रघुनन्दनः । अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक ॥ १२ ॥

टीका—अभिवादन (नमस्कार) के योग्यों को अभिवादन कर के वह सब राजकन्याएं अपने २ पतिओं के साथ अलग २ आनन्द मनाती भई । ९ । महात्मा कुमार जो पृथिवी में अपने बल से अनुपम अस्त्रविद्या में निपुण हैं धन से युक्त सुहृदजनों समेत हैं, ।१०। वह नरश्रेष्ठ ! पिता की सेवा में तत्पर होगए । एक वार रघुनन्दन राजा दशरथ ने अपने पुत्र । ११ । कैकेयी के पुत्र भरत से कहा । हे बेटा ! यह केकयराज का पुत्र, हे वीर तेरा मामा युधाजित् तेरे लेने को आया हुआ है । दशरथ के इस वचन को सुनकर कैकेयीसुत भरत ॥११, १२, १३॥

मूल—त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव । श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः कैकयीसुतः ॥१३॥ गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा । आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥१४॥ गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः । पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा ॥१५॥ पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः । चकार रामः सर्वाणि प्रियाणिच हितानि च ॥ १६ ॥

टीका--पिता से और किसी को भी क्लेश न देने वाले राम (और माताओं) से आज्ञा मांगकर यह सूरमा नरश्रेष्ठ शत्रुघ्न सहित चला गया ॥ १४ ॥ भरत के चले जाने पर राम और महाबली लक्ष्मण देव तुल्य पिता की पूजा में तत्पर हुए ॥१५॥

पिता की आज्ञा को आगे करके धर्मात्मा राम पुर के सारे कार्यों को करने लगा, जो उनके प्यारे और हित के हैं ॥ १६ ॥

मूल-मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः । गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत ॥ १७ ॥ एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा । रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः ॥ १८ ॥ रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून् । मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः ॥ १९ ॥ प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति । गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते ॥ २० ॥ तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते । अन्तर्गतमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ॥ २१ ॥

टीका-(बड़ों के विषय में) बड़े संकोच वाला होकर माताओं के लिये मातृ कार्यों को करके गुरुओं के लिये समय २ पर गुरु कार्यों को देखता था ॥ १७ ॥ इस प्रकार राम के शील और वर्ताव मे पिता दशरथ, और देशवासी ब्राह्मण और सौदागर बड़े प्रसन्न थे ॥ १८ ॥ मनस्वी राम ने सीता को मन दिये हुए, और सीता के हृदय में सदा समर्पित हुए सीता के साथ बहुत से ऋतु विहार किया ॥ १९ ॥ राम को सीता प्यारी थी, जिसको पितरों ने उसकी पत्नी बनाया है, वह उसके अन्दर के गुणों से और रूपगुण से राम की प्रीति अधिकाधिक बढ़ाती गई ॥ २० ० और उसके हृदय में भर्ता उससे भी दुगना घूमता था । अन्तर्गत भाव को भी हृदय हृदय * से स्पष्ट कर देता है ॥ २१ ॥

वालकाण्ड समाप्त हुआ

---

* हृदय हृदय का साक्षी होता है ।

अयोध्या काण्ड

सर्ग १ (व० १) राम के राजा होने के योग्य गुणकर्मस्वभाव

मूल—गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदाऽनघः। शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीतिपुरस्कृतः ॥ १ ॥ स तत्र न्यवसद्भ्रात्रा सह सत्कार-सत्कृतः। मातुलेनाश्वपतिना पुत्रस्नेहेन लालितः ॥ २ ॥ तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमाणौ च कामतः। भ्रातरौ स्मरतां वीरौ वृद्धं दशरथं नृपम् ॥३॥ राजापि तौ महातेजाः सस्मार प्रोषितौ सुतौ। सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः॥४॥स्वशरीराद्विनिर्वृत्ताश्च-त्वार इव बाहवः। तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः ॥५॥

टीका—मामा के घर को जाता हुआ भरत शत्रुओं पर सदा विजय पाने वाले निष्पाप शत्रुघ्न को प्रीतिपूर्वक साथ ले गया ॥ १ ॥ वह वहां भाई के साथ आदरमान के साथ रहा, मामा अश्वपति उन को पुत्र स्नेह से लालन करता था ॥ २ ॥ यद्यपि वहां रहते हुए उन दोनों भाइयों की सारी इच्छाएं पूरी की जाती थीं, पर वह वृद्ध राजा दशरथ को कभी भूलते नहीं थे ॥ ३ ॥ उधर महातेजस्वी राजा भी परदेश गए हुए उन दोनों पुत्रों को स्मरण किया करता था। चारों ही पुत्र उसको प्यारे थे ॥ ४ ॥ जैसे अपने शरीर से निकली हुई चार भुजायें हों। उन में से भी महा-तेजस्वी राम पिता को अधिक प्रीतिदायक था ॥ ५ ॥

मूल—स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः। भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दश-रथोपमः ॥६॥ स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते। उच्य-मानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥७॥ कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥८॥ शील-वृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः। कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्त-

रेष्वपि ॥९॥ बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः । वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥१०॥ न चानृतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः । अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्जते ॥

टीका—क्योंकि वह रूप से युक्त, शक्तिसम्पन्न, असूया से रहित गुणों में दशरथ के बराबर, पृथिवी भर में अनुपम पुत्र था ॥६॥ वह शान्तात्मा सदा नर्मी से बात करता था और कठोर सुनकर भी कठोर नहीं बोलता था ॥ ७ ॥ ऐसा बलवान् आत्मा रखता है, कि कदाचित् किये हुए एक उपकार से भी सन्तुष्ट होजाता है, और अपकार सौ भी भूल जाता है ॥ ८ ॥ अस्त्राभ्यास से अवकाश पाकर सदा शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, और वयोवृद्ध सज्जनों के साथ शास्त्रकथा करता है ॥ ९ ॥ बुद्धिमान् मधुर बोलनेवाला, पहले बोलनेवाला, प्रिय बोलनेवाला, शक्तिमान् होकर भी अपनी बड़ी शक्ति से हैरान न होनेवाला ॥ १० ॥ झूठी बात न कहने वाला, विद्वान्, वृद्धों का पूजक, प्रजाओं से प्यार किया हुआ और प्रजाओं को प्यार करने वाला ॥ ११ ॥

मूल—सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः । दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः ॥ १२ ॥ कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते । मन्यते परया कीर्त्या महत्स्वर्गफलं ततः ॥ १३ ॥ नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः । उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा ॥ १४ ॥ अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान्देशकालवित् । लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः ॥ १५ ॥ स तु श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः । बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः ॥ १६ ॥

टीका—दयावान् क्रोध को जीता हुआ ब्राह्मणों का पूजक, दीनों पर दया करने वाला, धर्मज्ञ, सदा कदर करने वाला, शुद्ध ॥१२॥ कुलके

फुरने) वाला, लौकिक कर्म में सामर्थ्य वाला, धर्म के आचार में निपुण ॥ १९ ॥ गम्भीर, आकार को ढांपे हुए, गुप्त मन्त्र वाला, साथियोंवाला, न निष्फल क्रोध और हर्षवाला, त्याग और संकोच के काल का जाननेवाला ॥२०॥

मूल-दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो नासद्ग्राही न दुर्वचाः। निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्च स्वदोषपरदोषवित्॥२१॥शास्त्रज्ञश्च कृतज्ञश्च पुरुषान्तरकोविदः। प्रग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायं विचक्षणः ॥२२॥ सत्संग्रहानुग्रहणे स्थानविन्निग्रहस्य च । आयकर्मण्युपायज्ञः संदृष्टव्ययकर्मवित् ॥ २३ ॥ श्रैष्ठ्यं चास्त्रसमूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रमकेषु च। अर्थधर्मौ च संगृह्य सुखतन्त्रो न चालसः ॥ २४ ॥

टीका-(ईश्वर और गुरु आदि में) दृढ भक्तिवाला, स्थिर बुद्धिवाला न खोटों का ग्राहक, न दुर्वचन बोलनेवाला, आलस्य और प्रमाद से रहित, अपने दोष और परदोष को जाननेवाला, ॥ २१ ॥ शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, पुरुष पुरुष का भेद जाननेवाला, (मित्रादि के) स्वीकार और अनुग्रह में यथोचित करने में पण्डित ॥ २२ ॥ सत्पुरुषों के संग्रह करने और कदर करने में पण्डित, निग्रह (किसी पर दबाव डालने वा दण्ड देने) का अवसर जानने वाला । आयकर्म (आमदनी) के विषय में उपाय करने वाला, (शास्त्र में) देखे हुए व्ययकर्म (खर्चकरने) का जाननेवाला,॥ २३ ॥ सारे शास्त्रों के विषय में और व्यामिश्र (संस्कृत और दूसरी भाषाओं से मिले हुए नाटिक आदि) के विषय में श्रेष्ठता पाया हुआ, धर्म और अर्थ के संग्रह पूर्वक सुखसेवी (न कि केवल कामाधीन होकर सुखसेवी) (और कर्त्तव्यों के पूरा करने में) आलस्य रहित ॥ २४ ॥

मूल–वैहारिकाणां शिल्पानां विज्ञातार्थविभागवित् । आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम् ॥ २५ ॥ धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसंमतः । अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः ॥२६॥ एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः। संमतस्त्रिषु लोकेषु वसुधायाः क्षमागुणैः ॥२७॥ तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसंजननैः पितु गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तः सूर्य इवांशुभिः ॥ २८ ॥

टीका–खेल सम्बन्धी कारीगरियों (गाना बजाना नकशा वा तस्वीर खींचना इत्यादि) का जानने वाला, आय का विभाग जानने वाला। हाथी और घोड़ों पर सवारी करने में और उनके सिधाने में सावधान ॥ २५ ॥ धनुर्वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, लोक में अतिरथ माना हुआ, शत्रुओं पर चढ़ाई और प्रहार का जाननेवाला और सेना के व्यूह बांधने में निपुण ॥ २६ ॥ इस प्रकार श्रेष्ठ गुणों से युक्त और क्षमा में पृथिवी के तुल्य वह राजा का पुत्र तीनों लोक में प्रजा का प्यारा था ॥ २७ ॥ सारी प्रजा से पसन्द किये हुए, और अपने पिता की प्रीति को उत्पन्न करनेवाले गुणों से दीप्त हुआ ऐसा चमक रहा था, जैसे किरणों से सूर्य चमकता है ॥ २८ ॥

मूल–तमेवंवृत्तसंपन्नमप्रधृष्यपराक्रमम्।लोकपालोपमं नाथमकामयत मेदिनी ॥ २९ ॥ तं समीक्ष्य तदा राजा युक्तं समुदितैर्गुणैः। निश्चित्य सचिवैः सार्धं युवराजममन्यत ॥ ३० ॥ आत्मनश्च प्रजानां च श्रेयसे च प्रियेण च । प्राप्ते काले च धर्मात्मा भक्त्या त्वरितवान्नृपः ॥ ३१ ॥ नानानगरवास्तव्यान्पृथग्जानपदानपि । समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतीन् ॥३२॥ न तु केकय-

राजानं जनकं वा नराधिपः। त्वरया चानयामास पश्चात् तौ श्रोष्यतः प्रियम् ॥ ३३ ॥

टीका--इसप्रकार (आश्रितों की रक्षा रूपी) व्रत से युक्त,न दबने वाले, पराक्रम वाले, लोकपालों के तुल्य उस राम को पृथिवी अपना मालिक चाहती भई ॥२९॥ ऐसे इकट्ठे हुए शुभगुणों से युक्त को देखकर महाराज ने मन्त्रियों के साथ निश्चय करके उसको युवराज बनाने का विचार किया ॥ ३० ॥ अपने और प्रजाओं के कल्याण के लिये, (राम में प्रजाओं की) प्रीति से ठीक समय के आजाने पर उस धर्मात्मा राजा ने भक्ति से जल्दी की * ॥ ३१ ॥ नाना नगरों में रहने वाले भिन्न २ देशों के स्वामी अपने (अधीन) प्रधान राजों को मंगवा लिया ॥ ३२ ॥ पर उस नरपति ने जल्दी के कारण राजा केकय और जनक को नहीं बुलाया, कि वह इस प्रिय को पीछे सुन ही लेंगे † ॥ ३३ ॥

---

* राजा दशरथ आयु भोग चुका था,अब जब कि उसके चारों पुत्रों का समावर्तन होकर विवाह भी होगया, तो उसको एकदम अपने परलोक सुधारने का विचार उत्पन्न हुआ, उधर राम ने राज कार्यों में हाथ डालते ही प्रजा को मुग्ध कर लिया था। राज्य का अधिकारी भी राम ही था। सो प्रजा की राम में भक्ति देखकर और अपना परलोक निकट देखकर राजा को एकाएक राम के युवराज बनाने का विचार प्रबल होगया। दैवयोग से वसन्तकाल था और पुष्य नक्षत्र बहुत निकट था जो राज्याभिषेक के लिए नियत हुआ करताथा। इस सारी बात ने राजा से जल्दी करवादी।

† पुष्य इतना निकट था, कि जल्दी में केकयदेशसे; कैकेयी के पिता राजा केकय को और मिथला से जनक को भी नहीं बुलवा

सर्ग २ (व० २) राजसभा में अभिषेक का निश्चय

मूल—ततः परिषदं सर्वामामन्त्र्य वसुधाधिपः । हितमुद्धर्षणं चैव मुवाच प्रथितं वचः ॥१॥ राजलक्षणयुक्तेन कान्तेनानुपमेन च । उवाच रसयुक्तेन स्वरेण नृपतिर्नृपान् ॥२॥ विदितं भवतामेतद्यथा मे राज्यमुत्तमम् । पूर्वकैर्मम राजेन्द्रैः सुतवत्परिपालितम् ॥ ३ ॥ मयाप्याचरितं पूर्वैः पन्थानमनुगच्छता । प्रजा नित्यमनिद्रेण यथा-शक्त्याभिरक्षिताः ॥ ४ ॥

टीका—तब पृथिवीपति सारी सभा को बुलाकर हितकारी और हर्ष जनक, फैला हुआ (सब को सुनाई देनेवाला) वचन बोला। १। राजा के लक्षणों से युक्त (स्निग्ध और गम्भीर) प्यारे, अनुपम, रसयुक्त स्वर से, नरपतियों से बोला ॥२॥ आपको विदित है, कि मेरा यह उत्तम राज्य मेरे बड़े राजों ने पुत्रवत् पालन किया है ॥ ३ ॥ मैंने भी बड़ों के रस्ते पर पीछे २ चलते हुए वैसा आचरण किया है, सदा जाग्रत रहकर प्रजाओं की यथाशक्ति रक्षा की है ॥ ४ ॥

सका। इसी जल्दी से बिगाड़ हुआ । इतरथा यदि राजा केकय और उसके साथ भरत शत्रुघ्न आजाते, तो विघ्न का नाम भी न आता। पर धार्मिक राज्य का उस समय इतना बल था, कि राजा को यह विश्वास था, कि वह उनको भी प्रिय ही है, चाहे पीछे ही सुनेंगे, पर सुनेंगे तो प्रिय ही, और कैकयी भी धर्ममर्यादा को जानती थी, उस पर भी उसे अविश्वास न था। इसलिए परवाह नहीं की। पर उस को क्या मालूम था, कि मन्थरा का जादू कैकयी पर चल जायगा। रानी राजपुत्री हो, पर दासी तो दासी पुत्री ही है।

मूल—इदं शरीरं कृत्स्नस्य लोकस्य चरता हितम् । पाण्डुरस्यातपत्रस्य च्छायायां जरितं मया ॥५॥ राजप्रभावजुष्टां च दुर्वहामजितेन्द्रियैः । परिश्रान्तोऽस्मि लोकस्य गुर्वीं धर्मधुरं वहन् ॥६॥ सोऽहं विश्रममिच्छामि पुत्रं कृत्वा प्रजाहिते । संनिकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्य द्विजर्षभान् ॥ ७ ॥ अनुरूपः स वो नाथो लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः । त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम् ॥ ८ ॥

टीका—सारे लोक का हित आचरण करते हुए मैंने यह शरीर श्वेत छत्र की छाया में बूढा किया है॥५॥राजप्रभाव(वाले राजों) से जो सेवन की जाती है, अजितेन्द्रिय पुरुषों से जो उठाई नहीं जाती, ऐसी बड़ी भारी लोकमर्यादा की धुरा को उठाए हुए अब मैं थक गया हूं ॥ ६ ॥ सो अब मैं यहां बैठे हुए सब द्विजवरों की अनुमति ले, पुत्र को प्रजा के हित में लगा, विश्राम चाहता हूं ॥७॥ वह लक्ष्मीवान् लक्ष्मण का बड़ा भाई तुम्हारा योग्य नाथ है, जिस नाथ से (न केवल तुम ही नाथ वाले होगे, अपितु) तीनों ही लोक नाथवत्तर होंगे ॥ ८ ॥

मूल—यदीदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमन्त्रितम्। भवन्तो मेऽनुमन्यतां कथं वा करवाण्यहम् ॥ ९ ॥ यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हितमन्यद्विचिन्त्यताम् । अन्या मध्यस्थचिन्ता हि विमर्दाभ्यधिकोदया ॥ १०॥

टीका—यदि यह मेरा विचार योग्य फल वाला है,मैंने ठीक सोचा है, तो आप इसमें अनुमति देवें, अथवा कैसे करूं यह कहें ॥९॥ यद्यपि मेरी प्रीति यह है, तथापि हित यदि कुछ और है, तो वह सोचो, क्योंकि मध्यस्थों का विचार कुछ और ही होता है, जो(वाद विवाद की)रगड़ से अधिक फलवाला बनजाता है॥

मूल—इति ब्रुवन्तं मुदिता प्रत्यनन्दन्नृपाः नृपम्। वृष्टिमन्तं महामेघं नदन्त इव बर्हिणः ॥११॥ स्निग्धोऽनुनादः संजज्ञे ततो हर्षसमीरितः। जनौघोद्घुष्टसंनादो विमानं कम्पयन्निव ॥ १२ ॥ तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः। ब्राह्मणा बलमुख्याश्च पौरजानपदैः सह ॥ १३ ॥ समेत्य ते मन्त्रयितुं समतागतबुद्धयः। ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ १४ ॥ इच्छामो हि महाबाहुं रघुवीरं महाबलम्। गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम् ॥ १५ ॥ बहवो नृप कल्यणा गुणाः सन्ति सुतस्य ते। इक्ष्वाकुभ्योऽपि सर्वेभ्यो ह्यतिरिक्तो विशांपते ॥ १६ ॥ धर्मज्ञः सत्यसंधश्च शीलवाननसूयकः। क्षान्तः सान्त्वयिता श्लक्ष्णः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ मृदुश्च स्थिरचित्तश्च सदा भव्योऽनसूयकः। प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः ॥१८॥ बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता। तेनास्येहातुला कीर्तिर्यशस्तेजश्च वर्धते ॥१९॥ देवासुरमनुष्याणां सर्वास्त्रेषु विशारदः। सम्यग्विद्याव्रतस्नातो यथावत्साङ्गवेदावित् ॥ २० ॥

टीका—ऐसा कहते हुए राजा को सब राजों ने प्रसन्न होकर इस तरह अंगीकार किया, जिसतरह वृष्टिवाले महामेघ को नाचते हुए मोर अंगीकार करते हैं ॥ ११ ॥ तब हर्ष से उच्चारण की हुई जनसमूह की ऊंची स्निग्ध गूंजती हुई ध्वनि उत्पन्न हुई, जिसने मानों सारे राजभवन को कंपा दिया ॥ १२ ॥ धर्म अर्थ के जाननेवाले उस राजा के भाव को पूरा २ जानकर ब्राह्मण और सेना के मुखिया राजों के साथ मिलकर विचारने लगे, अपने २ मन से निश्चय करके सब एक ही निश्चय पर पहुंचे हुए वह वृद्ध राजा दशरथ से बोले ॥ १३,१४ ॥ हां हम महाबाहु, महाबली रघुवीर राम को बड़े हाथी पर चढ़कर जाता

हुआ देखना चाहते हैं जब कि सिर पर झूलते हुए छत्र से उस का मुख ढका हो ॥ १५ ॥ हे राजन् ! तेरे पुत्र में बहुत से कल्याणवाले गुण हैं, हे प्रजा के मालिक ! राम सारे इक्ष्वाकुवंशियों में भी बढ़ा हुआ है ॥ १६ ॥ धर्मज्ञ, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, शीलवान्, असूया से रहित, क्षमावाला, तसल्ली देनेवाला, साफ, कृतज्ञ, जितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ नरम, स्थिरचित्त, सदा सभ्य, निन्दा से रहित, सब से मीठा बोलने वाला और सत्यवादी ॥१८॥ बहुश्रुत, वृद्ध ब्राह्मणों का सेवन करने वाला है, इस हेतु से लोक में इसकी अतुल कीर्त्ति यश और तेज बढ़ रहा है ॥ १९ ॥ देव मनुष्य और असुरों के सब प्रकार के अस्त्रों में निपुण । पूरा २ विद्यास्नात ठीक २ सामवेद का जानने वाला

मूल–पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छिति । पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च ॥ २१ ॥ व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः । उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥ २२ ॥ सत्यवादी महेष्वासो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः । स्मितपूर्वाभिभाषी च धर्मं सर्वात्मनाश्रितः ॥ २३ ॥ रामो लोकाभिरामोऽयं शौर्यवीर्यपराक्रमैः । प्रजापालनसंयुक्तो न रागोपहितेन्द्रियः ॥ २४ ॥ नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन । हन्त्येष नियमाद्वध्यानवध्येषु न कुप्यति ॥ २५ ॥

टीका–पुर के लोगों को सदा स्वजनों की तरह पुत्र, स्त्री, भृत्य अग्नियों में और शिष्यगणों के विषय में कुशल पूछता है ।२१। लोगों के व्यसन में अत्यन्त दुःखी होता है, और उत्सवों में पिता की तरह संतुष्ट होता है ॥ २२ ॥ सत्यवादी बड़ा धनुर्धारी, वृद्धों का सेवन करने वाला, जितेन्द्रिय, हंसकर पहले बोलने वाला, सारे बल से धर्म के आश्रित रहने वाला ॥२३॥

राम शौर्य वीर्य और पराक्रम के गुणों से सारे लोक का प्यारा है प्रजापालन के तत्त्व का जाननेवाला है, राग से उसके इन्द्रिय दूषित नहीं है ॥ २४ ॥ इसका क्रोध वा प्रसाद कभी निरर्थक नहीं होता है। जो वध्य हैं, उनको नियम से वध करता ही है और जो अवध्य हैं, उन पर क्रोध नहीं करता है ॥ २५ ॥

मूल—युनक्त्यर्थैः प्रहृष्टश्च तमसौ यत्र तुष्यति। वत्सः श्रेयसि जातस्ते दिष्ट्यासौ तव राघव ॥ २६ ॥ आशंसते जनः सर्वो राष्ट्रे पुरवरे तथा। आभ्यन्तरश्च बाह्यश्च पौरजानपदो जनः॥२७॥ तेषां तथाचितं देव त्वत्प्रसादात्समृद्ध्यताम्। पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम् ॥ २८ ॥

टीका—जिस पर प्रसन्न होता है, उसको निहाल कर देता है, हे राघव! तेरा यह बेटा तेरे भाग्य से कल्याण में बढ़ा हुआ है ॥ २६ ॥ देश और पुर के सारे लोग अन्दर बाहर के देशवासी जन सब (राम राज्य को) चाह रहे हैं ॥ २७ ॥ इनकी प्रार्थना हे देव! तेरी कृपा से फले, हे राजोत्तम! हम तेरे पुत्र को यौवराज्य में स्थित देखें ॥ २८ ॥

सर्ग ३ (व ३) अभिषेक की तैय्यारी

मूल—तेषामञ्जलिपद्मानि प्रगृहीतानि सर्वशः। प्रतिगृह्याब्रवीद्राजा तेभ्यः प्रियहितं वचः ॥ १ ॥ अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम। यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ ॥ २ ॥ चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः। यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥ ३ ॥ वसिष्ठं मुनिशार्दूलं राजा वचनमब्रवीत्। अभिषेकाय रामस्य यत्कर्म सपरिच्छदम् ॥ ४ ॥ तदद्य भगवन्सर्वमाज्ञापयितुमर्हसि। तच्छ्रुत्वा भूमिपालस्य

वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ आदिदेशाग्रतो राज्ञः स्थितान्युक्ता-न्कृताञ्जलीन् । सुवर्णादीनि रत्नानि बलीन्सर्वौषधीरपि ॥ ६ ॥

टीका—कमल फूल की तरह दोनों हाथ जोड़कर कहते हुओं के वचन को स्वीकार कर राजा प्रिय हित वचन बोला ॥ १ ॥ अहो मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं, मेरा प्रताप अतुल है, जो मेरे प्यारे पुत्र को यौवराज्य में स्थित चाहते हो ॥ २ ॥ यह शोभा वाला पवित्र चैत्रमास फूले हुए वनों वाला है, राम के यौवराज्य के लिये सब कुछ तय्यार कीजिये ॥ ३ ॥ और मुनिवर वसिष्ठ को राजा ने यह वचन कहा, राम के अभिषेक के लिये जो कुछ करना है, वह सब सामग्रीसहित हे भगवन् ! आज्ञा दीजिये । राजा के इस वचन को सुनकर मुनिवर वसिष्ठ ॥ ४,५ ॥ राजा के आगे हाथ बांध कर खड़े हुए अधिकारियों से बोले, सुवर्ण आदि धातु, रत्न, बलियें, सब ओषधियें ॥ ६ ॥

मूल—शुक्लमाल्यानि लाजांश्च पृथक् च मधुसर्पिषी । अहतानि च वासांसि रथं सर्वायुधान्यपि ॥ ७ ॥ चतुरङ्गबलं चैव गजं च शुभलक्षणम् । चामरव्यजने चोभे ध्वजं छत्रं च पाण्डुरम् ॥ ८ ॥ शतं च शातकुम्भानां कुम्भानामग्निवर्चसाम् । हिरण्यशृङ्गमृषभं समग्रं व्याघ्रचर्म च ॥ ९ ॥ यच्चान्यत्किञ्चिद्द्रव्यं तत्सर्वमुपक-ल्प्यताम् । उपस्थापयत प्रातरग्न्यगारे महीपतेः ॥ १० ॥

टीका—श्वेत मालायें, लाजा, शहद और घी अलग २ नये वस्त्र रथ, सारे शस्त्र ॥ ७ ॥ चतुरङ्ग सेना और शुभ लक्षणोंवाला हाथी, दो श्वेत चंवरियें, ध्वजा और श्वेत छतर ॥ ८ ॥ और अग्नि के तुल्य कान्तिवाले सोने के सौ घड़े, सोना चढे हुए सींगोंवाला साण्ड, और (सिंहासन के लिये) सिंह की अखण्ड

छादो ॥ ९ ॥ राजा के अग्नि मन्दिर में प्रातःकाल उपस्थित करादो, और जो कुछ और भी चाहिये, वह सब तय्यार करो ।१०

मूल—अन्तः पुरस्य द्वाराणि सर्वस्य नगरस्य च । चन्दनस्रग्भिरर्च्यन्तां धूपैश्च घ्राणहारिभिः ॥११॥ सत्कृत्य द्विजमुख्यानां श्वः प्रभाते प्रदीयताम् । घृतं दधि च लाजाश्च दक्षिणाश्चापि पुष्कलाः ॥१२॥ सूर्येऽभ्युदितमात्रे श्वो भविता स्वस्तिवाचनम् । ब्राह्मणाश्च निमन्त्र्यन्तां कल्प्यन्तामासनानि च ॥१३॥ दीर्घासिबद्धयोधाश्च संनद्धा मृष्टवाससः । महाराजाङ्गनं शूराः प्रविशन्तु महोदयम्॥१४

टीका—अन्तःपुर के द्वार और नगर के द्वार चन्दन मालाओंसे और अति सुगन्धित धूप से सजा दो ।११। और कल प्रभात के समय ब्राह्मणों को सत्कार पूर्वक घृत, दधि, लाजा और भरपूर दक्षिणा दो ।१२। कल सूर्य के उदय होते ही स्वस्तिवाचन होगा, उसके लिये ब्राह्मणों को निमन्त्रण दो और आसन तय्यार करो ।१३। योधे वरदियें सजाकर, कवच पहनकर और तलवारें बांधकर महाराज के महोत्सववाले अङ्गण में प्रवेश करें ।१४।

मूल—ततः सुमन्त्रं द्युतिमान्राजा वचनमब्रवीत् । रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति ॥१५॥ स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात् । रामं तत्रानयांचक्रे रथेन रथिनां वरम् ॥१६॥ प्रासादस्थो रथगतं ददर्शायान्तमात्मजम् । गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विख्यातपौरुषम् ॥१७॥ दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् । रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ॥१८॥

टीका—इसके अनन्तर तेजस्वी राजा सुमन्त्र से यह वचन बोला, आप धर्मात्मा राम को शीघ्र ले आइये ।१५। वह सुमन्त्र तथास्तु कहकर राजा के शासन से रथियों में श्रेष्ठ राम को वहां रथ से

ले आया ।१६। प्रासाद (राजमहल) पर स्थित राजा ने रथ पर आते हुए पुत्र को देखा, जो (सुन्दर स्वर से) गन्धर्वराज के तुल्य है, लोक में जिसका पौरुष विख्यात है ।१७। बड़ी भुजा-वाला, बड़ा दिलेर, मस्तहाथी की सी चाल वाला, रूप और उदारता के गुणों से पुरुषों के दृष्टि और चित्त को खींचनेवाला ।१८

मूल—घर्माभितप्ताः पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः । न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः ॥१९॥ अवतार्य सुमन्त्रस्तु राघवं स्यन्दनोत्त-मात् । पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात् ॥२०॥ स तं कैलासशृङ्गाभं प्रासादं रघुनन्दनः । आरुरोह नृपं द्रष्टुं सह सूतेन राघवः ॥२१॥ स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिके । नाम स्वं श्रावयन्रामो ववन्दे चरणौ पितुः ॥२२॥

टीका—जो घाम से तपी हुई प्रजाओं को मेघ की तरह प्रसन्न कर रहा है, राजा उस आते हुए को देख २ कर तृप्त नहीं होता था ।१९। सुमन्त्र उस राघव को उत्तम रथ से उतारकर पिता के निकट जाते हुए के हाथ जोड़कर पीछे २ चला ।२०। कैलास की चोटी तुल्य उस प्रासाद पर वह नरश्रेष्ठ राघव सुमन्त्र के साथ राजा के दर्शन के लिये चढ़ गया ।२१। दोनों हाथ जोड़े हुए सम्मुख जाकर पिता के समीप झुककर अपना नाम सुनाते हुए राम ने पिता की चरणवन्दना की ।२२।

मूल—प्रणतं पार्श्वे तं दृष्ट्वा कृताञ्जलिपुटं नृपः । गृह्याञ्जलौ समा-कृष्य सस्वजे प्रियमात्मजम् ॥२३॥ दिदेश राजा रुचिरं रामाय परमासनम् तदासनवरं प्राप्य व्यदीपयत राघवः ॥२४॥ तेन विभ्राजता तत्र सा सभाऽपि व्यरोचत । विमलग्रहनक्षत्रा शारदी द्यौरिवेन्दुना ॥२५॥ तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम् ।

अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ॥२६॥ स तं सस्मितमाभाष्य पुत्रं पुत्रवतांवरः । उवाचेदं वचो राजा देवेन्द्रमिव कश्यपः॥२७॥

टीका—उसको अपने पास हाथ जोड़े हुए झुका हुआ देखकर राजा अञ्जलि से पकड़कर प्यारे पुत्र को कण्ठ लगाता भया ॥ २३ ॥ राजा ने राम को सुन्दर आसन की आज्ञा दी, उस आसनवर को पाकर राम शोभायमान हुआ ॥ २४ ॥ वहां शोभा पाते हुए उससे वह सभा भी अधिक शोभा वाली बन गई, जैसे निर्मल ग्रह तारों से युक्त शरद ऋतु का आकाश चन्द्र से ॥ २५ उस प्यारे पुत्र को देखता हुआ राजा बड़ा प्रसन्न हुआ,मानों सजे हुए अपने आप को शीशे में देख रहा है ।२६ वह पुत्रवालों मे श्रेष्ठ राजा मुसकराता हुआ पुत्र को सम्बोधन करके यह वचन बोला, जैसे कश्यप देवेन्द्र को कहता हो ।२७।

मूल—ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां सदृश्यां सदृशः सुतः । उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो मम रामात्मजः प्रियः ॥ २८ ॥ त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरञ्जिताः । तस्मात् त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि॥ २९ ॥ कामतस्त्वं प्रकृत्यैव विनीतो गुणवानिति । गुणवत्यपि तु स्नेहात्पुत्र वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ३० ॥ भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः । कामक्रोधसमुत्थानि त्यजस्व व्यसनानि च ॥ ३१ ॥ परोक्षया वर्तमानो वृत्त्या प्रत्यक्षया तथा । तुष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयति मेदिनीम् ॥ ३२ ॥ तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वामृतमिवामराः । तस्मात् पुत्र त्वमात्मानं नियम्यैवं समाचर ॥

टीका—(कुल गुण से) सदृश मेरी बड़ी पत्नी में से हे राम ! तू सदृश पुत्र उत्पन्न हुआ है गुणों में श्रेष्ठ हे राम मेरा प्यारा पुत्र, ॥ २८ ॥ जिसलिये तूने यह सारी प्रजायें अपने गुणों से

प्रसन्न की हैं, इसलिये तू पुष्य योग में यौवराज्य को प्राप्त हो ॥ २९ ॥ स्वभाव से ही तू पूरी तरह विनीत है, गुणवान् है, पर गुणवान से भी हे पुत्र ! स्नेह से हित कहूंगा ॥ ३० ॥ (स्वभावतः विनीत हुआ भी) अधिक विनय का आश्रय करना, सदा जितेन्द्रिय रहना, काम क्रोध से उत्पन्न होने वाले व्यसनों को त्यागे रखना ॥३१॥ परोक्ष तथा प्रत्यक्ष वृत्ति से वर्तता हुआ स्वयं गुप्त रीति से वा गुप्तचरों द्वारा अपने बेगाने राष्ट्र के वृत्तांत को जानता हुआ और प्रत्यक्षरूप से सारे वृत्तांत जानता हुआ और सारे व्यवहारों को साधता हुआ) जो प्रकृतियों (अहलकारों और प्रजाओं) को सन्तुष्ट और अनुरक्त (वफादार) बनाता हुआ पृथिवी को पालन करता है ॥ ३२ ॥ उसके मित्र आनन्द मनाते हैं, जैसे अमृत को पाकर देवता, इस लिये हे पुत्र ! तू भी अपने आपको वश में रखकर ही आचरणकर ।३३।

मूल—तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्य रामस्य प्रियकारिणः । त्वरिताः शीघ्रमागत्य कौसल्यायै न्यवेदयन् ॥ ३४ ॥ सा हिरण्यं च गाश्चैव रत्नानि विविधानि च । व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौसल्या प्रमदोत्तमा ॥ ३५ ॥ अथाभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः । ययौ स्वं द्युतिमद्वेश्म जनौघैः प्रतिपूजितः ॥ ३६ ॥

टीका—यह सुनते ही राम के प्रियकारी सुहृद् तुरतगति हो तुरन्त पहुंचकर कौसल्या को बतलाते भए ॥ ३४ ॥ वह उत्तम स्त्री कौसल्या इस प्रिय कहनेवालों को सोना गौएं और विविध रत्न देती भई ॥ ३५ ॥ अब राम राजा को अभिवादन करके रथ पर चढ़कर जनसमूहों से आदर पाता हुआ अपने दीप्यमान मन्दिर को गया ॥ ३६ ॥

सर्ग ४ [व० ४] राम चन्द्रजी कौसल्या के भवन में

मूल—प्रविश्य चात्मनो वेश्म राज्ञादिष्टेऽभिषेचने। तत्क्षणादेव निष्क्रम्य मातुरन्तःपुरं ययौ ॥१॥ तत्र तां प्रवणामेव मातरं क्षौमवासिनीम्। वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम् ॥२॥ प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा। सीता चानायिता श्रुत्वा प्रियं रामाभिषेचनम् ॥३॥ तस्मिन्कालेहिकौसल्या तस्था वा मीलितेक्षणा। सुमित्रयाऽन्वास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च ॥४॥

टीका—राजा से अभिषेक की आज्ञा दिये जाने पर (राम यह प्रिय सीता को कहने के लिए) अपने घर में प्रवेश करके (वहां सीता को न देख कर) तत्क्षण निकल कर माता के अन्तःपुर को गए ॥१॥ वहां उस ने माता को रेशमी वस्त्र पहने हुए अग्नि मन्दिर में झुक कर राम के लिये चुप चाप राज्यलक्ष्मी की याचना करती हुई देखा ॥२॥ वहां सुमित्रा और लक्ष्मण पहले ही आचुके हुए थे और राम का अभिषेक होगा—यह प्रिय सुन कर सीता को पहले ही वहां (कौसल्या ने) मंगवा लिया हुआ था ॥३॥ उस समय कौसल्या नेत्र बन्द किये स्थित थी, सुमित्रा लक्ष्मण और सीता उस के पीछे स्थित थे ॥४॥

मूल—श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्याऽभिषेचनम्। प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम् ॥५॥ तथा सनियमामेव सोऽभिगम्याभिवाद्य च। उवाच वचनं रामो हर्षयंस्तामिदं वचः ॥६॥ अम्ब पित्रा नियुक्तोऽस्मि प्रजापालनकर्मणि। भविता श्वोऽभिषेको मे यथा मे शासनं पितुः ॥७॥ सीतायाप्युपवस्तव्या रजनीयं मया सह। एवमृत्विगुपाध्यायैः सह मामुक्तवान्पिता ॥८॥ यानि यान्यत्र योग्यानि श्वोभाविन्यभिषेचने। तानि मे मंगलान्यद्य

वैदेह्याश्चैव कारय ॥९॥ एतच्छ्रुत्वा तु कौसल्या चिरकालाभिकाङ्क्षितम् । हर्षबाष्पकलं वाक्यमिदं राममभाषत ॥१०॥

टीका—और वह पुष्य में पुत्र के यौवराज्य में अभिषेक को सुन कर प्राणायाम से परम पुरुष का ध्यान कर रही थी ॥५॥ वैसे नियम वाली के पास जाकर और अभिवादन करके राम उस को प्रसन्न करता हुआ यह वचन बोला ॥६॥ हे अम्ब ! पिता ने मुझे प्रजा-पालन के कर्म में नियुक्त किया है, कल मेरा अभिषेक होगा, जैसा कि मुझे पिता का शासन है ॥७॥ सीता ने भी यह रात मेरे साथ उपवास करना है, इस प्रकार ऋत्विज उपाध्यायों के साथ मुझे पिता ने कहा है ॥८॥ सो कल होनेवाले अभिषेक में जो २ मंगल कार्य योग्य हैं, वह २ मेरे और सीता के सारे करवाएं ॥९॥ चिरकाल से चाही हुई इस बात को सुन कर कौसल्या हर्ष के आंसुओं से अव्यक्त मधुर यह वचन बोली ॥१०॥

मूल—वत्स राम चिरंजीव हतास्ते परिपन्थिनः । ज्ञातीन्मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्च नन्दय ॥११॥ इत्येवमुक्तो मात्रा तु रामो भ्रातरमब्रवीत् । प्राञ्जलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्य स्मयन्निव ॥१२॥ लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम् । द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता ॥१३॥ सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च । जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥१४॥इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामो मातरावभिवाद्य च । अभ्यनुज्ञाप्य सीतां च ययौ स्वंच निवेशनम् ॥१५॥

टीका—वत्स राम ! चिरञ्जीव, तेरे शत्रु हत हों, लक्ष्मी से युक्त हुआ तू मेरे और सुमित्रा के बन्धुओं को आनन्दित कर ।११। माता ने जब ऐसे कहा, तो राम हाथ जोड़ झुक कर बैठे हुए

भाई को देख कर के मुसकराता हुआ यह बचन बोला ॥१२॥ हे लक्ष्मण मेरे साथ इस पृथिवी का शासन कर, तू मेरा दूसरा अन्तरात्मा है, सो यह लक्ष्मी तुझे उपस्थित हुई है ॥१३॥ हे लक्ष्मण तू इष्ट भोगों को और राज्य के फलों को भोग, मैं तेरे लिए जीवन और राज्य को चाहता हूं ॥१४॥ लक्ष्मण को यह कह कर राम दोनों माताओं को अभिवादन कर के और सीता को आज्ञा दिला कर अपने भवन को गया ॥१५॥

सर्ग ५ (व० ५) अभिषेक से पूर्व के कर्तव्य

मूल—संदिश्य रामं नृपतिः श्वोभाविन्यभिषेचने । पुरोहितंसमाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥१॥ गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन । श्रेयसे राज्यलाभाय वध्वा सह यतव्रत ॥२॥ तथेति च स राजानमुक्त्वा वेदविदां वरः । स्वयं वसिष्ठो भगवान्ययौ रामनिवेशनम् ॥३॥ ब्राह्मं रथवरं युक्तमास्थाय सुधृतव्रतः ॥४॥

टीका—उधर राजा ने कल होने वाले अभिषेक के विषय में राम को संदेश देकर, फिर पुरोहित वसिष्ठ को बुलाकर यह कहा॥१॥ हे दृढ़ व्रतों वाले तपोधन जाइये और राम को श्री, यश और राज्यलाभ के लिये पत्नी समेत उपवास कराइये ॥२॥ 'तथास्तु' कहकर वह वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ सुदृढ़व्रतों वाला भगवान् वसिष्ठ ब्राह्म रथवर पर चढ़कर राम के घर गया ॥ ३, ४ ॥

मूल—तमागतमृषिं रामस्त्वरान्नित्र ससंभ्रमम् । मानयिष्यन् समानार्हं निश्चक्राम निवेशनात् ॥५॥ अभ्येत्य त्वरमाणोऽथ रथाभ्याशं मनीषिणः । ततोऽवतारयामास परिगृह्य रथात् स्वयम् ॥६॥ स चैनं प्रश्रितं दृष्ट्वा संभाष्याभिप्रसाद्य च । प्रियार्हं हर्षयन्राममित्युवाच पुरोहितः ॥७॥ प्रसन्नस्ते पिता राम यत्त्वं राज्यमवाप्स्यसि । उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया ॥८॥

टीका—मानार्हऋषि के आने पर उसके मान के लिये राम गौरव के साथ जल्दी भवन से बाहर आया ॥ ५ ॥ और जल्दी उस विद्वान् के रथके पासजाकर स्वयं हाथ पकड़कर रथ से उतारा ॥६॥ पुरोहित जी राम को नम्र देख,उस से सम्भाषण कर और प्रसन्न करके, प्रिय वचन के योग्य को हर्ष देते हुए बोले ॥७॥ हे राम ! पिता आप पर प्रसन्न हैं, सो आप यौवराज्य को प्राप्त होंगे, आज आप सीता समेत उपवास करें ॥ ८ ॥

मूल—इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतः । मन्त्रवत्कारयामास वैदेह्या सहितं मुनिः ॥९॥ ततो यथावद्रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः । अभ्यनुज्ञाप्य काकुत्स्थं ययौ रामनिवेशनात् ॥१०॥ सुहृद्भिस्तत्र रामोऽपि महासीनः प्रियंवदैः । सभाजितो विवेशाथताननुज्ञाप्य सर्वशः ॥११॥ हृष्टनारीनरयुतं रामवेश्म तदा बभौ । यथा मत्त-द्विजगणं प्रफुल्लनलिनं सरः ॥ १२ ॥

टीका--यह कहकर दृढव्रतों वाले राम को सीता समेत मन्त्रों सहित उपवास कराता भया॥९॥ तब राम ने यथायोग्य गुरु की पूजा की,और वह राम से अनुज्ञा लेकर राम के भवन से वापिस गया ॥१०॥ राम भी वहां प्रियवादी मित्रों के साथ बैठा हुआ उन से पूजित हुआ उन सब को अनुज्ञा देकर भवन में प्रविष्ट हुआ ॥११॥ उस समय हर्ष से भरे हुए नरनारी से युक्त राम-भवन ऐसा शोभायमान था, जैसे मस्त पक्षिगणों से युक्त फूले हुए कमलों वाला सरोवर हो ॥ १२ ॥

मूल—स राजभवनप्रख्यात्तस्माद्रामनिवेशनात् । निर्गत्य ददृशे मार्गं वसिष्ठो जनसंवृतम् ॥ १३ ॥ जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवतस्तदा । बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥ १४ ॥ प्रजालंकारभूतं

च जनस्यानन्दवर्धनम् । उत्सुकोऽभूज्जनोद्रष्टुं तमयोध्यामहोत्सवम् ॥१५॥ एवं तज्जनसंबाधं राजमार्गं पुरोहितः । व्यूहन्निव जनौघं तं शनै राजकुलं ययौ ॥ १६ ॥

टीका—इधर वसिष्ठजी राजभवन के सदृश रामभवन से निकलकर मार्ग को लोगों से भरा हुआ देखते भए ॥ १३ ॥ (पुरोहित को देखकर) राजमार्ग में स्थित लोगों की हर्ष ध्वनि मानों सागर की ध्वनि सी प्रकट हुई, जोकि लोगों के दलों के दल रूपी लहरों से प्रकट हुई ॥१४॥ प्रजा के भूषणभूत, लोगों के आनन्द बढाने वाले अयोध्या के उस महोत्सव को देखने के लिये लोग उत्सुक थे ॥१५॥ इसप्रकार लोगों से भरे हुए उस राजमार्गमें जनसमुदाय मे रस्ता लेता हुआ पुरोहित धीरे २ राजभवन को गया ॥ १६॥

मूल—समागतमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासनं नृपः । पप्रच्छस च तस्मै तत्र कृतमित्यभ्यवेदयत् ॥१७॥ तेन चैव तदा तुल्यं सहासीनाः सभासदः । आसनेभ्यः समुत्तस्थुः पूजयन्तः पुरोहितम् ॥१८॥ गुरुणा त्वभ्यनुज्ञातो मनुजौघं विसृज्य तम् । विवेशान्तः पुरं राजा सिंहो गिरिगुहामिव ॥ १९ ॥

टीका—उसको आता देख राजा राजासन से उठकर पूछते भए, तब पुरोहितने बतलाया, कि सारा कृत्य करा दिया है ॥ १७ ॥ राजा के साथ बैठे हुए सारे ही सभासद पुरोहित की पूजा करते हुए अपने२ आसनों से उठ खड़े हुए ॥१८॥गुरु से अनुज्ञा दिया हुआ राजा सब को विसर्जन करके अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ जैसे सिंह पर्वत की कन्दरा में ॥ १९ ॥

सर्ग ६ (व० ६) मन्थरा और कैकेयी की बातचीत

मूल—ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्या सहोषिता । प्रासादं चन्द्र-

संकाशमारुरोह यदृच्छया ॥१॥ सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकमलोत्पलाम् । अयोध्यां मन्थरा तस्मात्प्रसादादन्ववैक्षत ॥ २ ॥ पताकाभिर्वराईाभिर्ध्वजैश्च समलंकृताम् । संप्रहृष्टजनाकीर्णां ब्रह्मघोषानिनादिताम् ॥ ३ ॥ हृष्टप्रमुदितैः पौरैरुच्छ्रितध्वजमालिनीम् । अयोध्यां मन्थरा दृष्ट्वा परं विस्मयमागता ॥ ४ ॥

टीका—ज्ञातिदासी (मैकीदासी) जिसके जन्म का पता नहीं, किंतु कैकयी के साथ रही थी, वह चन्द्रतुल्य प्रसाद (महल) पर अचानक चढ़ी ॥१॥ उस मन्थरा ने प्रासाद से देखा, कि अयोध्या बड़ी सुहावनी बन रही है, उसके राजपथों में (सुगन्धित जलों का) छिड़काव होगया है और उन पर कमल फूल बिखरे हुए हैं ॥२॥ चुने हुए पुरुषों के योग्य झण्डियों से और झण्डों से शोभायमान है, हर्ष से भरे हुए लोगों से भरी हुई है, वेदध्वनि से गूंज रही है ॥ ३ ॥ हर्ष और मोद से भरे हुए पुरवासी उसमें ध्वजाएं ऊंची कर रहे हैं, अचानक अयोध्या की ऐसी धूमधाम को देखकर मन्थरा बड़े अचम्भे को प्राप्त भई ॥ ४ ॥

मूल—सा हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम् । अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा ॥५॥ उत्तमेनाभिसंयुक्ता हर्षेणार्थपरा सती । राममाता धनं किं नु जनेभ्यः संप्रयच्छति ॥६॥ अतिमात्रं प्रहर्षः किं जनस्यास्य च शंस मे । कारयिष्यति किं वापि संप्रहृष्टो महीपतिः ॥७॥ विदीर्यमाणा हर्षेण धात्रीतु परया मुदा । आचचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवे श्रियम् ॥८॥ श्वः पुष्येण जितक्रोधं यौवराज्येन चानघम् । राजा दशरथो राममभिषेक्ता हि राघवम् ॥९॥

टीका—तब मन्थरा ने हर्ष से खिले हुए नेत्रोंवाली, शुद्ध रेशमी वस्त्र पहने हुए निकट ही (कौसल्या के महल पर) स्थित (राम की)

धाया से पूछा ॥ ५ ॥ आज क्या है बड़े हर्ष से भरी हुई राम-माता तत्पर हुई लोगों को धन बांट रही है ॥ ६ ॥ लोगों का यह अतिमात्र प्रहर्ष कैसा है, और खुश २ राजा * क्या करना चाहता है, यह मुझे बतला ॥ ७ ॥ हर्ष से फूटती हुई धाया ने परम हर्ष के साथ कुब्जा को बतलाया कि राम को भूयसी राज्य लक्ष्मी दी जाने वाली है ॥ ८ ॥ कल पुष्य नक्षत्र में जीते हुए क्रोध वाले निष्पाप राम को राजा यौवराज्य में तिलक देगा

मूल—धात्र्यास्तु वचनं श्रुत्वा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता । कैलासशिखराकारात्प्रासादादवरोहत ॥ १० ॥ सा दह्यमाना क्रोधेन मन्थरा पापदर्शिनी । शयानामेत्य कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत ॥११॥ उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं त्वामभिवर्तते । उपप्लुतमघौघेन नात्मानमवबुध्यसे ॥ १२ ॥ अनिष्टे सुभगाकारे सौभाग्येन विकत्थसे । चलं हि तव सौभाग्यं नद्याःस्रोत इवोष्णगे ॥१३॥ एवमुक्ता तु कैकेयी रुष्टया परुषं वचः । कुब्जया पापदर्शिन्या विषादमगमत्परम् ॥१४॥ कैकेयी त्वब्रवीत्कुब्जां कच्चित्क्षेमं नु मन्थरे । विषण्णवदनां हि त्वां लक्षये भृशदुःखिताम् ॥१५॥ सा विषण्णतरा भूत्वा कुब्जा तस्य हितैषिणी । विषादयन्ती प्रोवाच भेदयन्ती च राघवम् ॥ १६ ॥

टीका—धाया के वचन को सुन कर कुब्जा क्रोध से भरी हुई कैलास की चोटी के तुल्य महल से जल्दी उतर आई ॥ १० ॥ वह क्रोध से जलती हुई पापदर्शिनी मन्थरा लेटी हुई कैकयी के पास आ यह वचन बोली ॥११॥ उठ हे भोली, क्यों लेट रही है, भय तेरे सामने आ गया है, दुःख के समूह से घिरा

* राजा दरबार से उठकर पहले कौसल्या के भवन में गया है, जिसको खुश २ मन्थरा ने देखा ॥

हुआ तू अपने आप को नहीं समझती है ॥ १२ ॥ हे (अन्दर से राजा की) न प्यारी हे सौभाग्यवतियों की तरह भासने वाली ! क्या तू सौभाग्य से अपने आप को सराहा करती है (मेरा स्वामी सब से बढकर मुझ में अनुरक्त है, सदा मेरा प्रिय चाहता है, इत्यादि प्रकार से वृथा श्लाघा किया करती है) तेरा सौभाग्य क्षीण होने को है, जैसे गर्मी में नदी का प्रवाह ॥१३॥ इस प्रकार जब रुष्ट हुई पापदर्शिनी कुब्जा ने कैकेयी को कठोर वचन कहा, तो वह बड़े विषाद को प्राप्त भई ॥ १४ ॥ कैकेयी कुब्जा से बोली, क्या मन्थरे ! कुशल तो है, मैं तुझे उदास मुख और अत्यन्त दुःखी देखती हूं ॥१५॥ और भी अधिक उदास होकर कुब्जा जो कैकेयी की हितैषिणी है, कैकेयी को विषाद उत्पन्न करती हुई और दशरथ से भेद उत्पन्न करती हुई बोली ॥

मूल-अक्षयं सुमहद्देवि प्रवृत्तं त्वद्विनाशनम् ! रामं दशरथो राजा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥१७॥ साऽस्म्यगाधे भये मग्ना दुःखशोकसमन्विता। दह्यमानानलेनेव त्वद्धितार्थमिहागता ॥ १८ ॥ तव दुःखेन कैकेयी मम दुःखं महद्भवेत्। त्वद्वृद्धौ मम वृद्धिश्च भवेदत्र न संशयः ॥ १९ ॥ नराधिपकुले जाता महिषी त्वं महीपतेः। उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे ॥ २० ॥ उपस्थितं प्रयुञ्जानस्त्वयि सान्त्वमनर्थकम्। अर्थेनैवाद्य ते भर्ता कौसल्यां योजयिष्यति ॥ २१ ॥

टीका-हे देवी ! किसी तरह पूरी न होने वाली बहुत बडी तेरी हानि होने लगी है, राजा दशरथ राम को युवराज बनाएगा ॥ १७॥ सो मैं दुःख शोक से युक्त हुई अगाध भय में डूब गई हूं आग से जलती हुई सी मैं तेरे हित के लिये यहां आई हूं १८

तेरे दुःख से हे कैकेयि ! मुझे बडा दुःख होगा और तेरी वृद्धि में मेरी वृद्धि होगी, इस में संशय नहीं ॥१९॥ राजा की कुल में उत्पन्न होकर और राजा की रानी होकर हे देवि ! तू राजधर्मों की भयंकरता को क्यों नहीं समझती है ॥२०॥ हर एक अवसर पर व्यर्थ ही तुझे तसल्ली देता हुआ तेरा भर्ता अर्थ से आज कौसल्या को ही युक्त करेगा ॥२१॥

मूल—अपवाह्य तु दुष्टात्मा भरतं तव बन्धुषु । काल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकण्टके ॥ २२ ॥ सा प्राप्तकालं कैकेयि क्षिप्रं कुरु हितं तव । त्रायस्व पुत्रमात्मानं मां च विस्मयदर्शने ॥२३॥ मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात्सा शुभानना । उत्तस्थौ हर्षसंपूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी ॥२४॥ अतीव सा तु संतुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता । दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम् ॥ २५ ॥

टीका—मन में खोट रख कर ही भरतको तेरे बन्धुओं में (नानके) निकाल कर अवसर पाकर निष्कण्टक राज्य में राम को स्थापन करेगा ॥२२॥ अभी समय है, हे कैकेयि ! जल्दी अपना हित कर, हे हैरानी देखने वाली पुत्र को, अपने आप को और मुझ को बचा ॥२३॥ मन्थरा के वचन को सुन कर लेटी हुई वह सुन्दरमुखवाली हर्ष से पूर्ण हुई शरद ऋतु की चन्द्र लेखा की तरह उठ बैठी ॥२४॥ अत्यन्त प्रसन्न हुई और आश्चर्य हुई कैकेयी ने एक शुभ भूषण उतार कर कुब्जा को दिया (और कहा) ॥२५॥

मूल—+इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम् । एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते ॥२६॥+रामे वा भरतेवाहं विशेषं नोपलक्षये । तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति २७

+न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम् । तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु२८

टीका–हे मन्थरा यह तो मुझे तू परमप्रिय बात कह रही है, यह तूने मुझे प्रिय बतलाया है, कहो और क्या तुझे प्रीतिदान करूं ॥२६॥ राम में वा भरत में मैं कोई भेद नहीं देखती हूं, इस लिये प्रसन्न हुई हूं, कि राजा राम को तिलक देगा ॥२७॥ हे प्रीतिदान के योग्य ! यह तूने ऐसा बचन कहा है, इस से बढ़ कर तू मेरे लिए और कोई उत्तम बचन नहीं कह सकती है, सो इस प्रीतिदान के पीछे और तुझे उत्तम वर देती हूं, उस को मांग ले ॥२८॥

सर्ग ६ (व०६) मन्थरा की कैकेयी को खोटी प्रेरणा

मूल–मन्थरा त्वभ्यसूयैनामुत्सृज्याभरणं हि तत् । उवाचेदं ततो वाक्यं कोपदुःखसमन्विता ॥१॥ हर्षं किमिदमस्थाने कृतवत्यसि बालिशे । शोकसागरमध्यस्थं नात्मानमवबुद्ध्यसे ॥२॥ मनसा प्रहसामि त्वां देवि दुःखार्दिता सती । यच्छोचितव्ये हृष्टासि प्राप्य त्वं व्यसनं महत् ॥३॥ भरतादेव रामस्य राज्यसाधारणाद्भयम् । तद्विचिन्त्य विषण्णास्मि भयं भीताद्धि जायते ॥४॥ लक्ष्मणो हि माहाबाहू रामं सर्वात्मना गतः । शत्रुघ्नश्चापि भरतं काकुत्स्थं लक्ष्मणो यथा ॥५॥ प्रत्यासन्नक्रमेणापि भरतस्यैव भामिनि । राज्यक्रमो विप्रकृष्टस्तयोस्तावद्यवीयसोः ॥ ६ ॥

टीका–पर मन्थरा इस को दोष दृष्टि से देख कर उस भूषण को फैंक कर कोप और दुःख से युक्त हुई यह वाक्य बोली ॥१॥ हे भोलिये किस लिये अस्थान में (बेमौका) हर्ष कर रही है तू शोक सागर के मध्य में स्थित अपने आप को नहीं समझती है

॥२॥ हे देवि ! दुःख से पीड़ित हुई मैं मन से तेरे ऊपर हंसती हूं, जिस लिए तू इस भारी विपद् को पाकर शोक की जगह हर्ष मना रही है ॥३॥ राज्य के सांझा होने से राम को भरत से ही भय है, यह सोच कर मैं दुःखी हो रही हूं, क्योंकि भीत से भय उत्पन्न होता है(जो जिस से भीत है,वह उस के लिये भय खड़ा करता है) ॥४॥ क्योंकि महाबाहु लक्ष्मण तो पूरे तौर पर रामके आश्रय है और शत्रुघ्न उसी तरह भरत की ओर है, जैसे लक्ष्मण राम की ॥ ५ ॥ निकटता के क्रम से भी हे भामिनि ! भरत को ही राज्य क्रमप्राप्त है, दूसरे दोनों छोटे हैं, उनसे दूर जापड़ता है ॥

मूल–विदुषः क्षत्रचारित्रे प्राज्ञस्य प्राप्तकारिणः । भयात्प्रवेपे रामस्य चिन्तयन्ती तवात्मजम् ॥७॥ सुभगा खलु कौसल्या यस्याः पुत्रोऽभिषेक्ष्यते । उपस्थास्यासि कौसल्यां दासीव त्वं कृताञ्जलिः ॥८॥ एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यासि पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यभावं गमिष्यति ॥९॥तांदृष्ट्वा परम प्रीतां ब्रुवन्तीं मन्थरां ततः । रामस्यैव गुणान्देवी कैकेयी प्रशशंसह ॥

टीका–क्षत्रचारित्र (आपस में मिलाने फोड़ने आदि) में निपुण, दाना, मौका न चूकने वाले, राम से तेरे पुत्र के प्रति भावी अनर्थ को सोचती हुई मैं भय से कांप रही हूं ॥७॥ कौसल्या सच मुच सौभाग्यवती है, जिस के पुत्र को कल तिलक होगा, तू दासी की तरह हाथ बांध कर कौसल्या की सेवा में उपस्थित हुआ करेगी ॥८॥ इस तरह तू हमारे समेत उस की चाकर होगी और तेरा पुत्र राम का चाकर होगा ॥९॥ मन्थरा को बड़ी प्रसन्न बोलती हुई देख कर राम के ही गुणों को कैकेयी फिर सराहने लगी ॥१०॥

मूल—+धर्मज्ञो गुणवान्दान्तः कृतज्ञः सत्यवाक्छुचिः । रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ॥११॥ भ्रातॄन्भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत्पालयिष्यति । संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥१२॥+यथा मे भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपिराघवः । कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम् ॥१३॥+राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा । मन्यते हि यथात्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः ॥१४॥ कैकेय्या वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता । दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥१५॥

टीका—राम राजा का ज्येष्ठ पुत्र है, धर्मज्ञ, गुणवान, दमनशील कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र है, इस लिये वह युवराज होने के योग्य है ॥११॥ वह दीर्घायु भाईयों को और भृत्यों को पितृवत् पालन करेगा, हे कुब्जे तू रामाभिषेक को सुन कर क्यों संतप्त हो रही है ॥१२॥ भरत जैसा मुझे मान्य है, राम उन से बढ़कर है और वह भी कौसल्या से बढ़कर मेरी सेवा करता है ॥१३॥ राज्य यदि राम का है, तो वह भरत का भी है, राम अपने भाईयों को अपने जैसा समझता है ॥१४॥ कैकेयी के वचन को सुन कर मन्थरा अत्यन्त दुःखित हुई लम्बा उष्ण सांस भर कर कैकेयी से यह वचन बोली ॥१५॥

मूल—अनर्थदर्शिनी मौर्ख्यान्नात्मानमवबुद्ध्यसे । शोकव्यसन विस्तीर्णे मज्जन्ती दुःखसागरे ॥ १६ ॥ भविता राघवो राजा राघवस्यानुयःसुतः । राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते ॥१७ असावत्यन्तनिर्भग्नस्तव पुत्रो भविष्यति । अनाथवत्सुखेभ्यश्च राजवंशाच्च वत्सले ॥१८॥ साहं त्वदर्थे संप्राप्ता त्वं तु मां नाववुद्ध्यसे । सपत्निवृद्धौ या मे त्वं प्रदेयं दातुमिच्छसि ॥१९॥ ध्रुवं तु भरतं

रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम् । देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि वा ॥२०॥ गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं चापि राघवः । तस्मान्न लक्ष्मणे रामः पापं किंचित्करिष्यति ॥२१॥

टीका—तू अनर्थ देखेगी, जो शोक विपद् के फैले हुए दुःखसागर में डूबती हुई तू अपने आप को नहीं समझती है ॥१६॥ राम राजा होगा राम के पीछे उस का पुत्र होगा। राजवंश से हे कैकेयि ! भरत अलग होजाएगा ॥१७॥ वह तेरा पुत्र सुखों से और राज वंश से अनाथ की तरह अत्यन्त दूर फैंका जाएगा ॥१८॥ सो मैं तेरे लिये प्राप्त हुई हूं, पर तू मुझे नहीं समझती है, सौतिन की वृद्धि में जो तू मुझे पारितोषिक देना चाहती है ॥१९॥ निःसन्देह राम अकण्टक राज्य को पाकर भरत को या तो देशान्तर में हांकेगा, वा लोकान्तर में पहुंचाएगा ॥२०॥ लक्ष्मण राम की रक्षा करेगा और राम लक्ष्मण की। इस लिये राम लक्ष्मण के विषय में कोई बुराई नहीं करेगा ॥२१॥

मूल—रामस्तु भरते पापं कुर्यादेव न संशयः । तस्माद्राजगृहादेव वनं गच्छतु ते सुतः ॥२२॥ एवं ते ज्ञातिपक्षस्य श्रेयश्चैव भविष्यति। यदि चेद्भरतो धर्मात्पित्र्यं राज्यमवाप्स्यति ॥२३॥ यदा हि रामः पृथिवीमवाप्स्यते ध्रुवं प्रणष्टो भरतो भविष्यति । अतो हि संचिन्तय राज्यमात्मजे परस्य चैवाद्य विवासकारणम् ॥२४॥

टीका—पर राम भरत के विषय में पाप करेगा इसमें कोई संशय ही नहीं। इस लिये तेरा पुत्र केकयराज के घर से ही वन को चला जाए ॥२२॥ इस प्रकार तेरे ज्ञातिपक्ष का भला होगा। अथवा (तब भला होगा) यदि भरत धर्म से पिता के राज्य को प्राप्त होगा ॥२३॥ आज ही जब राम राज्य को प्राप्त होगा, तो यह

अटल है, कि भरत नाश होजाएगा, इस लिये अपने पुत्र के लिये राज्य की और शत्रु को निकालने की चिन्ता कर ॥२४॥

सर्ग ७ (व० ९) कैकेयी का प्रेरा जाना

मूल—एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना। दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मन्थरामिदमब्रवीत् ॥१॥ अद्य राममितः क्षिप्रं वनं प्रस्थापयाम्यहम्। यौवराज्येन भरतं क्षिप्रमेवाभिषेचये ॥२॥ इदं त्विदानीं संपश्य केनोपायेन मन्थरे। भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं न तु रामः कथंचन ॥३॥ एवमुक्ता तु सा देव्या मन्थरा पापदर्शिनी। रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥४॥

टीका—ऐसा कहने पर कैकेयी का मुख क्रोध से लाल हो गया, और वह लंबा गर्म सांस भरकर मन्थरा से यह बोली ॥ १ ॥ अभी मैं राम को जल्दी यहां से बन को भिजवाती हूं, और यौवराज्य में जल्दी ही भरत का अभिषेक करवाती हूं ॥ २ ॥ पर अब इस बात को देख हे मन्थरे! किस उपाय से भरत राज्य को प्राप्त हो, और राम किसी तरह न प्राप्त हो ॥ ३ ॥ जब रानी ने उसे ऐसा कहा, तो वह पापदर्शिनी मन्थरा राम के अर्थ को नाश करती हुई कैकेयी से यह बोली ॥ ४ ॥

मूल—हन्तेदानीं प्रपश्य त्वं कैकेयि श्रूयतां वचः। यथा ते भरतो राज्यं पुत्रः प्राप्स्यति केवलम् ॥५॥ किं न स्मरसि कैकेयि स्मरन्ती वा निगूहसे। यदुच्यमानमात्मार्थं मत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥६॥ मयोच्यमानं यदि ते श्रोतुं छन्दो विलासिनि। श्रूयतामभिधास्यामि श्रुत्वा चैतद्विधीयताम् ॥ ७ ॥ पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः। अगच्छत् त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत् ॥८॥

टीका—हन्त! ध्यान देकर तू हे कैकेयि! मेरा वचन सुन, जिस

प्रकार कि तेरा पुत्र भरत ही अकेले राज्य को प्राप्त हो ॥ ५ ॥ क्या तुझे स्मरण नहीं है कैकेयी ! वा स्मरण करती हुई छिपाती है, जो तू मुझ से कहे हुए अपने प्रयोजन को सुनना चाहती है ॥ ६ ॥ हे विलासिनि ! यदि मुझ से कहा हुआ ही सुनने की तेरी इच्छा है, तो सुन, मैं कहती हूं, और सुन करके उस को विचार ॥ ७ ॥ पूर्व देवासुर युद्ध में राजऋषियों के साथ तेरा पति तुझे लेकर देवराज की सहायता के लिये गया था ॥ ८ ॥

मूल–दिशमास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकान्प्रति । वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥९॥ स शम्बर इति ख्यातः शतमायो महासुरः । ददौ शक्रस्य संग्रामं देवसंघैरनिर्जितः ॥१०॥ तस्मिन्म हति संग्रामे पुरुषान्क्षतविक्षतान् । रात्रौ प्रसुप्तान्घ्नन्ति स्म तरसा-ऽपास्य राक्षसाः ॥११॥ तत्राकरोन्महद्युद्धं राजा दशरथस्तदा । असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः ॥१२॥

टीका–दक्षिण दिशा में दण्डक के अन्दर वैजयन्तपुर में जहां मत्स्यध्वज राजा था ॥ ९ ॥ वह लोक में शम्बर नाम से प्रसिद्ध महादैत्य था, जो कि पहले किसी से जीता नहीं गया था, उस ने देवसमूहों समेत इन्द्र को संग्राम दिया ॥ १० ॥ उस बड़े संग्राम में राक्षस लोग (दिन के युद्ध से थके हुए–) रात के समय सोए हुए क्षत विक्षत पुरुषों को बल से खींच लेजाकर मार डालते थे ॥ ११ ॥ वहां (रात के समय) महाबाहु राजा दशरथ ने असुरों के साथ बड़ा भारी युद्ध किया और शस्त्रों से (सारे अंगों में) क्षत हुआ–॥१२॥

मूल–अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः । तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ॥ १३ ॥ तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ

शुभदर्शने । स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरम्॥१४॥
गृह्णीयामिति तत् तेन तथेत्युक्तं महात्मना । अनभिज्ञा ह्यहं देवि
त्वयैव कथितं पुरा॥१५॥कथैषा तव तु स्नेहान्मनसा धार्यते मया।
रामाभिषेकसंभारान्निगृह्य विनिवर्तय ॥ १६ ॥ तौ वरौ याच भर्तारं
भरतस्याभिषेचनम् । प्रवासनं च रामस्य वर्षाणि हि चतुर्दश॥१७॥

टीका–अचेतन हो गया, तब वहां से हे देवि ! शस्त्रों से क्षत हुए अपने पति को संग्राम से निकालकर अपना पति तूने ही बचाया था ॥ १३ ॥ हे शुभदर्शने ! उस ने प्रसन्न होकर तब तुझे दो वर दिये थे, हे देवि ! तब तूने पति को कहा था, कि जब मैं चाहूं, तब दोनों वर ॥१४॥ ले सकूं, तब उस महात्मा ने कहा, "तथास्तु' (यह कथा है) मुझे तो इस की खबर न थी, हे देवि। तूने ही मुझे कहा था ॥ १५ ॥ तेरे स्नेह से मैंने इस कथा को मन से धारण किया हुआ है। इस के बल से अब तू पति को जीत कर राम के अभिषेक के संभारों को पलट दे ॥ १६ ॥ वह दो वर भर्ता से यह मांग, कि भरत को अभिषेक हो, और राम को चौदह वर्ष बनवास हो ॥ १७ ॥

मूल–चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम् । प्रजाभावगतस्नेहः
स्थिरः पुत्रो भविष्यति ॥ १८ ॥ क्रोधागारं प्रविश्याद्य क्रुद्धेवाश्व-
पतेः सुते । शेष्वानन्तर्हितायां त्वं भूमौ मलिनवासिनी ॥ १९ ॥
दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः। त्वत्कृते च महाराजो
विशेदपि हुताशनम् ॥ २० ॥ न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न क्रुद्धां
प्रत्युदीक्षितुम् । तव प्रियार्थं राजा तु प्राणानपि परित्यजेत्
॥ २१॥ न ह्यतिक्रमितुं शक्तस्तव वाक्यं महीपतिः । मन्दस्वभावे
बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः ॥ २२ ॥

टीका—जब राम चौदह बरस तक वन में निकाला गया, तो इतने में तेरे पुत्र का स्नेह प्रजा के हृदयों में खुभजाने से तेरा पुत्र स्थित हो जाएगा ॥१८॥ हे अश्वपति की कन्या क्रोधघर (क्रोधागार) में क्रुद्ध हुई की तरह प्रवेश कर, और मैले वस्त्र पहनकर विनढ की भूमि पर लेट जा ॥१९॥ तू सदा भर्ता की प्यारी है इस में मुझे संशय नहीं, तेरे लिए महाराज अग्नि में कूद सक्ता है ॥२०॥ न वह तुझे क्रुद्ध कर सक्ता है न क्रुद्ध हुई देख सक्ता है, तेरे प्रिय के लिए राजा प्राणों को भी त्याग सक्ता है ॥२१॥ राजा तेरे वाक्य को उल्लंघ नहीं सक्ता, हे भोले स्वभाव वाली अपने सौभाग्यबल को समझ ॥२२॥

मूल—मणिमुक्तासुवर्णानि रत्नानि विविधानि च। दद्याद्दशरथो राजा मास्म तेषु मनः कृथाः ॥२३॥ यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ । तौ स्मारय महाभागे सोऽर्थो न त्वा क्रमेदति ॥२४॥ यदा तु ते वरं दद्यात्स्वयमुत्थाप्य राघवः । व्यवस्थाप्य महाराजं त्वमिमं वृणुया वरम् ॥२५॥ रामं प्रव्राजयारण्ये नव वर्षाणि पञ्च च । भरतः क्रियतां राजा पृथिव्यां पार्थिवर्षभ ॥ २६ ॥ चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम् । रूढश्च कृतमूलश्च शेषं स्थास्यति ते सुतः ॥२७॥ एवं प्रव्राजितश्चैव रामोऽरामो भविष्यति । भरतश्च हतामित्रस्तव राजा भविष्यति ॥ २८ ॥

टीका—राजा दशरथ अनेक प्रकार के मणि, मोती, सोना, रत्न देगा, उन में मन मत देना ॥२३॥ किन्तु देवासुर युद्ध में जो वह दोनों वर तुझे महाराज ने दिये हैं, हे महाभागे ! उन का स्मरण कराना, यह प्रयोजन तेरे हाथ से न निकल जाए ॥२४॥ जब दशरथ स्वयं उठा करके तुझे वर देवे, तब तू महाराज को

पक्का करके फिर उन से यह वर मांग ॥२५॥ राम को चौदह बरस वन में निकाल दे, और हे राजश्रेष्ठ! भरत को पृथिवी का राजा बना ॥२६॥ चौदह बरस जब राम वन में निकाला गया, तो तेरा पुत्र फैलेगा और जड़ पकड़ जाएगा, फिर आगे भी वही राजा रहेगा ॥२७॥ इस तरह निकाला जाने पर राम-राम नहीं रहेगा और तेरा भरत हतशत्रु होकर राजा होगा ॥२८॥

मूल—प्राप्तकालं नु मन्येऽहं राजानं वीतसाध्वसा। रामाभिषेकसंकल्पान्निगृह्य विनिवर्तय ॥२९॥ तथा प्रोत्साहिता देवी गत्वा मन्थरया सह। क्रोधागारं विशालाक्षी सौभाग्यमदगर्विता॥३०॥अवमुच्य वरार्हाणि शुभान्याभरणानि च। संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत्॥३१॥इह वा मां मृतां कुब्जे नृपायावेदयिष्यसि वनं वा राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यते क्षितिम् ॥३२॥ सुवर्णेन न मे ह्यर्थो न रत्नैर्नच भूषणैः।एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते

मूल—सो मैं तेरे लिए यह अवसर हाथ आया हुआ जानती हूं, निडर होकर राजा को हराकर राम के अभिषेक की सामग्री को पलट दे ॥२९॥ इस तरह उत्तेजना दी हुई विशाल नेत्रों वाली रानी मन्थरा के साथ क्रोध घर में जाकर सौभाग्य मद में गर्ववाली॥३०॥ कैकयी बहुमूल्य शुभ भूषणों को उतार कर पृथिवी पर लेट कर मन्थरा से यह बोली ॥३१॥ हे कुब्जे अब या तो मेरी बाबत राजा को बतलाएगी, कि वह मर गई, अथवा राम वन को जाएगा और भरत पृथिवी को प्राप्त होगा ॥३२॥ मुझे न सुवर्ण से न रत्नों से न भूषणों से प्रयोजन है, यह मेरे जीवन का अन्त है, यदि राम को तिलक हो ॥३३॥

सर्ग ८ (व० १०) राजा की कैकयी से प्रतिज्ञा

मूल—प्रियार्हां प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं वशी। स कैकेय्या गृहं

श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः ॥ १ ॥ लतागृहैश्चित्रगृहैश्चम्पकाशोक-
शोभितैः। दान्तराजतसौवर्णवेदिकाभिः समायुतम् ॥ २ ॥ नित्य
पुष्पफलैर्वृक्षैर्वापीभिरुपशोभितम् । स प्रविश्य महाराजः स्वमन्तः
पुरमृद्धिमत् ॥ ३ ॥ न ददर्श स्त्रियं राजा कैकेयीं शयनोत्तमे ।
अपश्यन्दयितां भार्यां पप्रच्छ विषसाद च॥४॥नहि तस्य पुरा देवी
तां वेलामत्यवर्तत । न च राजा गृहं शून्यं प्रविवेश कदाचन ॥५॥

टीका—इधर प्रिय के योग्या (पत्नी) को प्रिय कहने के लिये वह वशी दशरथ अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ, वह महायशस्वी कैकेयी के श्रेष्ठ घर में प्रविष्ट हुआ ॥१॥ जो बेलघरों से, चित्रघरों से और चम्पे और अशोक से शोभायमान है, हाथीदान्त, चांदी और सोने की वेदियों से युक्त है, सदा फल फूलवाले वृक्षों से और बावड़ियों से शोभायमान है, महाराज ऋद्धिवाले उस अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ ॥२,३॥ पर प्यारी कैकेयी को उत्तम शयन पर नहीं देखा, प्यारी भार्या को न देखते हुए राजा ने खिन्न होकर पूछा।४। क्योंकि रानी ने इससे पहले कभी (राजा के आने के) समय को नहीं टाला था, और न कभी राजा शून्यघर में प्रविष्ट हुआ था॥५॥

मूल—प्रतीहारी त्वथोवाच संत्रस्ता सुकृताञ्जलिः।देव देवी भृशं क्रुद्धा
क्रोधागारमभिद्रुता॥६॥ प्रतीहार्या वचः श्रुत्वा राजा परमदुर्मनाः ।
विषसाद पुनर्भूयो लुलितव्याकुलितेन्द्रियः ॥७ ॥ तत्र तां पतितां
भूमौ शयानामतथोचिताम्।प्रतप्त इव दुःखेनसोऽपश्यज्जगतीपतिः॥
८ ॥ स वृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । अपापः
पापसंकल्पां ददर्श धरणीतले ॥९ ॥ परिमृश्य च पाणिभ्यामभि-
संत्रस्तचेतनः । कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम् ॥ १० ॥

टीका—तब द्वारपालिका हाथ जोड़ भयभीत हुई बोली हे देव! देवी अत्यन्त क्रुद्ध हुई क्रोध घर में चली गई है ॥६॥ द्वारपालिका के

वचन को सुनकर राजा बड़ा दुर्मन हुआ और भी बढ़कर खिन्नहुआ (न देखनेका खेद,क्रोध को सुनकर और बढ़गया)और उसके इन्द्रिय सब घबरा गये ॥७॥ वहां (क्रोधागार में) उसको भूमी पर गिरी लेटी हुई-जो ऐसी अवस्था के योग्य नहीं-राजाने अत्यन्त दुःखित होकर देखा ॥८॥ उस वृद्ध ने तरुणी भार्या-जो प्राणों से बढ़कर प्यारी है-निष्पाप ने पापसंकल्पवाली को पृथिवीतल पर देखा ॥ ९ ॥ दोनों हाथों से स्पर्श करके, डरी हुई बुद्धिवाला कामी कमलनेत्रों वाली स्त्री से यह बोला ॥ १० ॥

मूल—न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रितम् । देवि केनाभिशप्तासि केन वासि विमानिता॥११॥यदिदं मम दुःखाय शेषे कल्याणि पांसुषु । भूमौ शेषे किमर्थं त्वं मयि कल्याणचेतसि॥१२॥ न ते कंचिदभिप्रायं व्याहन्तुमहमुत्सहे । आत्मनो जीवितेनापि ब्रूहि यन्मनसि स्थितम् ॥१३ ॥ बलमात्मनि जानन्ती न मां शङ्कितुमर्हसि । करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ॥ १४ ॥

टीका—हे देवि ! मैं अपने आश्रित तेरा कोई क्रोध नहीं जानता हूं, किसने तुझे कठोर कहा है,वा अपमान किया है ॥११॥ जो यह मेरे दुःख के लिये हे कल्याणि ! तू धूल में लेट रही है,तू क्यों भूमि पर लेटी है,जबकि मैं तेरे लिये भला चित्त रखता हूं ॥ १२॥ मैं अपने जीवन के निमित्त भी तेरा कोई अभिप्राय नाश नहीं करसक्ताहूं, कहो जो तेरे मन में है ॥१३॥ अपने में (मेरे प्रेम रूप) बल को जानती हुई तुझे मेरे ऊपर शङ्का नहीं करनी चाहिये, तेरा प्रिय करूंगा अपने पुण्य की शपथ करता हूं ॥ १४ ॥

सर्ग ९ (व० १०, ११) कैकेयी का दोनों वर बतलाना

मूल—तथोक्ता सा समाश्वस्ता वक्तुकामा तदप्रियम् । परिपीडयितुं भूयो भर्तारमुपचक्रमे॥१॥नास्मि विप्रकृता देव केनचिन्नावमानिता

अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तमिच्छामि त्वया कृतम्॥२॥ प्रतिज्ञां प्रतिजानीष्व यदि त्वं कर्तुमिच्छसि । अथ ते व्याहरिष्यामि यथाभिप्रार्थितं मया ॥३॥ तामुवाच महाराजः कैकेयीमीषदुत्स्मयः । अवलिप्ते न जानामि त्वत्तः प्रियतरो मम ॥४॥ मनुजो मनुजव्याघ्राद्रामादन्यो न विद्यते । तेन रामेण कैकेयि शपे ते वचनक्रियाम्

टीका—ऐसे कही हुई वह तसल्ली पकड़कर उस अप्रिय को कहना चाहती हुई भर्त्ता को अधिक पीडने का आरम्भ करती भई ॥१॥ हे देव ! न मेरा किसी ने बिगाडा है, न अपमान किया है, किन्तु मेरा कुछ अभिप्राय है, उस को आप से पूरा कराया चाहती हूं ॥२॥ यदि आप करना चाहते हैं तो प्रतिज्ञा कीजिये, तब मैं अभिप्राय कहूंगी ॥३॥ तब उस कैकेयी को महातेजस्वी ने कुछ मुसकरा कर कहा, हे अभिमानिनि ! तू नहीं जानती है, कि मनुष्यों में श्रेष्ठ राम के सिवाय तुझ से बढ़ कर मुझे कोई और प्यारा नहीं है, * उस राम की हे कैकेयी ! तेरे बचन को पूरा करने के लिए शपथ (सौगंद) करता हूं † ॥४, ५ ॥

मूल—बलमात्मनि पश्यन्तीन मां शङ्कितुमर्हसि । करिष्यामितव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ॥ ६ ॥ तेन वाक्येन संहृष्टा तमभिप्रायमात्मनः । व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवान्तकम् ॥७॥ स्मर राजन्पुरा वृत्तं तस्मिन्दैवासुरे रणे । यत्र त्वाऽच्यावयच्छत्रुस्तव जीवितमन्तरा ॥

टीका—अपने में (मेरे प्रेम के) बल को देखती हुई तुझे मुझपर शंका नहीं करनी चाहिये, तेरा प्रिय करूंगा, अपने पुण्य से भी

---

* कैसा सरल बचन है, राजा नहीं जानता कि अब कैकेयी राम के नाम से जल रही है ।

† अर्थात् यदि मैं तेरा बचन पूरा न करूं, तो मुझे राम का मुख देखना न मिले (पूरा करके भी तो यही फल मिला—सम्पादक) ॥

तेरे आगे शपथ करता हूं (अर्थात् मुझे पुण्य भी फलप्रद न हो, यदि तेरा प्रिय न करूं यह पहली शपथही फिर दुहराई है)॥६॥ इस वाक्य से सन्तुष्ट होकर वह सामने आए हुए यम की तरह,महा भयङ्कर अपना अभिप्राय कहनेलगी ॥ ७ ॥ स्मरणकर हे राजन् ! पूर्व वृत्तान्त को, वहां उस देवासुर संग्राम में (रात्रि युद्ध में) शत्रु ने तुझे ऐसा घायल किया, कि जीवन ही शेष रहगया था ॥ ८ ॥

मूल–तत्र चापि मया देव यत्त्वं समभिरक्षितः। जाग्रत्या यतमानायास्ततो मे प्राददा वरौ ॥ ९ ॥ तौ तु दत्तौ वरौ देव निक्षेपौ मृगयाम्यहम् । तवैव पृथिवीपाल सकाशे रघुनन्दन ॥ १० ॥ तत्प्रतिश्रुत्य धर्मेण न चेद्दास्यसि मे वरम् । अद्यैव हि प्रहास्यामि जीवितं त्वद्विमानिता ॥ ११ ॥ वाङ्मात्रेण तदा राजा कैकेय्या स्ववशे कृतः । प्रचस्कन्द विनाशाय पाशं मृग इवात्मनः ॥ १२॥ ततः परमुवाचेदं वरदं काममोहितम् । वरौ यौ तौ त्वया देव तदा दत्तौ महीपते ॥ १३ ॥ तौ तावदहमद्यैव वक्ष्यामि शृणु मे वचः । १४ ॥ अभिषेकसमारम्भो राघवस्योपकल्पितः । अनेनैवाभिषेकेण भरतो मेऽभिषिच्यताम् ॥ १५ ॥

टीका–हे देव! वहां मैंने आपको बचाया था, तब जागती हुई और यत्न करती हुई मुझको आपने दो वर दिये थे॥ ९ ॥ वह दिये हुए दोनों वर हे देव हे पृथिवीपाल, हे सच्ची प्रतिज्ञावाले तेरे ही पास अमानत हैं, वही अब मैं लेने चाहती हूं ॥ १० ॥ सो धर्म से प्रतिज्ञा करके यदि मुझे वर नहीं देगा, तो आज ही तुझसे अपमानित हुई अपना जीवन त्याग दूंगी ॥ ११ ॥ इसतरह कैकेयी से अपने वस में किया हुआ राजा वाणिमात्र(हां हां करूंगा इस वाणी) से हिरण की तरह अपने नाश के लिये (कैकेयी से फैलाए) जाल में जापड़ा

१२ ॥ तब फिर काम से मोहित उस वरदाता से बोली, हे देव हे महीपते जो आपने दो वर मुझे दिये हुए हैं ॥ १३ ॥ वही अब कहती हूं, मेरे वचन को सुनिये ॥१४॥ यह अभिषेक की तय्यारी जो राम के लिये कीगई है, इसी अभिषेक से मेरे भरत को अभिषेक दीजिये ॥ १५ ॥

मूल–यो द्वितीयो वरो देव दत्तः प्रीतेन मे त्वया । तदा दैवासुरे युद्धे तस्य कालोऽयमागतः ॥ १६ ॥ नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः । चीराजिनजटाधारी रामो भवतु तापसः ॥१७ ॥ एष मे परमः कामो दत्तमेव वरं वृणे । अद्यैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं वने ॥१८॥ स राजराज भव सत्यसंगरः कुलं च शीलं च हि रक्ष जन्म च । परत्र वासे हि वदन्त्यनुत्तमं तपोधनाः सत्यवचो हितं नृणाम् ॥ १९ ॥

टीका–जो दूसरा वर हे देव तूने प्रसन्न होकर तब देवासुर संग्राम में मुझे दिया हुआ है, उनका काल यह आया है ॥ १६ ॥ राम-चीर, मृगछाला और जटाधारी तपस्वी बनकर चौदह वर्ष दण्डकवन में रहे ॥ १७ ॥ यह मेरी परम कामना है, मैं दिया हुआ ही वर मांगती हूं, आज ही राम को वन जाता हुआ देखूं ॥ १८ ॥ हे महाराज! आप सच्ची प्रतिज्ञावाले हैं, अपने कुल शील और जन्म (वंश) की रक्षा करें, परलोक वास में सत्य वचन ही मनुष्यों का सब से बढ़कर हितकारी होता है यह तपोधन जन कहते हैं ॥१९॥

सर्ग १० (व० १२) राजा की दीनता

मूल–ततः श्रुत्वा महाराजः कैकय्या दारुणं वचः । चिन्तामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च ॥१॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां कैकेयी वाक्यतापितः । व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृगः ॥२॥ अहो धिगिति सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिपः । मोहमापे-

दित्वान्भूयः शोकोपहतचेतनः ॥३॥ चिरेण तु नृपः संज्ञां प्रति-
लभ्य सुदुःखितः । कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥४॥

टीका—तब महाराज कैकेयी के दारुण वचन को सुनकर चिन्तामें डूब गया, और कुछ देर के लिये मूर्छित होगया॥१॥इसके पीछे होश में आया, पर कैकेयी के वाक्य (के स्मरण) से तपाया हुआ वह इसतरह पीड़ित हुआ और घबरा गया जैसे व्याघ्री को देखकर हिरण॥२॥ बड़े क्रोध के साथ "शोक धिक्कार" इतना वचन कहकर राजा शोक से नष्ट हुई चेतना वाला फिर मूर्छित होगया ॥३॥ अब बड़े चिरसे होश में आकर बड़ा दुःखित हुआ राजा (लाल) नेत्र से दग्ध करते हुए की तरह क्रुद्ध होकर कैकेयी से यह वचन बोला ॥ ४ ॥

मूल—नृशंसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि । किं कृतं तव
रामेण पापे पापं मयापि वा ॥५॥+यदा ते जननीतुल्यां वृत्तिं
वहति राघवः । तस्यैव त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता ॥६॥ जीव
लोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् । अपराधं कमुद्दिश्य
त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम् ॥७॥ परा भवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम् ।
अपश्यतस्तु मे रामं नष्टं भवति चेतनम् ॥८॥

टीका—हे क्रूरे ! हे दुष्टचरित्रवाली ! हे इस कुल के नाश करनेवाली! राम ने तेरा क्या किया है, अथवा हे पापे ! मैंने क्या अपराध किया है ॥५॥ जब राम तेरे प्रति माता के तुल्य बर्ताव करता है, तब उसी के अनर्थ के लिये तू किस तरह तय्यार होगई है ॥६॥ जब सभी लोग राम के गुणों की स्तुति करते हैं, तो मैं किस अपराध को लक्ष्य रखकर प्यारे पुत्र को त्यागूंगा ॥ ७ ॥ बड़े पुत्र राम को देखकर मुझे परम प्रीति होती है, और न देखते हुए की चेतना नष्ट होती है ॥८॥

मूल–तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना । न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम् ॥९॥ तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये । अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे ॥१०॥ इक्ष्वाकूणां कुले देवि संप्राप्तः सुमहानयम् । अनयो नयसंपन्ने यत्र ते विकृता मतिः ॥११॥ नहि किंचिदयुक्तं वा विप्रियं वा पुरा मम । अकरोस्त्वं विशालाक्षि तेन न श्रद्दधाम्यहम् ॥१२॥

टीका–दुनिया सूर्य के बिना रह सके, खेती पानी के बिना रह सके, पर राम के विना मेरा जीवन देह में नहीं रह सकता है ॥९॥ सो इस निश्चय को हे पापनिश्चयवाली ! सर्वथा छोड़दे तेरे पाओं पर सिर रखता हूं, यह मेरे ऊपर कृपा कर ॥ १० ॥ नीति से सम्पन्न इक्ष्वाकुओं की कुल में हे देवि ! बहुत बड़ी अनीति आगई, जब तेरी मति इस तरह बिगड गई ॥११॥ हे विशाल नेत्रों वाली ! तूने पहले कभी मेरा अयुक्त वा विप्रिय नहीं किया है, इस लिये मैं विश्वास नहीं करता हूं ॥१२॥

मूल–तस्य धर्मात्मनो देवि वने वासं यशस्विनः । कथं रोचयसे भीरु नववर्षाणि पञ्च च ॥१३॥ रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने । तव शुश्रूषमाणस्य किमर्थं विप्रवासनम् ॥१४॥ रामो हि भरताद्भूयस्तव शुश्रूषते सदा । विशेषं त्वयि तस्मात्तु भरतस्य न लक्षये ॥१५॥ शुश्रूषां गौरवं चैव प्रमाणं वचनक्रियाम् । कस्ते भूयस्तरं कुर्यादन्यत्र पुरुषर्षभात् ॥१६॥ × सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् । विद्या च गुरुशुश्रुषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥१७॥ + न स्मराम्यप्रियं वाक्यं लोकस्य प्रियवादिनः । स कथं त्वत्कृते रामं वक्ष्यामि प्रियमाप्रियम ॥१८॥ मम वृद्धस्य कैकेयि गतान्तस्य तपस्विनः । दीनं लालप्यमानस्य कारुण्यं कर्तुमर्हसि

टीका–कि किस तरह तू हे देवि ! उस धर्मात्मा यशस्वी का हे

भीरु ! चौदह वर्ष वनवास पसंद करती है ॥१३॥ हे सुहावने नेत्रों वाली ! तेरी सेवा करने वाले उस सुन्दर राम का किस तरह तू देश का निकाला पसन्द करती है ॥१४॥ भरत से बढ़ कर राम सदा तेरी सेवा करता है, तेरे विषय में उस से भरत में कोई अधिकता नहीं देखता हूं ॥१५॥ राम से बढ़ कर और कौन तेरी सेवा, गौरव, प्रमाण और आज्ञा का मान करेगा १६ सचाई, दान, तप, त्याग, मित्रता, शुद्धि, सरलता, विद्या और गुरुओं की सेवा यह राम में सदा अटल हैं ॥१७॥ सारी दुनियां से प्रिय बोलने वाले राम का मैं एक भी अप्रिय वाक्य नहीं स्मरण करता हूं, तब किस तरह उस प्यारे राम को तेरे अर्थ अप्रिय कहूंगा ॥१८॥ मुझ वृद्ध बेचारे पर—जिस का अब अन्त काल निकट है और दीन होकर विलाप कर रहा है—हे केकयी ! तू दया करने योग्य है ॥१९॥

मूल—पृथिव्यां सागरान्तायां यत्किञ्चिदधिगम्यते । तत्तत्तं तवं दास्यामि मा चत्वां मन्युराविशेत्॥२०॥अञ्जलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते । शरणं भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत् २१

टीका—समुद्र पर्यन्त पृथिवी में जो कुछ पाया जाता है, वह सब तुझे दूंगा,मत तुझे शोक प्राप्त हो ॥२०॥ हे कैकेयि ! हाथ जोड़ता हूं और पाओं छूता हूं, तू राम की रक्षक बन, मुझे यहां अधर्म न स्पर्श करे ॥२१॥

सर्ग ११ (व० १२) राजा का विलाप

मूल—इति दुःखाभिसंतप्तं विलपन्तमचेतनम् । घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम् ॥१॥ पारं शोकार्णवस्याशु प्रार्थयन्तं पुनः पुनः । प्रत्युवाचाथ कैकेयी रौद्रा रौद्रतरं वचः ॥२॥ यदि दत्वा वरौ राजन्पुनः प्रत्यनुतप्यसे । धार्मिकत्वं कथं वीर पृथिव्यां कथ-

यिष्यसि ॥३॥ यदा समेता बहवस्त्वया राजर्षयः सह। कथयिष्यन्ति धर्मज्ञ तत्र किं प्रतिवक्ष्यसि ॥४॥ यस्याः प्रसादे जीवामि या च मामभ्यपालयत्। तस्याः कृतं मया मिथ्या कैकेय्या इति वक्ष्यसि ॥५॥ किल्बिषं त्वं नरेन्द्राणां करिष्यसि नराधिप। यो दत्त्वा वरमद्यैव पुनरन्यानि भाषसे ॥६॥

टीका—इसप्रकार दुःखसे तड़पताहुआ विलाप करताहुआ अचेतनहोकर घूर्ण होता हुआ शोक से घेराहुआ महाराज! ।१। जो शोक समुद्र से पार लगानेकी बार २ प्रार्थना कर रहा है—उसको क्रूर कैकेयी क्रूरतर वचन बोली । २ । यदि वर देके हे राजन् आप फिर पश्चाताप करते हैं, तो हे वीर पृथिवी में अपना धार्मिकपन कैसे कहेंगे । ३ । जब बहुत राज ऋषि तेरे साथ मिलकर (मेरे वरदान के विषय में) पूछेंगे, तो आप क्या उत्तर देंगे । ४ । क्या यह कहेंगे कि जिसके अनुग्रह से मैं जीता हूं,जिसने मुझे बचाया, उस कैकेयी को दियाहुआ वरदान मैंने मिथ्या किया है । ५ । (अपने वंश के) राजों को हे राजन् आप अपयश का टीका लगा जाएंगे, जो वर देकर अभी फिर उलटा कहने लगे हैं ॥ ६ ॥

मूल—भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वानृतम्। यत् त्वयासंश्रुतं मह्यं तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥७॥ अहं हि विषमद्यैव पीत्वा बहु तवाग्रतः। पश्यतस्ते मरिष्यामि रामो यद्यभिषिच्यते ॥८॥ भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप। यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात् ॥९ एतावदुक्त्वा वचनं कैकयी विरराम ह । तां हि वज्रसमां वाचमाकर्ण्य हृदयाप्रियाम् ॥१०॥ दुःखशोकमयीं घोरां राजा न सुखितोऽभवत्। स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम् ११ ध्यात्वा रामेतिनिःश्वस्य च्छिन्नस्तरुरिवापतत्। दीनयाऽऽतुरया वाचा इति होवाच कैकयीम् ॥१२॥ अनर्थमिममर्थाभंकेन

त्वमुपदेशिता । शीलव्यसनमेतत्ते नाभिजानाम्यहम् पुरा ॥१३॥

टीका—चाहे धर्म हो वा अधर्म, सत्य हो वा झूठ, जो आपने मेरे लिये प्रतिज्ञा की है, उसका उल्लंघन नहीं होसक्ता है । ७ । मैं आज ही आप के सामने बहुत विष पीकर आपके देखते २ मरूंगी, यदि राम को तिलक दियागया ।८। हे राजन् ! तेरे सामने अपनी और भरत की शपथ करता हूं, कि राम के निकालने के सिवाय किसी और बात से सन्तुष्ट नहीं हूंगी । ९ । इतना वचन कहकर कैकेयी चुप होगई उस वज्रमयी, हृदय की अप्रिय, दुःख शोक से भरी हुई, वाणी को सुनकर राजा बड़ा दुःखी हुआ वह रानी के निश्चय को और भयंकर शपथ को किया हुआ । १०,११ । ध्यान करके "राम" ऐसा कह लम्बी आह भर के कटेहुए वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पड़ा और दीन आतुरवाणी से कैकेयी से यह बोला ।१२। अर्थ की तरह प्रतीत होने वाला यह अनर्थ तुझे किसने सिखलाया है, यह तेरा भ्रष्ट चरित्र मैं पहले का नहीं जानता हूं ।१३।

मूल—कुतो वा ते भयं जातं या त्वमेवविधं वरम् । राष्ट्रे भरतमासीनं वृणीषे राघवं वने ॥ १४ ॥ विरमैतेन भावेन त्वमेतेनानृतेन वा । यदि भर्तुः प्रियं कार्यं लोकस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥ न कथंचिदृते-रामाद्भरतो राज्यमावसेत् । रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्॥ १६ ॥ किं मां वक्ष्यन्ति राजानो नाना दिग्भ्यः समागताः । बालो बतायमैक्ष्वाकश्चिरं राज्यमकारयत् ॥ १७ ॥ यदा हि बहवो वृद्धा गुणवन्तो बहुश्रुताः । परिप्रक्ष्यन्ति काकुत्स्थं वक्ष्यामि किमहं तदा ।१८। कैकेय्या क्लिश्यमानेन पुत्रःप्रव्राजितो मया। यदि सत्यं ब्रवीम्येतत्तदसत्यं भविष्यति ॥१९॥ किं मां वक्ष्यति कौसल्या राघवे वनमास्थिते । किं चैनां प्रतिवक्ष्यामि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ॥२०॥

टीका—अथवा किससे तुझे ऐसा भय हुआ है, जो तू इस प्रकार का

वर मांगती है, कि भरत राज्य पर बैठे और राम वन में जाए१४ यदि तुझे भर्ता का, लोकका, और भरत का प्रिय करना है, तो इस भाव से अथवा इस झूठ से अलग हो॥१५॥राम के विना भरत किसी तरह राज्य नहीं करेगा, उसको मैं राम से भी बढ़ कर धर्म से बलवान समझता हूं ॥१६॥ नाना दिशाओं से आए हुए राजे मुझे क्या कहेंगे, कि यह बालबुद्धि दशरथ किस तरह चिरतक राज्य करता रहा अहो खेद है ॥१७॥ जब बहुत से गुणी बहुश्रुत वृद्ध राम के विषय में पूछेंगे, तब मैं क्या कहूंगा ॥१८॥ कैकेयी से पीड़ित हुए मैंने राम को निकाला है, यदि यह सत्य कहता हूं, तो वह (राम को राज्य देने का वचन) झूठ हो जाएगा ॥१९॥ राम के वन जाने पर कौसल्या मुझे क्या कहेगी और मैं ऐसा विप्रिय करके उस को क्या उत्तरदूंगा ॥

मूल–विप्रकारं च रामस्य संप्रयाणं वनस्य च। सुमित्रा प्रेक्ष्य वै भीता कथं मे विश्वसिष्यति॥२१॥कृपणं बत वैदेही श्रोष्यति द्वयम प्रियम्। मां च पञ्चत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम्॥२२ अनार्य इति मामार्याः पुत्रविक्रायकं ध्रुवम् । धिक्करिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मणं यथा ॥ २३ ॥ रममाणस्त्वया सार्धं मृत्युं त्वां नाभिलक्षये । बालो रहसि हस्तेन कृष्णसर्पमिवास्पृशम् ॥ २४ ॥ तं तु मां जीवलोकोऽयं नूनमाक्रोष्टुमर्हति । मयाह्यपितृकः पुत्रः स महात्मा दुरात्मना ॥

टीका–राम की (राज्य-) हानि और वन जाना देख कर डरी हुई सुमित्रा कैसे मेरे ऊपर विश्वास करेगी॥२१॥ हा खेद जानकी यह दो अप्रिय सुनेगी, मुझे मृत्यु को प्राप्त हुआ और राम को वन गया ॥२२॥ गली बाजारों में आर्यजन मुझे पुत्र का बेचने वाला (पुत्र के मूल्य से स्त्री सुख का खरीदने वाला) जान अनार्य कह कर धिक्कारेंगे, जैसे शराब पीने वाले ब्राह्मण को

धिक्कारते हैं ॥२३॥ तेरे साथ आनन्द मनाते हुए मैंने तुझे अपना मृत्यु नहीं लखा, बालक की तरह एकान्त में हाथ से काले नाग को स्पर्श किया ॥२४॥ वह महात्मा मुझ दुरात्मा पिता से सच मुच विना पिता के है, ऐसे पिता पर सारी दुनियां की थूछाड़ होनी योग्य है ॥२५॥

मूल—वेदैश्च ब्रह्मचर्यैश्च गुरुभिश्चोपकर्शितः। भोगकाले महत्कृच्छ्रं पुनरेव प्रपत्स्यते ॥ २६ ॥ नालं द्वितीयं वचनं पुत्रो मां प्रतिभाषितुम्। स वनं प्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येव वक्ष्यति ॥ २७ ॥ यदि मे राघवः कुर्याद्वनं गच्छेति चोदितः। प्रतिकूलं प्रियं मे स्यान्न तु वत्सः करिष्यति ॥ २८ ॥ कौसल्यां च सुमित्रां च मां च पुत्रैस्त्रिभिः सह। प्रक्षिप्य नरके सा त्वं कैकेयि सुखिता भव॥२९

टीका—वेद के पढ़ने, ब्रह्मचर्य व्रतों के पालने और गुरुवास से दुबला हुआ वह अब भोग काल में बड़े क्लेश में जा पडेगा।२६। पुत्र मुझे दूसरी बात कह नहीं सकेगा, वन को जा, ऐसा कहने पर बहुत अच्छा ही कहेगा ॥२७॥ यदि वन को जा, ऐसा कहने पर राम मेरे उलट करे,तो मेरा प्रिय होजाए,पर वत्स(बरखुर्दार) ऐसा नहीं करेगा ॥२८॥ कौसल्या को सुमित्रा को और मुझ को हे कैकेयि ! नरक में फैंक कर तू सुखी हो ॥२९॥

मूल—प्रियं चेद्भरतायैतद्रामप्रव्राजनं भवेत्। मा स्म मे भरतः कार्षीत्प्रेतकृत्यं गतायुषः ॥ ३० ॥ मृते मयि गते रामे वनं पुरुषपुंगवे। सेदानीं विधवा राज्यं सपुत्रा कारयिष्यसि ॥ ३१॥ न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं विनात्मजेनात्मवतां कुतः रतिः। ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि स्पृशामि पादावपि ते प्रसीद मे ॥ ३२ ॥ स भूमिपालो विलपन्ननाथवत्स्त्रिया गृहीतो हृदयेऽतिमात्रया। पपात देव्याश्चरणौ प्रसारितावुभावसंप्राप्य यथातुरस्तथा ॥ ३३ ॥

टीका—यह राम का निकालना यदि भरत को प्रिय हो, तो मेरे मरने पर वह मेरा प्रेतकृत्य (अन्त्येष्टि) मत करे ॥३०॥ मेरे मरने पर और पुरुषश्रेष्ठ राम के वन चले जाने पर तू अब विधवा होकर पुत्र सहित राज्य करेगी ॥३१॥ बिना पुत्र के मेरा जीवन ही नहीं, फिर सुख कहां, बिना पुत्र के जीते हुए को खुशी कहां, हे देवि तुझे मेरा अहित नहीं करना चाहिए, मैं तेरे पाओं पकड़ता हूं, मेरे ऊपर कृपा कर ॥३२॥ इस प्रकार वह भूमिपाल अनाथ की तरह विलाप करता हुआ मर्यादा उलांघी हुई स्त्री से हृदय में पकडा हुआ उस के फैलाए दोनों पाओं को बिनछुए (वहां तक न पहुंच कर) आतुर की तरह गिरा ॥

सर्ग १२ (व० १३, १४, १५) राजभवन में राम को बुलवाना

मूल—तथा विलपतस्तस्य परिभ्रमितचेतसः । अस्तमभ्यागमत्सूर्यो रजनीचाभ्यवर्तत ॥१॥ सा त्रियामा तथार्तस्य चन्द्रमण्डलमण्डिता । राज्ञो विलपमानस्य न व्यभासत शर्वरी ॥२॥ तथैवोष्णं विनिःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः । विललापार्तवद्दुःखं गगनासक्तलोचनः ॥३॥ ततः प्रभातां रजनीमुदिते च दिवाकरे । पुण्यनक्षत्रयोगे च मुहूर्ते च समागते ॥४॥ वसिष्ठो गुणसम्पन्नः शिष्यैः परिवृतस्तदा । उपगृह्याशु सम्भारान्प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥५॥

टीका—इस तरह विलाप करते हुए और घूमती हुई चेतना वाले को सूर्य अस्त होगया और रात्रि प्रवृत्त हुई ॥१॥ ऐसा आर्त होकर विलाप करते हुए राजा को चन्द्रमण्डल से भूषित वह रात्रि शोभायमान न हुई ॥२॥ वैसे ही लम्बे २ सांस भर कर वृद्ध दशरथ राजा आकाश में नेत्र लगा कर आर्त की तरह दुःखी विलाप करता रहा ॥३॥ तब रात के प्रभात होने पर और सूर्योदय के निकट आने पर पुण्य नक्षत्र योग और

(अभिषेक के) मुहूर्त के निकट आने पर ॥४॥ गुणवान् भगवान् वसिष्ठ शिष्यों समेत उस समय (अभिषेक के) संभार लेकर उस उत्तम पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥५॥

मूल—सिक्तसंमार्जितपथां पताकोत्तमभूषिताम् । विचित्रकुसुमाकीर्णां नानास्रग्भिर्विराजिताम् ॥६॥ तां पुरीं समतिक्रम्य पुरन्दरपुरोपमाम् । ददर्शान्तःपुरं श्रीमान्नानाध्वजगणायुतम् ॥७॥ पौरजानपदाकीर्णं ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तदन्तःपुरमासाद्य व्यतिचक्राम तं जनम् ॥८॥ वसिष्ठःपरमप्रीतः परमर्षिभिरावृतः । स त्वपश्यद्विनिष्क्रान्तं सुमन्त्रं नाम सारथिम् ॥९॥ तमुवाच महातेजाः सूतपुत्रं विशारदम् । वसिष्ठः क्षिप्रमाचक्ष्व नृपतेर्मामिहागतम्॥१०॥

टीका—जिस के राजपथ शांधे हुए और सुगन्धित जलों से छिड़के हुए हैं, जो सुहावनी झंडियों से सजी हुई है, विचित्र फूलों से भरी हुई, अनेक प्रकार की मालाओं से शोभायमान है ॥६॥ इन्द्रपुर के तुल्य उस पुरी में से लंघकर उसने श्रेष्ठ अंतःपुर को देखा, जो अनेक द्विजगणों से युक्त, पुर और देश के लोगों से पूर्ण, ब्राह्मणों से शोभायमान है । महर्षियों से युक्त, परमप्रसन्न वसिष्ठ उस अन्तः पुर में पहुंच उन लोगों से आगे चला गया और वहां बाहर निकलते हुए सारथि को देखा ७,८ ९ ॥ महातेजस्वी वसिष्ठ ने उस निपुण सूतपुत्र को कहा, राजा को जल्दी जाकर यहां मेरा आना बतलाओ ॥१०॥

मूल—त्वरयस्व महाराजं यथा समुदितेऽहनि । पुष्ये नक्षत्रयोगे च रामो राज्यमवाप्नुयात् ॥११॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सूतपुत्रो महाबलः । स्तुवन्नृपतिशार्दूलं प्रविवेश निवेशनम् ॥१२॥ तं तु पूर्वोदितं वृद्धं द्वारस्था राजसंमतम् । न शेकुरभिसंरोद्धुं राज्ञः प्रिय-

चिकीर्षवः ॥१३॥ स समीपस्थितो राज्ञस्तामवस्थां मजज्ञिवान् । वाग्भिः परमतुष्टाभिरभिष्टोतुं प्रचक्रमे ॥१४॥

टीका—महाराज को जल्दी कराओ ताकि पुण्य नक्षत्र योग में राम राज्य को प्राप्त हो ॥११॥ उस महात्मा के इस वचन को सुन कर सूतपुत्र राजवर की स्तुति करता हुआ प्रासाद में में प्रविष्ट हुआ ॥१२॥ (इसे कभी मत रोको ऐसा जिस के विषय में) पहले कहा हुआ है, उस के प्यारे वृद्ध मन्त्री को राजा का प्रिय चाहने वाले द्वारपाल नहीं रोक सके ॥१३॥ वह राजा के समीप स्थित हो, उस अवस्था को न जानता हुआ, परम प्रसन्न वाणियों से स्तुति करने लगा ॥१४॥

मूल—ततस्तु राजा तं सूतं सन्नहर्षः सुतं प्रति । शोकरक्तेक्षणः श्रीमानुद्वीक्ष्योवाच धार्मिकः ॥१५॥ यदा वक्तुं स्वयं दैन्यान्न शशाक महीपतिः । तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ॥१६॥ सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः । प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः ॥१७॥ तद्गच्छ त्वरितं सूतं राजपुत्रं यशस्विनम् । राममानय भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा ॥१८॥ अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि । तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत् ॥ १९॥

टीका—तब पुत्र के विषय में दूर हुए हर्षवाला, शोक से लाल नेत्रों वाला, श्रीमान् राजा सूत की ओर देखकर बोला ॥१५ ॥ पर जब दीनता से राजा स्वयं न कह सका, तब मन्त्र के जाननेवाली कैकेयी सुमन्त्र से बोली ॥ १६ ॥ हे सुमन्त्र राजा राम के हर्ष से उत्सुक हुआ रात भर जागने से थका हुआ अब नींद के बस आगया है ॥१७॥ सो जल्दी जाकर तू यशस्वी राजपुत्र राम को लेआ, तेरा भला हो, इसमें विचार मत करो।१८।

'राजा के वचन को न सुनकर हे भामिनि ! कैसे जाऊं"—मन्त्री के इस वाक्य को सुनकर, राजा मन्त्री से बोला ॥ १९ ॥

मूल--सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम् । स मन्यमानः कल्याणं हृदयेन ननन्द च॥२०॥स राजवचनं श्रुत्वा शिरसा प्रति पूज्य तम् । निर्जगाम नृपावासान्मन्यमानः प्रियं महत् ॥ २१ ॥ प्रपन्नो राजमार्गं च पताकाध्वजशोभितम् । हृष्टःप्रमुदितः सूतो जगामाशु विलोकयन् ॥२२॥ स सूतस्तत्र शुश्राव रामाधिकरणाः कथाः । अभिषेचनसंयुक्ताः सर्वलोकस्य हृष्टवत् ॥ २३ ॥ ततो ददर्श रुचिरं कैलाससदृशोपमम् । रामवेश्म सुमन्त्रस्तु शक्र-वेश्मसमप्रभम् ॥ २४ ॥

टीका—हे सुमन्त्र राम को देखूंगा,उस सुन्दर को जल्दी ला(यह सुन) वह कल्याण समझता हुआ हृदय से बड़ा प्रसन्न भया॥२०॥ वह राजा के वचन को सुनकर और सिर से राजा को पूज कर बड़ा प्रिय समझता हुआ राजमन्दिर से बाहर आया ॥२१॥ वह झण्डे और झण्डियों से शोभायमान राजमार्ग में प्रविष्ट होकर हृष्ट प्रमुदित हो शोभा देखता हुआ जल्दी जल्दी गया ॥२२॥ रस्ते में सूत ने सब लोगों को खुशी २ राम के अभिषेक की बात करते हुए सुना ॥२३॥ इसके पीछे कैलास की चोटी के तुल्य इन्द्रभवन के सदृश रामभवन को देखा ॥ २४ ॥

सर्ग १३ [अ० १६] राम का राज भवन को जाना

मूल—स तदन्तःपुरद्वारं समतीत्य जनाकुलम् । प्रविविक्तां ततः कक्ष्यामाससाद पुराणवित् ॥ १॥ प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यन्तरं पितुः । तत्रैवानाययामास राघवः प्रियकाम्यया ॥ २ ॥ तं वैश्रवणसंकाशमुपविष्टं स्वलंकृतम् । ददर्श सूतः पर्यङ्के सौवर्णे

सोत्तरच्छदे ॥ ३ ॥ स्थितया पार्श्वतश्चापि वालव्यजन हस्तया। उपेतं सीतया भूयश्चित्रया शशिनं यथा ॥ ४ ॥ तं तपन्तमिवादित्यमुपपन्नं स्वतेजसा। ववन्दे वरदं वन्दी विनयज्ञो विनीतवत् ॥ ५ ॥

टीका—वह पुराण का जानने वाला लोगों से भरे हुए अन्तःपुर के द्वार को लंघकर सब से अन्तिम ड्योढ़ी पर आया ॥१॥ (द्वार पालों से) जितलाए हुए पिता के अन्तरङ्ग सूत को (आया) जानकर (पिता के) प्रिय करने की इच्छा से राम उसे वहीं बुलवाता भया ॥२॥ सूत ने बहुमूल्य वस्त्र वाले सुनहरी पलंग पर कुबेर के तुल्य सज धजकर बैठे हुए, चंवर हाथ में लेकर पास स्थित सीता से युक्त-राम को बार २ देखा, जैसे चित्रा सहित चन्द्र को (लोग बार २ देखते हैं) ॥३,४॥ अपने तेज से युक्त, सूर्य की तरह तपते हुए उस वरदाता की विनय के जानने वाले सुमन्त्र ने विनीत की तरह स्तुति की ॥ ५ ॥

मूल—प्राञ्जलि स्तु सुखं पृष्ट्वा विहारशयनासने। राजपुत्रमुवाचेदं सुमन्त्रो राजसत्कृतः ॥ ६ ॥ कौशल्या सुप्रजा राम पिता त्वां द्रष्टुमिच्छति। महिष्या सह कैकय्या गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु संहृष्टो नरसिंहो महाद्युतिः। ततः संमानयामास सीतामिदमुवाच ह ॥८॥ + देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे। मन्त्रयेते ध्रुवं किञ्चिदभिषेचनसंहितम् ॥९॥+लक्षयित्वा ह्यभिप्रायं प्रियकामा सुदक्षिणा। संचोदयति राजानं मदर्थं मदिरेक्षणे ॥१०॥ हन्त शीघ्रमितो गत्वा द्रक्ष्यामि च महीपतिम्। सह त्वं परिवारेण सुखमास्स्व रमस्व च ॥ ११ ॥

टीका—राजमानित सुमन्त्र हाथ जोड़ और गति स्थिति और

निद्रा के विषय में कुशल पूछकर राजपुत्र से यह बोला ॥ ६ ॥ कौसल्या तुझ से नेक सन्तान वाली है हे राम ! रानी कैकेयी सहित पिता आप को देखना चाहते हैं, वहां चलिए, विलम्ब न हो, ॥७॥ ऐसे कहा हुआ वह महातेजस्वी नरसिंह प्रसन्न हो उस वचन का सन्मान करता भया और सीता से यह बोला ॥८॥ हे देवि ! देव और देवी (राजा और रानी) मिल कर निःसंदेह मेरे अभिषेक की बाबत मन्त्रणा कर रहे हैं ॥९॥ हे मस्त नेत्रों वाली ! राजा के अभिप्राय को जान कर मेरा प्रिय चाहने वाली बड़ी सरल कैकेयी निःसंदेह मेरे लिए प्रेर रही है ॥१०॥ अहो मैं जल्दी यहां से जाकर राजा के दर्शन करता हूं, तू परिवार समेत यहां सुख से बैठ और आनन्द मना ।११।

मूल–पतिसंमानिता सीता भर्तारमसितेक्षणा । आ द्वारमनुवव्राज मङ्गलान्यभिदध्युषी ॥ १२ ॥ अथ सीतामनुज्ञाप्य कृतकौतुक-मङ्गलः । निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात् ॥ १३ ॥ लक्ष्मणं द्वारि सोऽपश्यत्प्रह्वाञ्जलिपुटं स्थितम् । अथ मध्यमकक्ष्यायां समागच्छत्सुहृज्जनैः ॥ १४ ॥ स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य च । ततः पावकसंकाशमारुरोह रथोत्तमम् ॥ १५ ॥

टीका–पति से संमानित हुई काले नेत्रों वाली सीता मङ्गल चिन्तन करती हुई द्वार तक भर्ता के पीछे आई ॥१२॥ (जब सीता से) राम के अभिषेक के उत्सव का मंगल किया गया, तो राम सीता से अनुज्ञा लेकर बाहर निकला ॥१३॥ उस ने हाथ जोड़ कर द्वार पर खड़े हुए लक्ष्मण को देखा, तब मध्य की डेवढ़ी में दूसरे सुहृज्जनों के साथ मिला ॥१४॥ वह सारे अर्थियों को देख, मिल, आनन्दित करके अग्नितुल्य (दीप्यमान) उत्तम रथ पर चढ़ गया ॥१५॥

मूल—चित्रचामरपाणिस्तु लक्ष्मणो राघवानुजः। जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः ॥१६॥ ततो वादित्रशब्दाश्च स्तुतिशब्दाश्च वन्दिनाम्। सिंहनादाश्च शूराणां ततः शुश्रुविरे पथि ॥१७॥ हर्म्यवातायनस्थाभिःभूषिताभिः समन्ततः। कीर्यमाणाः सुपुष्पौघैर्ययौ स्त्रीभिररिंदमः ॥१८॥ नूनं नन्दति ते माता कौसल्या मातृनन्दन। पश्यन्ती सिद्धयात्रं त्वां पित्र्यं राज्यमवास्थितम् १९ सर्वसीमन्तिनीभ्यश्च सीता सीमन्तिनी वरा। अमन्यन्त हि ता नार्यो रामस्य हृदयप्रियाम् ॥२०॥ तया सुचरितं देव्या पुरा नूनं महत्तपः। रोहिणीव शशाङ्केन रामसंयोगमाप या ॥२१॥

टीका—राम का छोटा भाई लक्ष्मण छत्र चंवर हाथ में लेकर पीछे रथ पर बैठ कर भाई भाई का रक्षक हुआ ॥१६॥ तब मार्ग में बाजों के शब्द, वन्दियों के स्तुति शब्द और शूरों के सिंह नाद सुनाई देने लगे ॥१७॥ मन्दिरों के झरोकों में स्थित सज धज कर आई हुई स्त्रियों से की हुई पुष्पों की बिखेर सिर पर धारता हुआ वह शत्रुओं का जीतने वाला स्त्रियों के यह वचन सुनता हुआ गया ॥१८॥ हे मातृनन्दन! आज तेरी माता कौसल्या के आनन्द है जो तेरी इस यात्रा को-जिस से तू पित्र्य राज्य पर अवस्थित होगा, सफल देखती है ॥१९॥ सब नारियों में से सीता उत्तम नारी है, जो राम के हृदय की प्यारी है, ऐसा वह स्त्रियें मानती भई ॥२०॥ उस देवी ने पूर्व जन्म में निःसंदेह बड़ा भारी तप किया है, जो राम से संयुक्त हुई है, जैसे रोहिणी चन्द्र से ॥२१॥

सर्ग १४ (व० १७) राजपथ की शोभा में से राज भवन में पहुंचना

मूल—आशीर्वादान् बहूञ्छृण्वन् सुहृद्भिः समुदीरितान्। यथार्ह

चापि संपूज्य सर्वानेव नरान्ययौ ॥१॥ पितामहैराचरितं तथैव प्रपितामहैः । अद्योपादाय तं मार्गमभिषिक्तोऽनुपालय ॥२॥ यथा स्म लालितः पित्रा यथा पूर्वैः पितामहैः । ततः सुखतरं रामे वत्स्यामः सति राजनि॥३॥ ततो हि नः प्रियतरं नान्यत्किंचिद्भविष्यति यथाभिषेको रामस्य राज्येनामिततेजसः ॥४॥

टीका—सुहृदों से कहे हुए आशीर्वाद सुनता हुआ और सभी लोगों की यथा योग्य पूजा करता हुआ गया ।१। (यह आशीर्वाद कि) जिस मार्ग पर तेरे दादे परदादे चले हैं, उस मार्ग को पकड़ कर अभिषिक्त हुआ तू अब प्रजाओं का पालन कर ।२। जैसे हम राम के पिता से और जैसे उस के बड़े दादों से पालन किये गए हैं, राम के राजा होने पर उस से बढ़ कर सुखी बसेंगे ३॥ इस से बढ़ कर हमारे लिए और कोई प्रिय नहीं होसकेगा जैसे अपरिमित तेजवाले राम का राज्य से अभिषेक ॥४॥

मूल—एताश्चान्याश्च सुहृदा मुदासीनः शुभाः कथाः। आत्मसंपूजनीः श्रृण्वन्ययौ रामो महापथम् ॥५॥ नहि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात् । नरः शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे ॥६॥ + यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति । निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ॥७॥ सर्वेषु स हि धर्मात्मा वर्णानां कुरुते दयाम् । चतुर्णां हि वयःस्थानां तेन ते तमनुव्रताः ॥८॥ तत्पृथिव्यां गृहवरं महेन्द्रसदनोपमम् । राजपुत्रः पितुर्वेश्म प्रविवेश श्रिया ज्वलन् ॥९॥

टीका—इत्यादि सुहृदों से अपना मान करने वाली शुभ कथाएं उदासीन (निर्विकार) होकर सुनता हुआ राजमार्ग में से गया ॥५॥ राम के दूर चले जाने पर भी कोई भी पुरुष उस

नरोत्तम से मन और नेत्रों को नहीं खींच सकता था।६।उस समय जो राम को नहीं देखता है वा जिस को राम नहीं देखता है वह लोक में निन्दित हुआ ही बसता है, उस को अपना आत्मा भी धिकारता है।७। जिस लिये वह धर्मात्मा धर्म में स्थिर चारों वर्णों के लोगों पर दया करता है, इस से वह सभी इस के पीछे चलने वाले हैं ॥८॥ इस तरह वह महेन्द्रभवन के तुल्य राजभवन में पहुंच कर शोभा से जाज्वल्यमान हुआ राजपुत्र पिता के भवन में प्रविष्ट हुआ॥९॥

मूल—स कक्ष्या धन्विभिर्गुप्तास्तिस्रोऽतिक्रम्य वाजिभिः। पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नरोत्तमः ॥ १० ॥ स सर्वाः समतिक्रम्य कक्ष्या दशरथात्मजः। संनिवर्त्य जनं सर्वं शुद्धान्तःपुरमभ्यगात ॥ ११ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा जनः स सर्वो मुदितो नृपात्मजे। प्रतीक्षते तस्य पुनर्विनिर्गमं यथोदयं चन्द्रमसः सरित्पतिः

टीका—धनुर्धारियों से रक्षा की हुई तीन डेवढ़ियों को घोड़ों से लंघकर वह नरोत्तम अगली दो डेवढियें पैदल गया ॥ १० ॥ वह दशरथपुत्र जब सारी डेवढियें लंघ गया, तो और सबको लौटा कर तब शुद्ध अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ ॥ ११ ॥ जब वह राजपुत्र पिता के निकट प्रविष्ट हुआ, तब सब लोग प्रमुदित भए उस के फिर निकलने की बाट देखने लगे, जैसे समुद्र चन्द्रमा के उदय की बाट देखता है ॥१२॥

सर्ग १९ (व० १८) वनवास की आज्ञा

मूल—स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे। कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता ॥१॥ स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्। ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः ॥२॥+ रामेत्युक्त्वा तु वचनं वाष्पपर्याकुलेक्षणः। शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभा-

पितुम् ॥३॥ तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम् । रामोऽपि भय-
मापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ॥ ४ ॥

टीका—रामने सूखते हुए मुख से दीन पिता को शुभ आसन पर कैकेयी समेत बैठा हुआ देखा ॥१॥ उसने एकाग्रचित्त हो विनीत वत् पहले पिता के चरणों को अभिवादन करके फिर कैकेयीके चरण बन्दना किए ॥२॥ "राम" इतना बचन कहकर आंसुओंसे डुबडुबाते नेत्रों वाला नरपति दीन हुआ फिर न देख सका न बात कह सका ॥३॥ राजा के उस अपूर्व भयावने रूप को देखकर राम भी भय को प्राप्त हुआ, जैसे कोई पाओं से सांप को छूकर (एक दम डर जाता है) ॥ ४ ॥

मूल—इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसंतापकर्शितम् । निःश्वसन्तं महा-
राजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥५॥ ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव
सागरम् । उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥६॥ अचिन्त्य-
कल्पं नृपतेस्तं शोकमुपधारयन् । बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि
॥७॥+ चिन्तयामास चतुरो रामः पितृहिते रतः । किंस्विदद्यैव
नृपतिर्न मां प्रत्यभिनन्दति ॥८॥+ अन्यदा मां पिता दृष्ट्वा
कुपितोऽपि प्रसीदति । तस्य मामद्य संप्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते ।
॥९॥ स दीन इव शोकार्तो विषण्णवदनद्युतिः । कैकेयीमभिवाद्यैव
रामो वचनमब्रवीत् ॥१०॥+ कच्चिन्मया नापराद्धमज्ञानाद्येन
मे पिता । कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय ॥११॥+

टीका—उसने महाराज को अप्रसन्न इन्द्रियों के साथ शोक और संताप से दुर्बल हुआ, ठण्डे सांस लेता हुआ, दुःखिया घबराए हुए चित्तवाला देखा ॥५॥ जैसे कि क्षोभ में न आने योग्य समुद्र बड़ी २ लहरों की पंक्तियों से क्षोभ में आया हुआ हो,

वा जैसे सूर्य ग्रसा हुआ हो, या जैसे किसी ऋषि से झूठ बोला गया हो ॥६॥ चिन्ता में न आने वाले पिता के उस शोक को धारण करता हुआ राम पर्व (पूर्णमासी) में समुद्र की तरह बड़ा क्षुब्ध हुआ ॥७॥ तब पितृहित में रत चतुर राम सोचता भया, हैं! यह क्या आज ही नरपति मेरे प्रति प्रसन्न नहीं हुआ है ॥ ८ ॥ आगे तो पिता कुपित हुआ भी (मुझे देख) प्रसन्न हो जाया करता है, उस को ही आज मेरी ओर देख कर यह कैसा क्लेश हो रहा है ॥९॥ वह राम शोक से पीडित हुआ, मुरझाए हुई मुख की शोभा वाला, कैकेयी को अभिवादन कर दीन की तरह यह वचन बोला ॥१०॥ क्या मैंने अज्ञान से कोई अपराध तो नहीं किया, जिस से मेरा पिता कुपित हुआ है, वह मुझे कह, और तू ही इस को प्रसन्न करा ॥११॥

मूल—शारीरो मानसो वापि कच्चिदेनं न बाधते। संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥१२॥+कच्चिन्न किञ्चिद्भरते कुमारे प्रियदर्शने। शत्रुघ्ने वा महासत्वे मातॄणां वा ममाशुभम् ॥१३॥+अतोषयन्महाराजमकुर्वन्वा पितुर्वचः। मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥१४॥+यतो मूलं नरः पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः। कथं तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥१५॥

टीका—क्या कोई शरीर सन्ताप वा मानस शोक तो इसे पीड़ा नहीं दे रहा, क्योंकि सुख सदा दुर्लभ है ॥१२॥ क्या कोई प्रिय दर्शन वाले कुमार भरत वा बडे दिलेर शत्रुघ्न वा मेरी माताओं के विषय में तो को अनिष्ट नहीं हुआ है ॥१३॥ महाराज को सन्तुष्ट न करता हुआ, वा पिता के वचन को न करता हुआ, मैं (असन्तुष्ट करने वा वचन के न करने से) राजा को

कुपित करके मुहूर्त भी जीना नहीं चाहता हूं ॥१४॥ जिस मूल से पुरुष अपना जन्म देखे, उस प्रत्यक्ष देवता के होते हुए कैसे उस में अनुकूलता से न बर्ते ॥१५॥

मूल—एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना । उवाचेदं सुनिर्लज्जा धृष्टमात्महितं वचः ॥१६॥+न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किञ्चन । किञ्चिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नानुभाषते ॥१७॥ +प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते । तदवश्यं त्वया कार्यं यदनेनाश्रुतं मम ॥१८॥ एष मह्यं वरं दत्त्वा पुरा मामभिपूज्य च । स पश्चात्तप्यते राजा यथान्यः प्राकृतस्तथा ॥१९॥ अतिसृज्य ददानीति वरं मम विशां पतिः । स निरर्थं गतजले सेतुं बन्धितुमिच्छति ॥२०॥

टीका—जब महात्मा राम ने कैकेयी को ऐसे कहा, तब वह बड़ी निर्लज्ज होकर अपना हित वचन ढीठता से बोली॥१६॥हे राम राजा न कुपित हुआ है न इसे कोई दुःख विपद् है, किन्तु कुछ इस के मनका अभिप्राय है, जो तेरे भय से नहीं कहता है ॥ १७ ॥ तुझ प्रिय को अप्रिय कहने के लिये इसकी वाणी प्रवृत्त नहीं होती है, पर तुझे वह अवश्य करना चाहिये, जिसकी इसने मेरे साथ प्रतिज्ञा की है ॥१८॥ यह मुझे पहले वर दान से पूजकर—राजा होकर अब पश्चात्ताप कर रहा है, जैसे कोई और सामान्य पुरुष हो ॥१९॥ देता हूं यह मेरे साथ प्रतिज्ञा करके अब राजा जल के चले जाने पर व्यर्थ बंद बांधता है (वर पहले देचुका हुआ है, अब उसको हटाने की चिन्ता व्यर्थ है) ॥ २० ॥

मूल—सत्यमूलमिदं राम विदितं च सतामपि । तत्सत्यं न त्यजेद्राजा कुपितस्त्वत्कृते यथा ॥२१॥ यदि तद्वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वा-

शुभम्। करिष्यासि ततःसर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम्॥२२॥+ यदि त्वभीहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते। ततोऽहमभिधास्यामि नह्येष त्वयि वक्ष्यति ॥२३॥+एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् । उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसंनिधौ ॥२४॥+ अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः। अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥२५॥+भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे। नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥२६॥

टीका—हे राम यह सब सत्पुरुषों को विदित ही है, कि यह जगत् सत्यमूलक है, सो उस सत्य को राजा तेरे लिये (मेरेऊपर) कुपित होकर जैसे न त्यागे वैसे कर (पिता को अधर्म से बचाना तेरा धर्म है) ॥२१॥ यदि राजा शुभ वा अशुभ जो कहे, उसे तू करे, तब फिर मैं सब कहूंगी ॥२२॥ यदि राजा से कहा हुआ तुझ में विफल न जाए, तो मैं कहूंगी, (तेरा अप्रिय है इसलिये) यह आप तुझे नहीं कहेगा ॥२३॥ कैकेयी से कहे हुए इस वचन को सुनकर दुःखित हुआ राम राजा के सामने उस देवी से यह कहने लगा ॥२४॥ अहोधिक् हे देवि ! तू मुझे ऐसा वचन(पिता की आज्ञा पालन में शंका वाला वचन) कहने योग्य नहीं है, मैं राजा के कहने से आग में कूद सकता हूं ॥ २५ ॥ तीक्ष्ण विष खा सक्ता हूं, और समुद्र में डूब सक्ता हूं, जब गुरु, पिता, राजा, हितैषी से आज्ञा दिया जाऊं ॥ २६ ॥

मूल—+तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् । करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥२७॥ तमार्जवसमायुक्तमनार्यासत्यवादिनम् । उवाच रामं कैकेयी वचनं भृशदारुणम् ॥ २८ ॥ पुरा दैवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव। रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन

महारणे ॥२९॥ तत्र मे याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम्। गमनं दण्डकारण्ये तव चाद्यैव राघव ॥३०॥ यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि। आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ॥ ३१ ॥

टीका—हे देवि ! वह वचन कहो जो राजाको अभीष्ट है, करूंगा प्रतिज्ञा करता हूं, राम दो बार नहीं कहता है (जो कहागया वह कहा ही गया, उसके विरुद्ध फिर नहीं कह सकता है)॥२७॥ सरल स्वभावयुक्त उस सत्यवादी राम को कैकेयी तब अत्यन्त दारुण वचन बोली ॥२८॥ पूर्व देवासुर युद्ध में तेरे पिता ने हे राम ! जब मैंने उस महारण में शल्य निकालकर उसकी रक्षा की थी तब दो वर दिये थे॥२९॥उनमें से हे राम! एक से मैंने राजा से भरत का अभिषेक मांगा है, दूसरे से आज ही तेरा दण्डक बन में जाना॥३०॥सो हे नरश्रेष्ठ! यदि तू पिता को और अपने आप को सच्ची प्रतिज्ञावाला किया चाहता है, तो मेरा यह वाक्य सुन॥

मूल—संनिदेशे पितुस्तिष्ठ यथाऽनेन प्रतिश्रुतम्। त्वयारण्यं प्रवेष्टव्यं नव वर्षाणि पञ्च च॥३२॥अभिषेकमिमं त्यक्त्वा जटाचीरधरोभव। भरतः कोसलपतेः प्रशास्तु वसुधामिमाम् ॥ ३३ ॥ एतेन त्वां नरेन्द्रोऽयं कारुण्येन समाप्लुतः। शोकैः संक्लिष्टवदनो न शक्नोति निरीक्षितुम् ॥ ३४ ॥ एतत्कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन। सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम् ॥३५॥+इतीव तस्यां पुरुषं वदन्त्यां न चैव रामः प्रविवेश शोकम्। प्रविव्यथे चापि महानुभावो राजा तु पुत्रव्यसनाभितप्तः ॥ ३६ ॥

मूल—पिता के हुक्म में खडा हो, जैसी इसने प्रतिज्ञा की है, अब तुझे चौदह बरस वनमें प्रवेश करना चाहिये॥३२॥ तू इस अभिषेक को त्याग कर जटाचीरधारी हो, और भरत कोसलपति की

इस भूमि पर शासन करे ॥३३॥ इस दयाभाव से व्याप्त हुआ यह राजा तुझे देख नहीं सक्ता है, और शोकों से इसका चेहरा मुरझाया हुआ है ॥३४॥ हे रघुनन्दन! राजा के इस वचन को पूराकर, हे राम बड़े सत्य से नरपति को तार ॥ ३५ ॥ इसप्रकार उसके कठोर कहते हुए राम को न तो शोक हुआ, न दुःख हुआ, पर महानुभाव राजा पुत्र की विपद् में संतप्त हुआ शोक दुःख में डूब गया ॥ ३६ ॥

सर्ग १६ (व० १९) आज्ञा का स्वीकार

मूल—तदप्रियममित्रघ्नो वचनं मरणोपमम् । श्रुत्वा न विव्यथे रामः कैकेयींचेदमब्रवीत ॥१॥+एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहंत्वितः । जटाचीरधरो राज्ञःप्रतिज्ञामनुपालयन् ॥२॥ इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं मां महीपतिः । नाभिनन्दति दुर्धर्षो यथापूर्वमरिन्दमः ॥३॥ मन्युर्न च त्वया कार्यो देवि ब्रूमि तवाग्रतः । यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः ॥ ४ ॥

टीका—शत्रुओं को मारने वाला राम मृत्यु तुल्य उस अप्रिय वचन को सुन कर दुःखी नहीं हुआ और कैकेयी से यह बोला ॥ १ ॥ 'बहुत अच्छा' यहां से मैं जटाचीर धारण कर राजाकी प्रतिज्ञा को पालता हुआ वनवास को जाऊंगा ॥२॥ किन्तु यह जानना चाहता हूं, किस लिये दुर्धर्ष शत्रुओं के दमन करने वाला (राजा) पूर्ववत् मुझे अभिनन्दन (खुशी से स्वीकार) नहीं करता है ॥३॥ हे देवि! तुझे क्रोध नहीं करना चाहिये, तेरे सामने कहता हूं; कि जटा चीर धारी हो वन को जाऊंगा, तू सुप्रसन्न हो अर्थात् (अवश्य जाऊंगा, तुझे अन्यथा शंका नहीं करनी चाहिये । मैं इसलिये पिता से प्रेम पूर्वक भाषण नहीं चहता, कि मेरा जाना रुकजाए) ॥४

मूल--+हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च । नियुज्यमानो विस्रब्धः किं न कुर्यामहं प्रियम् ॥५॥ अलीकं मानसं त्वेकं हृदय दहतीव मे । स्वयं यन्नाह मां राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ ६ ॥ तदाश्वासय ह्रीमन्तं किन्त्विदं यन्महीपतिः । वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुञ्चति ॥७॥+गच्छन्तु चैवानयितुं दूताःशीघ्रजवैर्हयैः। भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात् ॥ ८ ॥

टीका—अपने हितैषी ,गुरु पिता, (तेरी सहायता के) कृतज्ञ, राजा से आज्ञा दिया हुआ मैं निःशंक होकर कौनसा प्रिय नहीं करसक्ता हूं ॥५॥ मेरे हृदय को तो एक ही मानस दुःख दाह कर रहा है, कि जो स्वयं मुझे राजा भरत का अभिषेक नहीं कहते हैं ।६। सो तू राजा को तसल्ली दे,कि यह क्या ! जो पृथिवीपति पृथिवी की तर्फ नेत्र झुका कर मन्द मन्द आंसु बहा रहे हैं ॥७॥ अभी राजा की आज्ञा से भरत को मामा के घर से लाने के लिये दूत तेज घोड़ों भे जावें ॥ ८ ॥

मूल—दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः । अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ।९। सा हृष्टा तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा रामस्य कैकयी । प्रस्थानं श्रद्दधाना सा त्वरयामास राघवम्।१०।एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः। भरतं मातुलकुलादिहावर्तयितुं नराः॥

टीका—यह मैं पिता के वाक्य को बिन विचारे चौदह बरस बन में वसने के लिये जल्दी यहां से जाता हूं ।९। उसके उस वाक्य को सुन कर प्रसन्न हुई कैकेयी राम के चले जाने का विश्वास करती हुई राम को जल्दी कराती भई ।१०। 'बहुत अच्छा' भरत को मामा के घर से लाने के लिये दूत तेज घोड़ों से जाएंगे ॥११॥

मूल—तव त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम् । राम तस्मादितः

शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ।१२। व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते । नैतत्किंचिन्नरश्रेष्ठ मन्युरेषोऽपनीयताम् ।१३। यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादतित्वरन् । पिता तावन्न ते राम स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा ।१४। धिक्कष्टमिति निःश्वस्य राजा शोकपरिप्लुतः । मूर्च्छितो न्यपतत्तस्मिन्पर्यङ्के हेमभूषिते ॥१५॥

टीका—पर तेरा विलम्ब करना तेरे उत्साह के युक्त नहीं जानती हूं, हे राम ! इस लिये तू यहां से जल्दी वनको जाने योग्य है ॥१२॥ लज्जा से युक्त हुआ राजा जो तुझे स्वयं नहीं कहता है हे नरश्रेष्ठ ! यह कुछ बात नहीं, इस शोक को दूर कर॥१३॥जब तक जल्दी करता हुआ तू इस पुर से वनको नहीं चला जाएगा, तब तक तेरा पिता हे राम! न न्हाएगा, न कुछ खाएगा ॥१४॥ (इतना सुन) धिक् कष्ट, यह कह आह भर कर शोक से घिरा हुआ राजा मूर्छित हो उस सुवर्ण भूषित पलंग पर गिरपड़ा ॥१५॥

मूल--रामोऽप्युत्थाप्य राजानं कैकेय्याभिप्रचोदितः । कशयेवाहतो वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः ॥१६॥+तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोदयम् । श्रुत्वा गतव्यथो रामः कैकेयीं वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥ नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे । विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम् ॥ १८ ॥ + यत्तत्रभवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया । प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ॥१९॥+न ह्यतो धर्मचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम् । यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचन क्रिया ॥२०॥ +अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम् । वने वत्स्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश ॥२१॥ + न नूनं मयि कैकेयि किंचिदाशंससे गुणान् । यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती॥२२॥ यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम् । ततोऽद्यैव

गमिष्यामि दण्डकानां महद्वनम् ॥२३॥भरतः पालयेद्राज्यं शुश्रूषेच्च पितुर्यथा। तथा भवत्या कर्तव्यं स हि धर्मः सनातनः ॥ २४ ॥

टीका—राम भी राजा को उठाकर कैकेयी से प्रेरा हुआ चाबुक से ताड़े हुए घोड़े की तरह वन जाने में तेज़ी करने लगा ॥१६॥ अनार्या के उस अप्रिय दारुण फलने वाले वचन को सुन कर राम की सारी व्यथा दूर हो गई और वह कैकेयी से बोला ॥१७॥ हे देवि! मैं अर्थपरायण होकर लोक में नहीं रहना चाहता हूं, मुझे तू ऋषियों के तुल्य शुद्ध धर्म का आश्रय लिये हुए जान ॥१८॥ प्राणों को त्याग कर भी मैं जो कुछ अपने पूजनीय पिता का प्रिय कर सक्ता हूं, वह सर्वथा किया हुआ जान ॥१९ इस से बढ़ कर कोई धर्मानुष्ठान नहीं है, जैसे पिता की सेवा वा उस का वचन पूरा करना ॥२०॥ पूजनीय पिता से न कहा हुआ भी आप के वचन से मैं निर्जन वन में चौदह बरस बसूंगा ॥२१॥ निःसंदेह हे कैकेयि! तू मुझ में कोई गुण नहीं जानती है, जो तूने मेरी पूरी मालिक होकर भी (यह तुच्छ काम) राजा से कहा ॥२२॥ जब तक माता से आज्ञा लेता हूं और सीता को तसल्ली देता हूं (तब तक क्षमा कर) पीछे आज ही दण्डकों के बड़े वन को जाऊंगा ॥२३॥ अब भरत जैसे राज्य का पालन करे और पिता की सेवा करे, वैसे आपने करना, यह (पिता की सेवा और राजा होकर राज्य का पालन) सनातन धर्म है॥२४॥

सर्ग १७ (व० १९-२०) माता के घर जाना

मूल—वन्दित्वा चरणौ राज्ञो विसंज्ञस्य पितुस्तदा। कैकय्याश्चाप्यनार्याया निष्पपात महाद्युतिः ॥१॥ स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणम्। निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्स्वं ददर्श सुहृज्जनम्

॥ २ ॥+ न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति । लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः ॥३॥+न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम् । सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ॥ ॥४॥ +सर्वेऽप्यभितो जनः श्रीमाञ्श्रीमतः सत्यवादिनः । नालक्षयत रामस्य किंचिदाकारमानने ॥५॥ जगाम सहितो भ्रात्रा मातुरन्तःपुरं वशी ॥ ६ ॥

टीका—बेहोश गिरे हुए राजा पिता के चरणों को और अनार्या कैकेयी के चरणों को प्रणाम करके वह महातेजस्वी बाहर निकला ॥ १ ॥ वह राम पिता की और कैकेयी की प्रदक्षिणा करके उस अन्तःपुर से बाहर निकल कर अपने सुहृद्‌जन को देखता भया ॥ २ ॥ सहज कान्तिवाला होने से राज्य का नाश उसकी बड़ी कान्ति को दूर नहीं कर सक्ता है, जैसे दुनिया के प्यारे चन्द्र की शोभा को (द्वितीया के दिन) उसका पतला होना ॥ ३ ॥ राज्य को त्यागकर वन को जाना चाहते हुए राम के चित्त में सारी दुनिया से आगे बढ़े हुए के चित्त की तरह कोई विकार नहीं प्रतीत होता है ॥ ४ ॥ चारों ओर के सभी लोग (राम राज्य के हर्ष से) शोभावाले हुए सत्यवादी शोभावाले राम के मुख पर कोई विकार न देखते भए ॥ ५ ॥ भाई के साथ वह वशी माता के अन्तःपुर में गया ॥ ६ ॥

मूल—सोऽपश्यत्पुरुषं तत्र वृद्धं परमपूजितम् । उपविष्टं गृहद्वारि तिष्ठतश्चापरान्बहून्॥७॥ दृष्ट्वैव तु तदा रामं ते सर्वे समुपस्थिताः। जयेन जयतां श्रेष्ठं वर्धयन्ति स्म राघवम् ॥ ८ ॥ प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श सः । ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्वृद्धान्राजाभिसत्कृतान् ॥९॥ प्रणम्य रामस्तान्वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श सः ।

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः ॥१०॥ वर्धयित्वा प्रहृष्टास्ताः प्रविश्य च गृहं स्त्रियः। न्यवेदयन्त त्वरितं राममातुः प्रियं तदा ॥ ११ ॥ सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा। अग्निं जुहोतिस्म तदा मन्त्रवत् कृतमङ्गला ॥ १२ ॥

टीका—उस ने वहां द्वार पर बैठे हुए वृद्ध पुरुष को देखा, और दूसरे बहुत से खड़े हुओं को देखा॥७॥राम को देखते ही वह सब सहसा खड़े हो गये, और जीतने वालों में श्रेष्ठ राम को जय शब्द से बधाई देते भए॥८॥पहली डेवढ़ी से आगे दूसरी में जाकर उसने राजमानित वेदसम्पन्न वृद्ध ब्राह्मणों को देखा ॥ ९ ॥ उन वृद्धों को प्रणाम करके तीसरी डेवढ़ी में उस ने स्त्रियें वृद्ध और बालों को द्वाररक्षा में तत्पर देखा ॥ १० ॥ राम को बधाई देकर परम हर्ष से भरी हुई वह स्त्रियें अन्दर प्रवेश करके जल्दी २ जा यह प्रिय राम की माता को निवेदन करतीं भईं ॥ ११ ॥ वह रेशमी वस्त्र पहने हुए हर्ष से भरी हुई व्रतपरायण हुई उस समय और सब मङ्गल कार्य करके अग्निहोत्र कर रही थी

सर्ग १८ (व० २१) वृत्तान्त सुनकर माता का विलाप

मूल—प्रविश्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम्। ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम् ॥ ॥ सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम्। अभिचक्रम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ॥२॥ स मातरमुपक्रान्तामुपसंगृह्य राघवः। परिष्वक्तश्च बाहुभ्यामवघ्रातश्च मूर्धनि ॥३॥ तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः। कौसल्या पुत्रवत्सल्या दिदं प्रियहितं वचः ॥४॥+वृद्धानां धर्मशीलानां राजर्षीणां महात्मनाम्। प्राप्नुह्यायुश्च कीर्तिं च धर्मं चाप्युचितं कुले ॥५॥ सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव। अद्यैव त्वां स धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥६॥

टीका—तब राम माता के शुभ अन्तःपुर में प्रवेश करके वहां माता को अग्नि में होम करवाती हुई देखता भया ॥१॥ वह चिर करके मातृनन्दन को आया देख हर्षित हो उसकी तरफ झुकी, जैसे घोड़ी बछेरे की तर्फ ॥२॥ राम ने पास आई माताके चरण ग्रहण किये, माता ने दोनों भुजाओं में लेलिया और मस्तक चूमा ॥३॥ अपने पुत्र उस दुराधर्ष राम को कौसल्या पुत्र के प्रेम से यह प्रिय हित वचन बोली ॥४॥ वृद्ध, धर्मशील, महात्मा राजऋषियों की आयु और कीर्त्ति को प्राप्त हो, और कुल में उचित धर्म को प्राप्त हो ॥५॥ हे राघव ! सच्ची प्रतिज्ञावाले अपने पिता राजा के जाकर दर्शन कर, आजही तुझे वह धर्मात्मा यौवराज्य में अभिषेक देगा।(माताने पिता के पास जा आने आदि के अज्ञान से ऐसे कहा है)

मूल—दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः। मातरं राघवः किञ्चित्प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत् ॥७॥ स स्वभावविनीतश्च गौरवाच्च तथानतः। प्रस्थितो दण्डकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥८॥ देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम्। इदं तव च दुःखाय वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ॥९॥ +गमिष्ये दण्डकारण्यं किमनेनासनेन मे। विष्टरासनयोग्यो हि कालोऽयं मामुपस्थितः ॥१०॥चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने। कन्दमूलफलैर्जीवन्हित्वा मुनिवदामिषम् ॥११॥ भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति। मां पुनर्दण्डकारण्यं विवासयति तापसम् ॥१२॥

टीका—माता से दिये हुए आसन को स्पर्श करके (न कि पाओं रखकर) भोजन से निमन्त्रित हुआ राम हाथ जोड़कर माता से बोला ।७। वह स्वभाव से विनीत और (माता के) गौरव से अधिक झुका हुआ दण्डक वन को प्रस्थित हुआ पूछने लगा।८।

हे देवि ! तू बड़ा भय सामने आया नहीं जानती है, यह तेरे, सीता के और लक्ष्मण के दुःख के लिये है ।९। मैं दण्डक वन को जाऊंगा, मुझे इस आसन से क्या, विष्टरासन (कुशा के आसन) के योग्य मुझे यह समय प्राप्त हुआ है ।१०। मुनियों की तरह भोग छोड़ चौदह बरस मैं निर्जन वन में शहद से और कन्द मूल और फलों से जीवन करूंगा ।११। महाराज भरत को यौवराज्य देते हैं, और मुझे तपस्वि बनाकर दण्डक वन में भेजते हैं।

मूल-सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने। पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥१३॥ तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव। रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम् ॥१४॥ सा राघवमुपासीनमसुखार्ता सुखोचिता। उवाच पुरुषव्याघ्रमुपशृण्वति लक्ष्मणे ॥१५॥ यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव। न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः ॥१६॥

टीका-वह देवी वन में कुल्हाड़ी से कटी हुई साल की लकड़ी की तरह सहसा गिर पड़ी, जैसे स्वर्ग से देवता ।१३। दुःखों के अयोग्य माता को मूर्च्छित होकर कदली की तरह गिरा हुआ देख कर राम उठाता भया ॥१४॥ सुख के योग्य असुख से पीडित हुई वह माता पास बैठे हुए पुरुषश्रेष्ठ राम को लक्ष्मण के सुनते हुए यह बोली ॥१५॥ हे पुत्र ! यदि तू मेरे शोक के लिए जन्म न लेता, तो मैं बन्ध्या हुई इस से (बंध्यापन से) अधिक (पुत्र वियोग का) दुःख न देखती ॥ १६ ॥

मूल-एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः। अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते ॥१७॥ न दृष्टपूर्वं कल्याणं सुखं वा पति पौरुषे। अपि पुत्रे विपश्येयमिति रामास्थितं मया ॥१८॥

सा बहून्यमनोज्ञानि वाक्यानि हृदयच्छिदाम् । अहं श्रोष्ये सपत्नीनामवराणां परा सती ॥१९॥ अतो दुःखतरं किं नु प्रमदानां भविष्यति । मम शोको विलापश्च यादृशोऽयमनन्तकः ॥२०॥ तदक्षयं महद्दुःखं नोत्सहे सहितुं चिरात् । विप्रकारं सपत्नीनामेवं जीर्णापि राघव ॥२१॥ अपश्यन्ती तव मुखं परिपूर्णशशिप्रभम् । कृपणा वर्तयिष्यामि कथं कृपणजीविकाम् ॥२२॥

टीका—क्योंकि वन्ध्या को एक ही मानस शोक होता है, कि मैं निःसन्तान हूं, हे पुत्र उसे और सन्ताप नहीं होता है ॥१७॥ पति के पौरुष में जो पहले मैंने कल्याण वा सुख नहीं देखा है, वह पुत्र के पौरुष में देखूंगी, इस आशा पर हे राम मैं खड़ी हूं ।१८।सो अब मैं हृदय को चीरने वाली, सौतिनों के-बड़ी होकर छोटियों के बहुत से अप्रिय वाक्य सुनूंगी ॥ १९ ॥ इस से बढ़कर स्त्रियों को और क्या दुःख होगा, जैसा कि यह न मिटने वाला मेरा शोक और विलाप है ॥२०॥ सौतिनों से अनादर जोकि अक्षय दुःख है उसे हे राम अब इस तरह बूढ़ी होकर देर तक नहीं सह सकती हूं ॥२१॥ पूर्णचन्द्र तुल्य तेरे मुख को न देखती हुई कैसे मैं कृपण होकर कृपण जीना जिऊंगी॥

मूल—उपवासैश्च योगैश्च बहुभिश्च परिश्रमैः । दुःख संवर्धितो मोघं त्वं हि दुर्गतया मया ॥२३॥ स्थिरं नु हृदयं मन्ये ममेदं यन्न दीर्यते। प्रावृषीव महानद्या स्पृष्टं कूलं नवाम्भसा ॥२४॥ इदं तु दुःखं यदनर्थकानि मे व्रतानि दानानि च संयमाश्च हि । तपश्च तप्तं यदपत्यकाम्यया सुनिष्फलं बीजमिवोप्तमूषरे ॥२५॥ यदि ह्यकाले मरणं यदृच्छया लभेत कश्चिद्गुरुदुःखकर्शितः । गताहमद्यैव परेतसंसदं विना त्वया धेनुरिवात्मजेन वै ॥२६॥

टीका—मैं दुर्भागिन ने उपवास, देवता का ध्यान और बहुत

से परिश्रमों से व्यर्थ ही तुझे दुःख से बढ़ाया है (मेरे सारे परिश्रम व्यर्थ गये) ॥ २३ ॥ मैं अपने हृदय को बड़ा सख्त समझती हूं, जोकि फट नहीं जाता है, जैसे बरसात में नए पानी से छुआ हुआ महानदी का किनारा ॥ २४ ॥ यह बडे दुःख की बात है, कि मेरे व्रत, दान, संयम और जो सन्तान के कारण तप तपे हैं, वह सब कालरी भूमि में बोए हुए बीज की तरह निष्फल हुए हैं ॥ २५ ॥ यदि कोई भारी दुःख से तंग आकर बिना समय अपनी इच्छा से मौत लाभ कर सके, तो आज ही पुत्र से वियुक्त हुई धेनु की तरह तेरे बिना मैं यम के घर पहुंची हुई होती ।२६

सर्ग १९ (व० २१) लक्ष्मण का क्रोध ।

मूल—तथा तु विलपन्तीं तां कौसल्यां राममातरम्। उवाच लक्ष्मणो दीनस्तत्कालसदृशं वचः ॥ १॥ नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथाविधम् । येन निर्वास्यते राष्ट्राद्वनवासाय राघवः ॥२॥+न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः । स्वमित्रोपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत् ॥३ +देवकल्पमृजुं दान्तं रिपूणामपि वत्सलम् । अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणात् ॥ ४ ॥ तदिदं वचनं राज्ञः पुनर्बाल्यमुपेयुषः । पुत्रः को हृदये कुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरन् ॥ ५ ॥ यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः । तावदेव मया सार्धमात्मस्थं कुरु शासनम् ॥ ६ ॥ निर्मनुष्यामिमां सर्वामयोध्यां मनुजर्षभ । करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्यदि स्थास्यति विप्रिये॥

टीका—इस प्रकार विलाप करती हुई राम की माता कौसल्या से दीन हुआ लक्ष्मण उस काल के सदृश वचन बोला ॥ १ ॥ मैं इसका कोई अपराध नहीं देखता हूं, न कोई ऐसा दोष देखता हूं, जिससे कि राम राज्य से बनवास के लिये निकाला जाता है ।२

मैं तो (राम का) भारी शत्रु भी वा उससे निकाला हुआ पुरुष भी कोई ऐसा नहीं देखता हूं, जो पीछे भी इसका दोष कहे ॥३॥ देवता के तुल्य, सरल, दमनशील, शत्रुओं का भी जो प्यारा हो ऐसे पुत्र को कौन धर्म पर दृष्टि रखनेवाला बिनाकारण के त्याग सकता है॥ ४ ॥ सो राजा जो फिर बालकपन को प्राप्त होगया है उस के ऐसे वचन को राजों की चाल का स्मरण करता हुआ कौन पुरुष हृदय में जगह देगा ॥५॥ अतः जब तक कोई पुरुष इस बात को नहीं जानता है, तब तक ही मेरे साथ शासन अपने हाथ में ले ॥६॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं इस सारी अयोध्या को तेज़ तीरों से बिना मनुष्योंके कर दूंगा, यदि कोई तेरे विपक्ष में खड़ा होगा ॥७॥

मूल-भरतस्याथ पक्ष्यो वा यो वास्य हितमिच्छति । सर्वांस्तांश्च वधिष्यामि मृदुर्हि परिभूयते ॥८॥+अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः । सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे ॥ ९ ॥+दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति । प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥१०॥हरामि वीर्याद्दुःखं ते तमः सूर्य इवोदितः। देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु ॥ ११ ॥

टीका--भरत के पक्ष का अथवा जो कोई इसका हित चाहता है, उन सबको मार डालूंगा, नर्म मनुष्य ही दबाया जाता है ॥८॥ मैं अपने हृदय से हे देवि ! भाई पर पूरा२ अनुरक्त हूं, मैं सत्य की, धनुष की, और यज्ञ दान की शपथ करता हूं ॥९॥ राम यदि जलती हुई अग्नि में वा (जलते हुए) वन में प्रवेश करेगा, तो हे देवि! मुझे वहां पहले प्रविष्ट हुआ जान ॥१०॥ अपनी शक्ति से तेरे दुःख को इसतरह दूर करता हूं, जिसतरह उदय हुआ सूर्य अन्धेरे को दूर करता है, देवी मेरी शक्ति को देखे, और राम देखे ॥११॥

मूल--एतत्तु वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः। उवाच रामं कौसल्या रुदती शोकलालसा ॥१२॥ भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया। यदत्रानन्तरं कार्यं कुरुष्व यदि रोचते ॥ १३॥ न चाधर्म्यं वचः श्रुत्वा सपत्न्या मम भाषितम्। विहाय शोकसंतप्तां गन्तुमर्हसि मामितः ॥१४॥ धर्मज्ञ यदि धर्मिष्ठो धर्मं चरितुमिच्छसि। शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ॥१५॥ शुश्रूषुर्जननीं पुत्र स्वगृहे नियतो वसन्। परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवं गतः ॥

टीका—महात्मा लक्ष्मण के इस वचन को सुनकर शोक से भरी हुई कौसल्या रोती हुई राम से यह बोली ॥१२॥ हे पुत्र! लक्ष्मण की बातको तूने सुना है, अब इसके अनन्तर जो योग्य है, वह कर, यदि पसन्द है ॥ १३ ॥ पर मेरी सपत्नी के कहे हुए अधर्मयुक्त वचन को सुनकर, मुझे शोक से तपी हुई छोड़कर यहां से तुझे जाना नहीं चाहिये ॥ १४ ॥ हे धर्मज्ञ यदि तू धर्मनिष्ठ हो, धर्म करना चाहता है, तो यहां रहकर तू मेरी सेवा कर, इस उत्तम धर्म का आचरण कर ॥ १५ ॥ हे पुत्र! अपने घर में नियम से रहकर माता की सेवा करता हुआ परम तप से युक्त हुआ काश्यप स्वर्ग को प्राप्त हुआ ॥

मूल—यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम्। त्वां साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ॥ १७ ॥ त्वद्वियोगान्न मे कार्यं जीवितेन सुखेन च। त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम् ॥ १८ ॥ यदि त्वं यास्यसि वनं त्यक्त्वा मां शोकलालसाम्। अहं प्रायमिहासिष्ये न च शक्ष्यामि जीवितुम् । १९ ॥

टीका—जैसे राजा गौरव (गुरु होने) से तेरा पूज्य है, वैसे ही मैं हूं, मैं तुझे अनुज्ञा नहीं देती हूं, सो यहां से बनको मत जाओ ॥१७॥ तुझसे अलग होकर न मुझे जीने से न सुख से प्रयो-

जन है, तेरे साथ मुझे तिनकों को खाना भी अच्छा है ॥ १८ ॥ यदि तू शोक से भरी हुई मुझको छोड़कर बन को चला जाएगा, तो मैं विना खाने पीने के मर जाऊंगी, जी नहीं सकूंगी ॥१९॥

सर्ग २० (व० २१) राम का उत्तर

मूल—विलपन्तीं तथा दीनां कौसल्यां जननीं ततः । उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥ १ ॥+नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम । प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥ २ ॥+तदेतत्तु मया कार्यं क्रियते भुवि नान्यथा । पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्नाम हीयते ॥ ३ ॥ तामेवमुक्त्वा जननीं लक्ष्मणं पुनरब्रवीत् ॥ ४ ॥ तव लक्ष्मण जानामि मयि स्नेहमनुत्तमम् । विक्रमं चैव सत्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥ ५ ॥

टीका—इसप्रकार दीन हो विलाप करती हुई माता कौसल्या को धर्मात्मा राम धर्मयुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ पिता का वाक्य उलांघने की मेरी शक्ति नहीं है, तुझे सिर झुकाकर प्रसन्न करता हूं, मैं बन को जाना चाहता हूं ॥ २ ॥ सो यह मैं करने योग्य कर रहा हूं, पृथिवी में मैं कोई निराला काम नहीं कर रहा, पिता का वचन करता हुआ कोई भी पुरुष हीन नहीं होता (चाहे वह किसी दूसरी भलाई को छोड़ कर भी पूरा करना पड़े, जैसे यहां माता की सेवा छोड़ कर) ॥३॥ माता को ऐसा कह कर फिर लक्ष्मण से बोला ॥४॥ हे लक्ष्मण तेरे इस अत्युत्तम स्नेह को जो मेरी ओर है-जानता हूं, और तेरे पराक्रम दिलेरी और न दबने वाले तेज को जानता हूं ॥५॥

मूल—धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् । धर्मसंश्रितमेतच्चापितुर्वचनमुत्तमम् ॥६॥+संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा । न

कर्त्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता॥७॥+सोऽहं न शक्ष्यामि पितु-
र्नियोगमतिवर्तितुम्। पितुर्हि वचनाद्वीर कैकेय्याऽहं प्रचोदितः॥८॥
तदेतां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम्। धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्-
बुद्धिरनुगम्यताम्॥ ९॥ तमेवमुक्त्वा सौहार्दाद्भ्रातरं लक्ष्मणाग्रजः।
उवाच भूयः कौसल्यां प्राञ्जलिः शिरसा नतः॥ १० ॥

टीका—पर धर्म ही लोक में सब से उत्तम है, धर्म में सचाई स्थित है, पिता का यह उत्तम वचन धर्म के आश्रित है ॥६॥ हे वीर! जो धर्म के सहारे खड़ा है, उसे पिता माता वा ब्राह्मण के वाक्य को अंगीकार करके कभी वृथा नहीं करना चाहिए ॥७॥ सो मैं पिता की आज्ञा को नहीं उलांघ सक्ता हूं। पिता के वचन से हे वीर! मुझे कैकेयी ने प्रेरा है ॥८॥ सो तू इस क्षत्रधर्म के (आभास के) आश्रित अनार्या मति को त्याग, धर्म का आश्रय ले, नकि तीक्ष्णता का, मेरी बुद्धि के पीछे चल ॥९॥ लक्ष्मण का बड़ा भाई भाई को सौहार्द से ऐसा कह कर फिर हाथ जोड़ सिर झुका कर कौसल्या से बोला ॥१०॥

मूल—अनुमन्यस्व मां देवि गमिष्यन्तमितो वनम्। शापितासि मम
प्राणैः कुरु स्वस्त्ययनानि मे॥ ११॥ शोकः संधार्यतां मातर्हृदये साधु
मा शुचः। वनवासादिहैष्यामि पुनः कृत्वा पितुर्वचः॥१२॥+त्वया
मया च वैदेह्या लक्ष्मणेन सुमित्रया। पितुर्नियोगे स्थातव्यमेष धर्मः
सनातनः॥१३॥ अम्ब संहृत्य सम्भारान्दुःखं हृदि निगृह्य च।
वनवासकृता बुद्धिर्मम धर्म्यानुवर्त्यताम्॥ १४ ॥

टीका—हे देवि! यहां से वन जाते हुए मुझे अनुज्ञा दे, मेरे प्राणों की शपथ है, मेरे स्वस्त्ययन कर ॥११॥ हे माता शोक को हृदय में धारण कर, मत शोक कर, पिता के वचन को

पूरा करके बनवास से फिर यहां आऊंगा ॥१२॥ तुझ को, मुझ को, और जानकी को, लक्ष्मण को और सुमित्रा को पिता की आज्ञा में रहना चाहिए, यह सनातन धर्म है ॥१३॥ हे माता (अभिषेक के) सम्भारों को हटा कर और दुःख को हृदय में रोक कर, वनवास में हुई मेरी धर्म युक्त बुद्धि के अनुकूल हो।

मूल–एतद्वचस्तस्य निशम्य माता सुधर्म्यमव्यग्रमविक्लवं च। मृतेव संज्ञां प्रतिलभ्य देवी समीक्ष्य रामं पुनरित्युवाच ॥१५॥ +यथैव ते पुत्र पिता तथाहं गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च। न त्वानुजानामि न मां विहाय सुदुःखितामर्हसि पुत्र गन्तुम् ॥१६॥ किं जीवितेनेह विना त्वया मे लोकेन वा किं स्वधयामृतेन। श्रेयो मुहूर्तं तव संनिधानं ममेह कृत्स्नादपि जीवलोकात् ॥१७॥+ स मातरं चैव विसंज्ञकल्पामार्तं च सौमित्रिमभितप्तम्। धर्मे स्थितो धर्म्यमुवाच वाक्यं यथा स एवार्हति तत्र वक्तुम् ॥१८॥ अहं हि ते लक्ष्मण नित्यमेव जानामि भक्तिं च पराक्रमं च। मम त्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्य मात्रा सहाभ्यर्दसि मां सुदुःखम् ॥१९॥

टीका–पुत्र के इस धर्मयुक्त, धैर्य युक्त और अकायर वचन को सुन कर माता मूर्छित हुई, फिर होश सम्भाल कर राम को देखती हुई यह बोली ॥१५॥ हे पुत्र! जैसे तुझे पिता है, वैसे अपने धर्म (पालनादि) से और स्नेह से मैं गुरु हूं, किन्तु मैं तुझे जाने की अनुज्ञा नहीं देती हूं, मुझे इस तरह दुखिया छोड़ कर तू जाने योग्य नहीं है ॥१६॥ तेरे बिना मुझे यहां जीवन से क्या है, अथवा दुनिया से स्वधा से और अमृत से क्या है मुझे थोड़ी देर भी तेरा पास होना सारे जीवलोक से बढ़ कर है।१७। बेचैन हुई माता को और तपे हुए आर्त लक्ष्मण को धर्म में स्थित

हुआ राम धर्म युक्त यह वाक्य बोला जैसा कि वहीं ऐसे अव-सर पर कहने के योग्य है ॥१८॥ हे लक्ष्मण मैं तेरी भक्ति और पराक्रम को सदा जानता हूं, किन्तु तू मेरे अभिप्राय को न जान कर माता के साथ मुझे पूरी तरह पीड़ित कर रहा है ॥

मूल–गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः क्रोधात् प्रहर्षादथवापि कामात् यद्व्यादिशेत्कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥२०॥ न तेन शक्नोमि पितुःप्रतिज्ञामिमां न कर्तुं सकलां यथावत् । स ह्यावयोस्तात गुरुर्नियोगे देव्याश्च भर्ता स गतिः स धर्मः ॥२१॥ तस्मिन्पुनर्जीवति धर्मराजे विशेषतः स्वे पथि वर्त्तमाने । देवी मया सार्धमितोऽभिगच्छेत् कथं स्विदन्या विधवेव नारी ॥२२॥

टीका–राजा गुरु है, पिता है, वृद्ध है, वह क्रोध से, हर्ष से अथवा काम से भी जो कुछ करने की आज्ञा देवे, कौन अक्रूर स्वभाववाला पुरुष धर्म को ख्याल करके उस को न करे।२०। पिता की इस सम्पूर्ण प्रतिज्ञा को ठीक २ न करना मैं नहीं कर सकता, हे तात! वह हम दोनों को आज्ञा देने में गुरु है और माता का भर्ता है, वही गति है धर्म है ॥२१॥ उस धर्मराज के जीते हुए और विशेषतः अपने पथ पर वर्तमान होते हुए माता मेरे साथ किस तरह जासकती है, जिस तरह कि और विधवा नारीहो

मूल–सा मानुमन्यस्व वनं व्रजन्तं कुरुष्व नः स्वस्त्ययनानि देवि । यथा समाप्ते पुनरावजेयं यथा हि सत्येन पुनर्ययातिः ॥२३॥+ यशो ह्यहं केवलराज्यकारणान्न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् । अदीर्घकालेन तु देवि जीविते वृणेऽवरामद्य महीमधर्मतः ॥२४॥

टीका–सो हे देवि! वन को जाते हुए मुझे अनुज्ञा दे, मेरे स्वस्त्य-यन कर, जिस से कि बनवास के समाप्त होने पर फिर आऊं,

जैसे सचाई से फिर ययाति ॥२३॥ मैं केवल राज्य के कारण बड़े फल वाले यश को पीछे नहीं कर सक्ता हूं, हे देवि ! इस अदीर्घकाल जीवन के निमित्त अधर्म द्वारा इस तुच्छ पृथ्वी को कभी नहीं वरूंगा ॥२४॥

सर्ग २१ (व० २२) राम का कैकेयी को निर्दोष ठहराना

मूल–अथ तं व्यथया दीनं सविशेषममर्षितम् । सरोषमिव नागेन्द्रं रोषविस्फारितेक्षणम् ॥ १ ॥ आसाद्य रामः सौमित्रिं सुहृदं भ्रातरं प्रियम् । उवाचेदं स धैर्येण धारयन्सत्त्वमात्मवान् ॥ २ ॥ निगृह्य रोषं शोकं च धैर्यमाक्रम्य केवलम् । अवमानं निरस्यैनं गृहीत्वा हर्षमुत्तमम् ॥३॥ उपक्लृप्तं यदेतन्मे अभिषेकार्थमुत्तमम् । सर्वं निवर्तय क्षिप्रं कुरु कार्यं निरामयम् ॥४॥ सौमित्रे योऽभिषेकार्थे मम संभारसम्भ्रमः । अभिषेकनिवृत्त्यर्थे सोऽस्तु सम्भारसम्भ्रमः ॥ ५ ॥ यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यति । माता नः सा यथा न स्यात्सविशङ्का तथा कुरु ॥ ६ ॥

टीका–इस के पीछे व्यथा से दीन हुए, विशेष करके (राम की हानि को) न सहारते हुए, क्रुद्ध हुए हाथी की तरह सांस लेते हुए, क्रोध से फैलाए हुए नेत्रों वाले सुहृद प्यारे भाई लक्ष्मण को मनस्वी राम अभिमुख करके चित्त का अविकार प्रकट करता हुआ धैर्य से यह वचन बोला ॥१,२॥ हे भाई रोष और शोक को रोक कर केवल धैर्य को आश्रय करके, इस अपमान को दूर करके, बड़े हर्ष के साथ जो कुछ कि अभिषेक के लिये तय्यार किया है, उस सब को परे हटाकर, जल्दी कार्य को निर्विघ्न बना ॥ ३, ४ ॥ हे लक्ष्मण तेरा जो उत्साह मेरे अभिषेक की तय्यारी के लिये था, वही (तय्यारी का उत्साह) अब अभिषेक की

निवृत्ति (रूप वनवास) के लिये हो ॥ ५ ॥ मेरे अभिषेक के अर्थ जिसका मन संनत हो रहा है, वह हमारी माता (कैकेयी) जिस तरह शङ्का वाली न रहे, वैसे कर ॥ ६ ॥

मूल—+तस्या शङ्कामयं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे। मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥७॥+न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन मातॄणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम् ॥८॥ सत्यः सत्याभिसंधश्च नित्यं सत्यपराक्रमः। परलोकभयाद्भीतो निर्भयोऽस्तु पिता मम ॥ ९ ॥ तस्यापि हि भवेदस्मिन्कर्मण्यप्रतिसंहृते। सत्यं नेति मनस्तापस्तस्य तापस्तपेच्च माम् ॥ १० ॥ अभिषेकविधानं तु तस्मात्संहृत्य लक्ष्मण। अन्वगेवाहमिच्छामि वनं गन्तुमितः पुरः ॥

टीका—हे लक्ष्मण! मैं उस के मन में उत्पन्न हुए शङ्कामय दुःख को मुहूर्त भी उपेक्षा नहीं कर सकता हूं ॥ ७ ॥ मैं न जान बूझकर न बिन जाने स्मरण करता हूं, कि कभी मैंने माताओं का वा पिता का ज़रा सा भी विप्रिय किया हो ॥ ८ ॥ किञ्च सच्चा, सच्ची प्रतिज्ञा वाला, सदा सच्चे पराक्रम वाला, मेरा पिता जो परलोक के भय से भीत हो रहा है, वह निर्भय हो ॥ ९॥ उसको भी जब तक यह (अभिषेक का) कर्म समाप्त न होगा (तबतक मेरा वरदान) सत्य नहीं हुआ, यह मन का सन्ताप होगा, उस का सन्ताप मुझे तप्त करेगा ॥ १० ॥ इस लिये हे लक्ष्मण! अभिषेक का विधान हटाकर अभी इस नगर से वन को जाना चाहता हूं ॥ ११ ॥

मूल—बुद्धिःप्रणीता येनेयं मनश्च सुसमाहितम्। तं तु नार्हामि संक्लेष्टुं प्रव्रजिष्यामि मा चिरम् ॥ १२ ॥ कृतान्त एव सौमित्रे द्रष्टव्यो मत्प्रवासने। राज्यस्य च वितीर्णस्य पुनरेव निवर्तने ॥ १३ ॥ कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि कथं स्यान्मम वेदने। यदि तस्या न भावो-

ऽयं कृतान्तविहितो भवेत् ॥ १४ ॥ जानासि हि यथा सौम्य न मातृषु ममान्तरम् । भूतपूर्वं विशेषो वा तस्या मयि सुतेऽपि वा ॥ १५ ॥ सोऽभिषेकनिवृत्त्यर्थैः प्रवासार्थैश्चदुर्वचैः । उग्रैर्वाक्यैरहं तस्या नान्यद्दैवात्समर्थये ॥१६॥ कथं प्रकृतिसम्पन्ना राजपुत्री तथागुणा। ब्रूयात्सा प्राकृतेव स्त्री मत्पीड्यं भर्तृसन्निधौ ॥ १७ ॥

टीका–जिस (दैव) ने (कैकेयी की) बुद्धि को प्रेरा है, और मन को पक्का किया है, मैं उस (दैव) को तंग नहीं करूंगा, बिना देरी किये जाऊंगा ॥१२॥ दैव ही है सौमित्रे मेरे निकालने में और दिये हुए राज्य के फिर लौटाने में कारण जानना चाहिये ॥ १३ ॥ कैकेयी का भी मेरे तंग करने में कैसे निश्चय होता, यदि उस का यह निश्चय दैव से किया हुआ न होता ॥१४॥ हे सौम्य तू जानता ही है, कि मेरा अपनी सारी माताओं में कोई भेद नहीं है, वा उस का भी इस से पहले मुझ में वा अपने पुत्र में कभी कोई भेद नहीं हुआ है ॥१५॥ सो मैं उस के ऐसे दुर्वच उग्र वाक्यों से–जो मेरे अभिषेक की निवृत्ति और प्रवास के अर्थ (राजा को कहे गये) हैं, दैव से बिना कोई और कारण नहीं समझता हूं ॥ १६ ॥ (अन्यथा यदि दैव से प्रेरा हुई न हो, तो) वह वैसे गुणों वाली अपने असली स्वभाव से युक्त हुई राजपुत्री कैसे प्राकृत स्त्री की तरह मेरे पीड़ित करने वाला वाक्य कहती और वह भी पति के पास ॥१७॥

मूल–कश्च दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान् । यस्य नु ग्रहणं किञ्चित्कर्मणोऽन्यन्न दृश्यते ॥१८॥ असंकल्पितमेवेह यद् कस्मात्प्रवर्तते । निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत् ॥ १९ ॥ एतया तत्त्वया बुद्ध्या संस्तभ्यात्मानमात्मना । व्याहतेऽप्यभिषेके मे परि-

तापो न विद्यते ॥ २० ॥ तस्मादपरितापः संस्त्वमप्यनुविधाय माम् । प्रतिसंहारय क्षिप्रमाभिषेचनिकीं क्रियाम् ॥२१ ॥नचैव लक्ष्मण संतापं कार्षीर्लक्ष्म्या विपर्यये । राज्यं वा वनवासो वा वनवासो महोदयः ॥ २२ ॥ न लक्ष्मणास्मिन्मम राज्यविघ्ने माता यवीयस्यभिशङ्कितव्या । दैवाभिपन्ना न पिता कथंचिज्जानासि दैवं हि तथाप्रभावम् ॥ २३ ॥

टीका–कौन दैव के साथ लक्ष्मण ! युद्ध कर सकता है, जिसका पता बिना फल के कुछ नहीं लगता है ।१८। बड़े प्रयत्न से आरम्भ किये हुए कार्य को रोककर जो चिन्तन न किया हुआ ही अकस्मात प्रवृत्त होता है, निःसन्देह वह दैव का फल है ।१९। इस सच्ची बुद्धि द्वारा आत्मा से आत्मा को थामकर अभिषेक के दूर होने पर भी मुझे सन्ताप नहीं है ।२०। इसलिये तू भी सन्ताप रहित होकर मेरे अनुसार चलकर इस अभिषेक के कर्म को जल्दी दूर कर ।२१। और मत हे लक्ष्मण ! लक्ष्मी के उलट फेर में सन्ताप कर, राज्य वा वनवास इन दोनो में से वनावास ही बड़े फलवाला है ।२२। हे लक्ष्मण ! मेरे इस राज्यविघ्न में छोटी माता पर शङ्का मत कर, वह दैव के वस में है । और पिता पर भी कोई शंका न कर, तू जानता ही है, दैवका प्रभाव ऐसाही है।२३।

सर्ग २३ (श्लो० २३) लक्ष्मण का अपने ऊपर भरोसा

मूल–इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽवाक्शिरा इव । ध्यात्वा मध्यं जगामाशु सहसा दुःखहर्षयोः ॥१॥ तदा तु बध्वा भ्रुकुटीं भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः । निःशश्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥२॥ तस्य दुष्प्रतिवीक्ष्यं तद् भ्रुकुटीसहितं तदा । बभौ क्रुद्धस्य सिंहस्य मुखस्य सदृशं मुखम् ॥३॥ तिर्यगूर्ध्वं शरीरे च पातयित्वा शिरो-

धराम । अग्राक्ष्णा वीक्षमाणस्तु तिर्यग्भ्रातरमब्रवीत् ॥४॥

टीका—राम के ऐसा कहते हुए लक्ष्मण नीचे सिर करके सोचकर, मन से दुःख और हर्ष के मध्य को प्राप्त हुआ। (राम का धर्म में धैर्य देखकर हर्ष, और राज्यभ्रंश देखकर दुःख)।१। तब वह नर-श्रेष्ठ ! भवों के मध्य में भृकुटी बान्धकर इसतरह सांस लेने लगा, जैसे क्रुद्ध किया हुआ बिल में स्थित महासर्प ॥२॥ उसका वह भृकुटी सहित मुख, जिसके सामने दृष्टि नहीं ठहर सक्ती, तब क्रुद्ध हुए शेर के मुख के सदृश शोभा पाता हुआ ॥ ३ ॥ ग्रीवा को टेढ़ा और ऊपरकी ओर फेरकर, नेत्र के अग्रभाग से भाईको तिरछा देखता हुआ यह बोला । ४ ।

मूल—कथं ह्येतदसंभ्रान्तस्त्वद्विधो वक्तुमर्हति । किं नाम कृपणं दैव-मशक्तमभिशंससि ॥५॥ कथं त्वं कर्मणा शक्तः कैकेयीवशवर्तिनः। करिष्यसि पितुर्वाक्यमधर्मिष्ठं विगर्हितम् ॥६॥ यद्यपि प्रतिपत्तिस्ते दैवी चापि तयोर्मतम्। तथाप्युपेक्षणीयं ते न मे तदपि रोचते ॥७॥ विक्लवो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते । वीराः संभावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ॥८॥

टीका—कैसे न घबराने वाला आप जैसा पुरुष यह बात कह सकता है, आप किस लिये इस बेचारे असमर्थ दैव की स्तुति करते हैं ॥५॥ कैसे आप कर्म से समर्थ होकर कैकेयी के वशवर्त्ती पिता के अधर्मिष्ठ निन्दित वाक्य को करेंगे ।६। यद्यपि आपके मतसे उनकी यह बुद्धि दैव से की हुई हो, तौ भी आपका उपेक्षा करना मुझे पसन्द नहीं है ।७। जो घबरा जानेवाला है, वीर्यहीन है, वही दैव के पीछे चलता है, अपने आत्मा का मान करनेवाला वीर पुरुष दैव का सेवन नहीं करते हैं । ८ ।

मूल—दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् । न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति ॥९॥ द्रक्ष्यन्ति त्वद्य दैवस्य पौरुषं पुरुषस्य च । दैवमानुषयोरद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति ॥१०॥ अद्य मे पौरुषहतं दैवं द्रक्ष्यन्ति वै जनाः । यैर्दैवादाहतं तेऽद्य दृष्टं राज्याभिषेचनम् ॥११॥ अत्यङ्कुशमिवोद्दामं गजं मदजलोद्धतम् । प्रधावितमहं दैवं पौरुषेण निवर्तये ॥१२॥

टीका—जो अपने पौरुष से दैव को दूर करने को समर्थ है, वह दैव से अपने अर्थ की हानि करके दुःखी नहीं होता है । ९ । आज लोग दैव का और पुरुष के पौरुष का बल देखेंगे. आज दैव और मानुष का स्वरूप प्रकट होगा ।१०। आज वही लोग मेरे पौरुष से दैव को हत हुआ देखेंगे, जिन्होंने आज तेरे राज्याभिषेक को दैव से विघ्नित हुआ देखा है ।११। आज मैं अङ्कुश से बेपरवाह हो, ज़ञ्जीर को तोड़कर भागते हुए मदमत्त हाथी की तरह भागे हुए दैव को अपने पौरुष से लौटाता हूं । १२ ।

मूल—अहं तदाशां धक्ष्यामि पितुस्तस्याश्च या तव । अभिषेकविघातेन पुत्रराज्याय वर्तते ॥१३॥ प्रतिजाने च ते वीर माभूवं वीरलोकभाक् । राज्यं च तव रक्षेयमहं वेलेव सागरम् ॥१४॥ मङ्गलैरभिषिञ्चस्व तत्र त्वं व्यापृतो भव । अहमेको महीपालानलं वारयितुं बलात् ॥१५॥ न शोभार्थाविमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे । नासिराबन्धनार्थाय न शराः स्तम्भहेतवः ॥ १६ ॥

टीका—मैं पिता की उस आशा को और उस (माता) की आशा को जला दूंगा, जो तेरे अभिषेक को हटाकर पुत्र के राज्य के लिये प्रवृत्त हुई है ॥१३॥ हे वीर ! प्रतिज्ञा करता हूं, कि जैसे समुद्र मर्यादा को पालता है, वैसे तेरे राज्य की रक्षा करूंगा, अ-

न्यथा मैं वीरलोक का भागी न होऊं ॥१४॥ आप मङ्गलकार्यों से अपने आपके अभिषेक करने के कार्य्य में लगें, मैं अकेला अपने बल से सब राजों के रोकने के समर्थ हूं ॥१५॥ मेरी यह दोनों भुजाएं शोभा के लिये नहीं हैं, धनुष भूषण के लिये नहीं, तलवार बांधने के लिये नहीं, तीर थामने के लिये नहीं ॥१६॥

मूल—अमित्रमथनार्थाय सर्वमेतच्चतुष्टयम् । न चाहं कामयेऽत्यर्थं यः स्याच्छत्रुर्मतो मम ॥१७॥ खड्गनिष्पेषनिष्पिष्टैर्गहना दुश्चरा च मे । हस्त्यश्वरथिहस्तोरुशिरोभिर्भविता मही ॥१८॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणे प्रगृहीतशरासने । कथं पुरुषमानी स्यात्पुरुषाणां मयि स्थिते ॥१९॥ अद्य मेऽस्त्रप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति । राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥ २० ॥ अद्य चन्दनसारस्य केयूरामोक्षणस्य च । वसूनां च विमोक्षस्य सुहृदां पालनस्य च ॥ २१ ॥ अनुरूपाविमौ बाहू राम कर्म करिष्यतः। अभिषेचनविघ्नस्य कर्तॄणां ते निवारणे ॥ ॥ २२ ॥ ब्रवीहि कोऽद्यैव मया वियुज्यतां तवासुहृत्प्राणयशः सुहृज्जनैः। यथा तवेयं वसुधा वशा भवेत्तथैव मां शाधि तवास्मि किंकरः ॥२३॥ विसृज्य बाष्पं परिसान्त्व्य चासकृत्स लक्ष्मणं राघववंशवर्धनः। उवाच पित्रोर्वचने व्यवस्थितं निबोध मामेष हि सौम्य सत्पथः ॥ २४ ॥

टीका—यह चारों के चारों शत्रुओं के दमन के लिये हैं, जो मेरा शत्रु माना गया है,उसकी मैं देर तक स्थिति नहीं चाहता हूं॥१७॥ मेरी तलवार के आघातों से टुकड़े हुए हाथियों के सूंड,घोड़ों के जांघ और रथियों के सिरों से पृथिवी गहना और दुश्चरा होगी ॥१८॥ गोह का दस्ताना पहन,धनुष पकड़कर पुरुषों के मध्य में मेरे खड़ा होने पर कौन पुरुषमानी होसकता है ? ॥ १९ ॥ आज

मेरे अस्त्रों के सामर्थ्य का प्रभाव हे प्रभो ! राजा की अप्रभुता और आपकी प्रभुता करने के लिये समर्थ होगा ॥ २० ॥ आज हे राम ! यह दोनों भुजाएं चन्दन के लेप के, बाहुबन्द धारने के, धन के त्याग के, और सुहृदों के पालन के योग्य कर्म करेंगी, जब कि तेरे अभिषेक के विघ्नकारियों को परे हटा देंगी ॥२१,२२॥ कहो कौन ऐसा तेरा शत्रु है, जिसको प्राण यश और सुहृद्जनों से अभी वियुक्त करदूं, जिससे कि यह पृथिवी तेरे वश में हो, वैसे मुझे शासन कर, मैं तेरा नौकर हूं॥२३॥ (यह सब सुन) रघुवंश का बढ़ानेवाला (राम) लक्ष्मण के आंसू पोंछकर और बार २ तसल्ली देकर कहने लगा, मुझे पिता के वचन में ठहरा हुआ जान, हे सौम्य यही भलों का मार्ग है ॥ २४॥

सर्ग २३ (व० २४) माता को प्रेरणा

मूल—तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्निर्देशपालने । कौसल्या बाष्पसंरुद्धा वचो धर्मिष्ठमब्रवीत् ॥१॥ अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः । मयि जातो दशरथात्कथामुञ्छेन वर्तयेत् ॥ २ ॥ यस्य भृत्याश्च दासाश्च मृष्टान्यन्नानि भुञ्जते । कथं स भोक्ष्यतेऽनाथो वने मूलफलान्ययम् ॥३॥ क एतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वा कस्य वा न भवेद्भयम् । गुणवान्दयितो राज्ञः काकुत्स्थो यद्विवास्यते ॥ ४ ॥

टीका—पिता की आज्ञापालन में उसे निश्चित देखकर आंसुओंसे रुके हुए कण्ठवाली कौसल्या धर्मात्मा (राम) को यह बचन बोली ॥१॥ दुःखों को न देखा हुआ, धर्मात्मा, सब भूतों को मीठा बोलने वाला, दशरथ से मुझमें उत्पन्न होकर कैसे उञ्छ से (दाना२ चुनकर) जीविका करेगा ॥२॥ जिसके भृत्य और दास उत्तम बने हुए अन्न खाते हैं, कैसे वह वन में अनाथ हो फलमूल खाएगा ॥ ३ ॥ कौन

इस बात पर विश्वास करेगा, वा किसको सुनकर भय नहीं होगा, कि गुणवान् राजा का प्यारा राम निकाला गया है ॥ ४ ॥

मूल—नूनं तु बलवांल्लोके कृतान्तः सर्वमादिशन्। लोके रामाभिरामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यसि ॥५॥ त्वया विहीनामिह मां शोकाग्निरतुलो महान्। प्रधक्ष्यति यथा कक्ष्यं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥६॥ कथं हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तन्नानुगच्छति। अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि॥७॥तथा निगदितं मात्रा तद्वाक्यं पुरुषर्षभः। श्रुत्वा रामोऽब्रवीद्वाक्यं मातरं भृशदुःखिताम् ॥ ८ ॥

टीका—निःसन्देह लोक में सब कुछ (सुख दुःख आदि की) आज्ञा देता हुआ दैव बलवान् है, जब कि लोक में सब का प्यारा हे राम! तू वन को जाएगा ॥५॥ तुझ से वियुक्त हुई मुझको अतुल महान् शोकाग्नि दग्ध करेगा, जैसे ग्रीष्म में अग्नि जङ्गल को दग्ध करता है ॥६॥ कैसे धेनु जाते हुए अपने बछड़े के पीछे नहीं जाती है,मैं तेरे पीछे जाऊंगी,हे पुत्र!जहां तू जाएगा ॥७॥माता से कहे हुए इस वाक्य को सुनकर पुरुषश्रेष्ठ राम अत्यन्त दुःखी हुई माता से यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते। भवत्या च परित्यक्तो न नूनं वर्तयिष्यति ॥९॥ भर्तुः पुनःपरित्यागो नृशंसः केवलं स्त्रियाः। स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥१०॥यावज्जीवति काकुत्स्थः पिता मे जगतीपतिः। शुश्रूषा क्रियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः॥११॥मया चैव भवत्या च कर्तव्यं वचनं पितुः।राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः ॥ १२ ॥ इमानि तु महारण्ये विहृत्य नव पञ्च च। वर्षाणि परमप्रीत्या स्थास्यामि वचने तव॥१३

टीका—हे माता कैकेयी से ठगा हुआ राजा मेरे बन चले जाने

पर आप से छोड़ा हुआ निःसन्देह जीता नहीं रहेगा ॥९॥ और भर्त्ता का त्याग स्त्री को निरा क्रूर कर्म है,ऐसा निन्दित कर्म आप को मनमें भी नहीं लाना चाहिये ॥ १० ॥ पृथिवी का पति मेरा पिता काकुत्स्थ जब तक जीता है, तब तक आपको उन्हीं की सेवा करनी चाहिये यह सनातन धर्म है ॥ ११ ॥ तुझको और आपको पिता का वचन पालना चाहिये, राजा भर्त्ता है,गुरु है, श्रेष्ठ है, सब का मालिक है,प्रभु है ॥१२॥ यह चौदह बरस महा वनमें सैर करके फिर परम प्रेमके साथ तेरी आज्ञा में ठहरूंगा१३

मूल--एवमुक्ता प्रियं पुत्रं बाष्पपूर्णानना तदा । उवाच परमार्ता तु कौसल्या सुतवत्सला ॥१४॥ नय मामपि काकुत्स्थ वनं वन्यां मृगीमिव । यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरपेक्षया ॥ १५ ॥ तां तथा रुदतीं रामोऽरुदन्वचनमब्रवीत् । जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ॥१६॥ भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः । न ह्यनाथा वयं राज्ञा लोकनाथेन धीमता ॥१७॥ भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः । भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा ॥१८ यथा मयि तु निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन पार्थिवः । श्रमं नावाप्नुयात्किञ्चिदप्रमत्ता तथा कुरु ॥१९॥ दारुणश्चाप्ययं शोको यथैनं न विनाशयेत् । राज्ञो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ॥ २० ॥

टीका—ऐसे कही हुई आंसुओं से पूर्ण मुखवाली सुतवत्सला कौसल्या अत्यन्त पीड़ित हुई प्यारे पुत्र से बोली ॥१४॥ हे राम ! यदि पिता की अपेक्षा से जाने का निश्चय किया है, तो मुझे भी जङ्गली हरिणीकी तरह बन को लेचल ॥१५॥ इसप्रकार रोती हुई से राम न रोता हुआ यह वचन बोला । स्त्री को जीते जी भर्त्ता देवता है, भर्त्ता प्रभु है॥१६॥आपका भी और मेरा भी राजा आज

मालिक है। उस सारे लोक के नाथ बुद्धिमान् राजा के होते हुए हम अनाथ नहीं हैं ॥१७॥ धर्मात्मा भरत भी जो सब से प्रिय बोलनेवाला है, वह आपके अनुसार चलेगा, वह सदा धर्मरत है ॥ १८ ॥ जिसतरह से कि मेरे चले जाने पर राजा पुत्रशोक से कुछ दुःख न उठाए, वैसे सावधान होकर करो ॥१९॥ यह दारुण शोक जिस तरह इस को नाश न करे, वैसे आप एकचित्त होकर वृद्ध राजा का लगातार हित आचरण करें ॥२०॥

मूल--व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा । भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत् ॥२१॥ भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् । अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात् ॥ २२ ॥ शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता । एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः ॥२३॥ अग्निकार्येषु च सदा सुमनोभिश्च देवताः । पूज्यास्ते मत्कृते देवि ब्राह्मणाश्चैव सुव्रताः ॥ २४ ॥ एवं कालं प्रतीक्षस्व ममागमनकांक्षिणी । नियता नियताहारा भर्तृशुश्रूषणे रता ॥२५॥ प्राप्स्यसे परमं कामं मयि पर्यागते सति । यदि धर्मभृतां श्रेष्ठो धारयिष्यासि जीवितम् ॥ २६ ॥

टीका—जो परम उत्तम नारी व्रत उपवास में लगी हुई पति के अनुसार नहीं चलती है, वह पाप गति वाली होती है ॥२१॥ भर्त्ता की सेवा से ही नारी उत्तम स्वर्ग को प्राप्त होती है, चाहे नमस्कार से रहित और देवपूजन से निवृत्त हो ॥२२॥ भर्ता के प्रिय हित में रत होकर सेवा ही करे, यह धर्म पूर्वकाल में वेद में देखा गया है और स्मृति में माना गया है ॥२३॥ मेरे लिए हे देवि ! सदा अग्निकार्यों में पुष्पों से देवताओं और अच्छे व्रतों वाले ब्राह्मणों को पूजना ॥२४॥ इस प्रकार नियमों वाली,

नियत आहार वाली, भर्ता की सेवा में रत हुई मेरा आना चाहती हुई तू समय की प्रतीक्षा कर ॥२५॥ मेरे लौट आने पर अपनी परम कामना को प्राप्त होगी, यदि धर्मधारियों में से श्रेष्ठ (राजा) जीवन को धारेगा ॥२६॥

सर्ग २४ (व० २४, २५,) माता का राम को विदा देना

मूल--एवमुक्ता तु रामेण बाष्पपर्याकुलेक्षणा । कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रवीत् ॥१॥ गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तु सदा विभो । पुनस्त्वयि निवृत्ते तु भविष्यामि गतक्लमा ॥२॥ प्रत्यागते महाभागे कृतार्थे चरितव्रते । पितुरानृण्यतां प्राप्ते स्वप्स्ये परमं सुखम् ॥३॥ गच्छेदानीं महाबाहो क्षेमेण पुनरागतः । नन्दयिष्यसि मां पुत्र साम्ना वाक्येन चारुणा ॥४॥ अपीदानीं स कालः स्याद्वनात् प्रत्यागतं पुनः । यत्त्वां पुत्रक पश्येयं जटावल्कलधारिणम् ॥५॥

टीका--राम से ऐसे कही हुई आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली पुत्र शोक से पीड़ित कौसल्या राम से यह वचन बोली ।१। जा हे पुत्र ! तेरा सदा कल्याण हो, फिर तेरे लौटने पर मेरे सारे क्लेश दूर होंगे ।२। अब हे महाभाग अपने व्रत को सम्पूर्ण कर पिता का अनृणी हो कृतार्थ होकर तेरे लौटने पर मैं सुखकी नींद सोऊंगी ॥३॥ जा अब हे पुत्र ! हे महाबाहो ! कुशल से फिर वापिस आकर हे पुत्र मुझे मीठे सुन्दर वाक्य से आनन्दित करना ॥ ४ ॥ हां अब वह समय आवे, जब कि बन से फिर वापिस आए हुए तुझे हे पुत्र ! जटा वल्कल धारण किये हुए देखूंगी ॥ ५ ॥

मूल--सा विनीय तमायासमुपस्पृश्य जलं शुचिः । चकार माता

रामस्य मंगलानि मनस्विनी ॥६॥+न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम । शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥७॥ यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च । स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥८॥ यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता । तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा ॥९॥

टीका—फिर वह मनस्विनी माता उस सारे खेद को हटाकर पवित्र जल से आचमन करके राम का मङ्गल करने लगी ॥ ६ ॥ तुझे रोका नहीं जा सकता है, हे रघुवर ! अब जा, सत्पुरुषों के मार्ग पर चल, और शीघ्र लौटकर आ ॥ ७ ॥ धैर्य से और नियम से जिस धर्म का तू पालन करता है, वह धर्म हे राघवशार्दूल ! तेरी रक्षा करे ॥ ८ ॥ जो अस्त्र बुद्धिमान् विश्वामित्र ने तुझे दिये हैं, वह सद्गुणों से युक्त तेरी सदा रक्षा करें ॥ ९ ॥

मूल--पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा । सत्येन च महाबाहो चिरं जीवाभिरक्षितः ॥१०॥ लोकपालाश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा । ऋतवः षट् च ते सर्वे मासः सम्वत्सरः क्षपाः ॥११॥ दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा । श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च पातु त्वां पुत्र सर्वतः॥१२॥ आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः । सर्वसम्पत्तयो राम स्वस्तिमान् गच्छ पुत्रक ॥१३॥

टीका—पिता की सेवा से हे पुत्र ! तथा माता (यहां कैकेयी से अभिप्राय है) की सेवा से और सत्य के पालन से रक्षा किया हुआ हे महाबाहो ! चिरंजीव ॥ १० ॥ इन्द्रादि सारे लोकपाल, ऋतु, पक्ष, महीने, बरस, रातें ॥ ११ ॥ दिन, और मुहूर्त सदा तुझे कल्याण दें, स्मृति धैर्य और धर्म हे पुत्र ! सब तरफ से तेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ मार्ग तेरे लिये कल्याणकारी हों, तेरे पराक्रम फलें,

तेरे लिये सारी सम्पत्तियें हों,हे पुत्र राम !कल्याण युक्त हुआ जा

मूल–ज्वलनं समुपादाय ब्राह्मणेन महात्मना । हावयामास विधिना राममङ्गलकारणात् ॥ १४ ॥ उपाध्यायः सविधिना हुत्वा शान्तिमनामयम् । हुतहव्यावशेषेण बाह्यं बलिमकल्पयत् ॥ १५ ॥ मधुदध्यक्षतघृतैः स्वस्तिवाच्यं द्विजांस्ततः । वाचयामास रामस्य वने स्वस्त्ययनक्रियाम् ॥१६ ॥ आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी । अवदत्पुत्रसिद्धार्थो गच्छ राम यथासुखम् ॥ १७ ॥

टीका–फिर (होम के लिये) अग्नि तय्यार करके राम के मङ्गल के अर्थ महात्मा ब्राह्मण से विधि सहित हवन करवाती भई ॥१४॥ उपाध्याय ने विधिवत् हवन करके बचे हुए हवन द्रव्य से (होम स्थान से) बाहर बलिकर्म किया ॥ १५ ॥ तब स्वास्तिवाचन के उद्देश्य से शहद, दही, घी और अक्षत द्वारा ब्राह्मणों से वन में राम का स्वस्त्ययन (कल्याण से रहने के लिये स्वास्तिवाचन) करवाया ॥१६॥ फिर वह यशस्विनी राम को झुकाकर माथे पर चूमकर और कण्ठ लगाकर बोली, पुत्र राम ! सफल प्रयोजनों वाला हुआ सुख से जा ॥ १६ ॥

मूल–मङ्गलैरुपसम्पन्नो वनवासादिहागतः । वध्वाश्च मम नित्यं त्वं कामान् वर्धय याहि भोः॥१८॥इतीव चाश्रुप्रतिपूर्णलोचना समाप्य च स्वस्त्ययनं यथाविधि । प्रदक्षिणं चापि चकार राघवं पुनः पुनश्चापि निरीक्ष्य सस्वजे ॥ १९ ॥ तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो निपीड्य मातुश्चरणौ पुनः पुनः । जगाम सीतानिलयं महायशाःस राघवः प्रज्वलितः स्वया श्रिया ॥ २० ॥

टीका–मङ्गलों से युक्त हुआ वनवास से फिर यहां आकर मेरी वधू की कामनाओं को वर्धितकर, हे पुत्र जा ॥ १८ ॥ इसप्रकार

आंसुओं से पूर्ण नेत्रोंवाली,(माता)यथाविधि स्वस्त्ययन को समाप्त करके राम की प्रदक्षिणा करती भई * और फिर २ उस को घुट कर कण्ठ लगाती भई ॥१९॥ उस देवी से प्रदक्षिणा किया हुआ माता के चरणों को पकड़ कर नमस्कार करके वह महा-यशस्वी अपनी शोभा से चमकता हुआ सीता के घर गया ॥२०॥

सर्ग २५ (व० २६)रामका सीता से बनवास की विदा मांगना

मूल–वैदेही चापि तत्सर्वं न शुश्राव तपस्विनी। तदेव हृदि तस्याश्च यौवराज्याभिषेचनम् ॥१॥ देवकार्यं स्वयं कृत्वा कृतज्ञा हृष्टचेतना। अभिज्ञा राजधर्माणां राजपुत्री प्रतीक्षते ॥२॥ प्रविवेशाथ रामस्तु स्ववेश्म सुविभूषितम्। प्रहृष्टजनसंपूर्णं ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥३॥ अथ सीता समुत्पत्य वेपमाना च तं पतिम्। अपश्यच्छोकसंतप्तं चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियम् ॥४॥ तां दृष्ट्वा स हि धर्मात्मा न शशाक मनोगतम्। तं शोकं राघवः सोढुं ततो विवृततां गतः ॥५॥

टीका–सीता बेचारी ने भी वह सब नहीं सुना था, उस के हृदय में वही यौवराज्य का अभिषेक था ॥ १ ॥ कृतज्ञ (परमात्मा के दिये राज्य से परमात्मा की कृतज्ञ) सीता प्रसन्न चित्त हो स्वयं देवकार्य करके राज्यधर्मों के जानने वाली वह राजपुत्र की प्रतीक्षा में थी ॥ २ ॥ उधर राम उस सुन्दर सजे हुए प्रसन्नजनों से भरे हुए मन्दिर में लज्जा से कुछ नीचे मुख किये हुए प्रविष्ठ हुआ ॥ ३ ॥ तब सीता जल्दी उठकर कांपती हुई पति को शोक

---

*राम के गिर्द घूमी ! माता से प्रदक्षिणा करना रक्षा के लिये है (तिलक)।

से संतप्त और चिन्ता से व्याकुल इन्द्रियोंवाला देखती भई*॥४॥ उस को देख कर धर्मात्मा राघव अपने मनोगत शोक को नहीं सहसका इस से (वह शोक) प्रकट हो गया ॥५॥

मूल—विवर्णवदनं दृष्ट्वा तं प्रस्विन्नममर्षणम् । आह दुःखाभिसंतप्तं किमिदानीमिदं प्रभो ॥६॥ अद्य बार्हस्पतः श्रीमान्युक्तः पुष्येण राघव । प्रोच्यते ब्राह्मणैः प्राज्ञैः केन त्वमसि दुर्मनाः॥७॥ न ते शत शलाकेन जलफेननिभेन च । आवृतं वदनं वल्गु च्छत्रेणाभिविराजते ॥८॥ व्यजनाभ्यां च मुख्याभ्यां शतपत्रनिभेक्षणम् । चन्द्रहंसप्रकाशाभ्यां वीज्यते न तवाननम् ॥९॥ वाग्मिनो वन्दिनश्चापि प्रहृष्टास्त्वां नरर्षभ । स्तुवन्तो नाद्य दृश्यन्ते मंगलैः सूतमागधाः ॥१०॥

टीका—सीता ने उस को देखा, कि चेहरे पर रौनक नहीं, और पसीना आ रहा है, (किसी अन्तरीय दुःख को) न सहारते हुए की तरह है, तब वह दुःख से सन्तप्त हुई बोली, हे प्रभो ! यह अब क्या है ॥ ६ ॥ आज बृहस्पति देवतावाला पुण्य नक्षत्र बुद्धिमान् ब्राह्मणों ने कहा है (जो आप के अभिषेक का दिन है) तो फिर आप क्यों दुर्मन है ॥७॥आपका सुन्दर मुख बहुत सलाईयों वाले, जल की झाग के तुल्य श्वेत छत्र से नहीं ढका हुआ है ॥८॥ चन्द्र और हंसकी तरह श्वेत दो मुख्य चंवर आप के मुखकमल पर नहीं झूल रहे हैं ॥९॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुन्दर वाणी वाले वन्दी सूत और

---

* सीता बड़े चाव से उठी, पर राम के साथ राजचिन्ह न देख कर कांप गई, सीता की यह दशा देख, और यह ध्यान कर, कि इतने लम्बे वियोगमें इस पतिप्राणा का क्या हाल होगा, रामके चेहरे पर भी सीता के दुःख का ध्यान कर शोक आगया ।

मागध प्रसन्न हो मङ्गलों से तेरी स्तुति करते हुए नहीं दीखते हैं

मूल—न त्वां प्रकृतयः सर्वाः श्रेणीमुख्याश्च भूषिताः । अनुव्रजितुमिच्छन्ति पौरजानपदास्तथा ॥११॥ चतुर्भिर्वेगसम्पन्नै र्हयैः काञ्चनभूषणैः । मुख्यः पुष्परथो युक्तः किं न गच्छति तेऽग्रतः ॥१२॥ न हस्ती चाग्रतः श्रीमान्सर्वलक्षणपूजितः । प्रयाणे लक्ष्यते वीर कृष्णमेघगिरिप्रभः ॥१३॥ न च काञ्चनचित्रं ते पश्यामि प्रियदर्शन । भद्रासनं पुरस्कृत्य यान्तं वीर पुरःसरम् ॥१४॥ अभिषेको यदा सज्जः किमिदानीमिदं तव । अपूर्वो मुखवर्णश्च न प्रहर्षश्च लक्ष्यते ॥१५॥

टीका—सारे अहलकार और श्रेणियों के मुखिये पुर और देश के लोग सज धजकर आदर के साथ आपके पीछे नहीं चल रहे हैं ॥ ११ ॥ सुवर्ण से भूषित, वेगवाले चार घोड़ों से युक्त मुखिया पुष्परथ तेरे आगे २ क्यों नहीं चल रहा है ॥ १२ ॥ न ही हे वीर! अच्छे लक्षणों वाला काले मेघ और पर्वत के तुल्य श्रीमान् हाथी चलने में तेरे आगे चल रहा है ॥ १३ ॥ और न ही हे प्रियदर्शन ! वीर पुरुषों से आदर किया हुआ सुवर्ण से चित्रित तेरा भद्रासन उठाकर आगे चलता हुआ किसी पुरुष को देखती हूं ॥ १४ ॥ जब अभिषेक तय्यार था, तो क्या यह तेरे मुख का वर्ण (मुख की कान्ति) अपूर्व (आगे न देखी हुई) है, और प्रहर्ष नहीं प्रतीत होता है ॥ १५ ॥

मूल—इतीव विलपन्तीं तां प्रोवाच रघुनन्दनः । सीते तत्रभवांस्तातः प्रव्राजयति मां वनम् ॥ १६ ॥ कुले महति संभूते धर्मज्ञे धर्मचारिणि । शृणु जानकि येनेदं क्रमेणाभ्यागतं मम ॥ १७ ॥ राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन च । कैकेय्यै मम मात्रे तु पुरा दत्तौ

महावरौ ॥ १८ ॥ तयाद्य मम सज्जेऽस्मिन्नभिषेके नृपोद्यते । प्रचोदितः स समयो धर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥ १९ ॥ चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यं दण्डके मया । पित्रा मे भरतश्चापि यौवराज्ये नियोजितः ॥ २० ॥ सोऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् ॥

टीका–इस प्रकार विलाप करती हुई उसको राम ने कहा, हे सीता ! पूजनीय पिता मुझे वन को भेजते हैं ॥ १६ ॥ हे बड़ी कुल में उत्पन्न हुई, हे धर्म जानने वाली, हे धर्म पर चलने वाली जानकी! सुन, जिस क्रम से यह मुझे प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ सच्ची प्रतिज्ञावाले राजा पिता दशरथ ने मेरी माता कैकयी को पहिले दो बड़े वर दिये थे ॥ १८ ॥ उसने आज जबकि राजा से मेरा अभिषेक तैयार हुआ, तो वह सङ्केत याद दिलाया और धर्म्म से उसे जीत लिया १९॥ सो मैंने चौदह वर्ष वन में रहना है, और मेरे पिता ने भरत को यौवराज्य में नियुक्त किया है ॥ २० ॥ सो मैं निर्जन वन को रवाना हुआ तुझे पूछने के लिये आया हूं ॥ २१ ॥

मूल–तस्मै दत्तं नृपतिना यौवराज्यं सनातनम् । स प्रसाद्यस्त्वया सीते नृपतिश्चैव विशेषतः ॥ २२ ॥ अहं चापि प्रतिज्ञां तां गुरोः समनुपालयन् । वनमद्यैव यास्यामि स्थिरीभव मनस्विनि ॥ २३ ॥ याते च मयि कल्याणि वनं मुनिनिषेवितम् । व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयाऽनघे ॥ २४॥ कल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि । वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः ॥ २५ ॥ माता च मम कौसल्या वृद्धा सन्तापकर्शिता । धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः संमानमर्हति ॥ २६ ॥ वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः । स्नेहप्रणयसंभोगैः समा हि मम मातरः ॥ २७ ॥ भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः । त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥

विप्रियं च न कर्तव्यं भरतस्य कदाचन।स हि राजा च वैदेहि देशस्य च कुलस्य च ॥ २९ ॥ अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि । यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित्तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम ॥ ३० ॥

टीका—उस को राजा ने सनातन यौवराज्य दिया है सो हे सीते ! उसे प्रसन्न रखना,और राजा को उससे भी बढ़कर ॥२२॥ मैं भी पिता की उस प्रतिज्ञा को पालन करता हुआ आज ही बनको जाऊंगा, हे मनस्विनि! स्थिर हो॥२३॥ हे कल्याणि मुनियों से सेवित वन को चले जाने पर तूने हे निष्पाप सदा व्रतउपवासपरायण रहना ॥ २४ ॥ सवेरे उठकर यथाविधि देवताओं की पूजा करके मेरे पिता राजा दशरथ की वन्दना करना ॥ २५ ॥ और मेरी वृद्धा माता कौशल्या सन्ताप से दुर्बल हुई धर्म को ही आगे करके तुझ से संमान के योग्य है ॥ २६ ॥ और मेरी बाकी माताओं को भी सदा वन्दना करना, क्योंकि स्नेह प्रणय और सेवा में मुझे सदा सारी माताएं बराबर हैं ॥२७॥ भरत और शत्रुघ्न को भी तूने विशेष करके भाई और पुत्र के तुल्य देखना वह दोनों मुझे प्राणों से अधिक प्यारे हैं ॥२८॥ और भरत का कभी विप्रिय नहीं करना, क्योंकि वह देश का और हमारे कुल का राजा है, प्रभु है ।२९। हे प्रिये मैं महावन को जाऊंगा, हे भामिनि ! तुम यहीं बसो और जैसाकि तूने आगे मेरे किसी वचन को झूठा नहीं किया है, वैसे ही तू यह मेरा वचन पूरा कर॥३०॥

सर्ग २६ (व० २७) सीता की बिनती

मूल--एवमुक्ता तु वैदेही प्रियार्हा प्रियवादिनी । प्रणयादेव संक्रुद्धा भर्त्तारमिदमब्रवीत् ।१। किमिदं भाषसे राम वाक्यं लघुतया ध्रुवम्

त्वया यदपहास्यं मे श्रुत्वा नरवरात्मज ॥२॥+आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा। स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वंस्वं भाग्यमुपासते ॥३॥+भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ। अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥४॥

टीका—प्रिय बोलने वाली और प्रिय के योग्या सीता को जब यह कहा गया, तो अतिप्रेम से ही क्रुद्ध हुई भर्त्ता से यह बोली ॥१॥ हे राम ? क्या यह निश्चित हलका वाक्य कहते हो, हे नरवरात्मज ! जिस वाक्य को तुझ से सुन कर मुझे हंसी आती है ॥२॥ हे आर्य्य ! पुत्र ! पिता माता भाई पुत्र और स्नुषा अपने २ पुण्यों को भोगते हुए अपने भाग्य का सेवन करते हैं ॥३॥ पर हे पुरुषवर ! वह केवल भार्या (स्त्री) है, जो भर्त्ता के भाग्य को प्राप्त होती है, इस लिए 'बन में बसो' यह आज्ञा मुझे भी दी ही गई है ॥४॥

मूल—न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः। इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ॥५॥+यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव । अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नन्ती कुशकण्टकान् ॥६॥+ प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा । सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते ॥७॥+अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् । नास्मि संप्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ८

टीका—न पिता न पुत्र न माता न सखीजन न अपना आप किन्तु इस लोक और परलोक में नारी का एक पति ही सदा गति है ॥५॥ हे राम ! आप यदि अभी दुर्गम बन को रवाना हुए हैं, तो मैं आप के आगे कुशा और कांटों को मर्दन करती हुई चलूंगी ॥६॥ महल की चोटी पर वा आकाश मार्ग से

विमान के ऊपर चढ़कर सब अवस्थाओं में भर्त्ता की पाद छाया हुई ही उत्तम होती है ॥७॥ मुझे माता ने और पिता ने भिन्न २ सम्बन्धों के विषय में पहले ही शिक्षा दी हुई है, अब मुझे कहने की आवश्यकता नहीं, जैसा मुझे वर्तना है ॥८॥

मूल—अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम् । नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलवृकसेवितम्॥९॥+सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः । अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम् ॥१०॥ शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी । सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ॥११॥ त्वं हि कर्तुं वने शक्तो राम संपरिपालनम् । अन्यस्यापि जनस्येह किं पुनर्मम मानद ॥१२॥ साऽहं त्वया गमिष्यामि वनमद्य न संशयः । नाहं शक्या महाभाग निवर्तयितुमुद्यता

टीका—मैं मनुष्यों से वर्जित नाना मृग गणों से भरे हुए, चीते और भेड़ियों से सेवित दुर्गम वन में जाऊंगी ॥ ९ ॥ और बन में ऐसे आनन्द से रहूंगी जैसे पिता के घर में, तीनों लोकों की परवाह न करती हुई, केवल पातिव्रत की परवाह करती हुई ॥ १० ॥ तेरी सदा सेवा करती हुई नियमों वाली ब्रह्मचारिणी होकर हे वीर ! मधु से सुगन्धित बनों में तेरे साथ रमण करूंगी ॥ ११ ॥ हे राम ! आप बन में दूसरे लोगों का भी पालन करने को समर्थ हैं, क्या फिर मेरा हे मानके देनेवाले ! ॥ १२ ॥ आप के साथ आज बन को जाऊंगी इसमें सन्देह नहीं, हे महाभाग तय्यार हुई मुझ को कोई लौटा नहीं सक्ता है ॥ १३ ॥

मूल—फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः । न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा ॥ १४॥+ अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि ॥ १५ ॥ इच्छामि सरितः शैलान्प-

स्वलानि सरांसिच । द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता ॥ १६ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिनीः साधुपुष्पिताः । इच्छेयं सुखिनी द्रष्टुं त्वया वीरेण संगता ॥ १७ ॥ अभिषेकं करिष्यामि तासु नित्यमनुव्रता । सह त्वया विशालाक्ष रंस्ये परमनन्दिनी ॥

टीका—मैं नित्य फल मूल खाऊंगी इसमें संशय नहीं, आप के साथ रहती हुई आप को दुःखी नहीं करूंगी ॥ १४ ॥ आपके आगे २ चलूंगी और आपको खिलाकर खाउंगी ॥ १५ ॥ तुझ बुद्धिमान् नाथ के साथ सर्वत्र निर्भय हुई नदियों पर्वतों तालाबों और बनों को देखना चाहती हूं ॥ १६ ॥ हंस और बतखों से युक्त सुन्दर फूले हुए पद्मों वाली नदियों को हे वीर ! आपके साथ मिलकर सुख से देखना चाहती हूं ॥ १७ ॥ उनमें सदा व्रत युक्त होकर स्नान करूंगी, हे विशालनेत्र ! परम आनन्द से आपके साथ रमण करूंगी ॥ १८ ॥

मूल—स्वर्गेऽपि च विना वासो भविता यदि राघव । त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये ॥ १९ ॥ अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं मृगायुतं वानरवारणैश्च । वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे तवैव पादावुपगृह्य संमता ॥ २० ॥ अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् । नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां नातो मया ते गुरुता भविष्यति ॥ २१ ॥

टीका—हे राघव ! यदि आपके बिना स्वर्ग में भी वास हो, तो हे राम ! मैं उसे भी पसन्द नहीं करती हूं ॥ १९ ॥ मैं मृग वानर और हाथियों से युक्त बड़े दुर्गम बन में जाउंगी, आपके चरणों में संयम से रहती हुई बन में इसतरह रहूंगी, जैसे पिता के घर में ॥ २० ॥ जिसकी भावना आपको छोड़ और कहीं नहीं, जिसका

चित्त आप में अनुरक्त है, जो आपसे वियुक्त होकर मरने के लिये निश्चित है, उस मुझको आप साथ लेचलें, मेरी विनती मानिये, मेरा आप को कोई बोझ नहीं होगा ॥ २१ ॥

सर्ग २७ (व० २८) राम का वनवास के दोष बतलाना

मूल—स एवं ब्रुवतीं सीतां धर्मज्ञां धर्मवत्सलः। न नेतुं कुरुते बुद्धिं वने दुःखानि चिन्तयन् ॥ १ ॥ सान्त्वयित्वा ततस्तां तु बाष्पदूषितलोचनाम्। निवर्तनार्थे धर्मात्मा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥ सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा। इहाचरस्व धर्मं त्वं यथा मे मनसः सुखम् ॥ ३ ॥ सीते विमुच्यतामेषा वनवासकृता मतिः। बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते ॥ ४ ॥ हितबुद्ध्या खलु वचो मयैतदभिधीयते। सदा सुखं न जानामि दुःखमेव सदा वनम् ॥५ ॥

टीका—ऐसा कहती हुई धर्मज्ञा सीता को धर्मवत्सल राम बन में दुःखों का चिन्तन करता हुआ लेजाना नहीं चाहता है ॥ १ ॥ आंसुओं से डुबडुबाते नेत्रोंवाली सीता को फिर तसल्ली देकर उस के हटाने के लिये वह धर्मात्मा यह वाक्य बोला ॥ २ ॥ हे सीते तू महाकुलीना है, और सदा धर्म में रत है, यहां ही धर्मका आचरण कर, जैसे मेरे मन का सुख हो ॥३ ॥ हे सीते ! वनवास के ख्याल को छोड़, गहन बन बड़े दोषों वाला कहा जाता है ॥२॥ हितबुद्धि से मैं तुझे यह बचन कहता हूं, बन में सदा सुख नहीं जानता हूं बन सदा दुःखरूप ही है ॥ ५ ॥

मूल—गिरिनिर्झरसंभूता गिरिनिर्दरिवासिनाम्। सिंहानां निनदा दुःखं श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥६॥ संग्राहाः सरितश्चैव पङ्कवत्यस्तु दुस्तराः। मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥ ७ ॥ लताकण्टकसंकीर्णाः कृकवाकूपनादिताः। निरपाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम् ॥

८ ॥ सुप्यते पर्णशय्यासु स्वयंभग्नासु भूतले। रात्रिषु श्रमखिन्नेन तस्माद्दुःखतरं वनम् ॥ ९ ॥ अहोरात्रं च संतोषः कर्तव्यो नियतात्मना। फलैर्वृक्षावपतितैः सीते दुःखमतो वनम् ॥ १० ॥

टीका—पर्वतों के झरनों से मिलकर प्रभूत हुई, पर्वतों की कन्दरों में रहनेवाले शेरों की गर्जनाएं सुनना दुःखदायी है, इसलिये बन दुःखरूप है ॥ ६ ॥ तेन्दुओं से भरी हुई दलदल वाली नदियें होती हैं, जो कि मत्त हाथियों से भी दुस्तर हैं, इसलिये बन दुःखतर है ॥ ७ ॥ बेलों और कांटों से भरे हुए, जङ्गली कुक्कड़ों से गूंजते हुए मार्ग जल से शून्य बड़े दुःखदायी होते हैं, इसलिये वन दुःखरूप है ॥ ८ ॥ रात के समय श्रम से थककर पृथिवी पर अपने आप टूटे हुई पत्तों की शय्या पर सोना होता है, इसलिये बन दुःखतर है ॥ ९ ॥ और नियतात्मा होकर वृक्षों से अपने आप गिरे हुए फलों पर सन्तोष करना होता है, इसलिये हे सीते! बन दुःखरूप है १० ॥

मूल—अतीव वातस्तिमिरं बुभुक्षा चास्ति नित्यशः। भयानि च महान्त्यत्र अतो दुःखतरं वनम् ॥ ११ ॥ पतङ्गा वृश्चिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह। बाधन्ते नित्यमबले सर्वं दुःखमतो वनम् ॥१२ द्रुमाःकण्टकिनश्चैव कुशाः काशाश्च भामिनि। वने व्याकुलशाखाग्रास्तेन दुःखमतो वनम् ॥ १३ ॥ तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव। विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥ १४ ॥

टीका—प्रबल वायु, अन्धेरा और भूख वहां सदा रहता है, और वहां बड़े भय होते हैं, इसलिये बन दुःखतर है ॥ ११ ॥ कीट पतंग बिच्छु डांस और मच्छर सदा तंग करते हैं, इसलिये हे अबले बन दुःख ही है ॥ १२ ॥ बन में कांटोंवाले वृक्षों की

शाखाएं और कुशा कांही के अग्र एक दूसरे से जकड़े हुए होते हैं (जिनमें से लंघना अतीव कठिन होता है) इसलिये बन दुःखतर है ॥ १३ ॥ सो तुझे बन को नहीं जाना चाहिये, बन तेरे योग्य नहीं, मैं विचारता हुआ तेरे लिये बन को बहुत अधिक दोषों वाला देखता हूं ॥ १४ ॥

सर्ग २८ (व० २९) सीता का उन दोषों को गुण बतलाना

मूल—एतत्तु वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता । प्रसक्ताश्रुमुखी मन्दमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १॥ + ये त्वया कीर्तिता दोषा वने वस्तव्यतां प्रति। गुणानित्येव तान्विद्धि तव स्नेहपुरस्कृतान् ॥२॥ मृगाः सिंहा गजाश्चैव शार्दूलाः शरभास्तथा। चमराः सृमराश्चैव ये चान्ये वनचारिणः ॥ ३ ॥ अदृष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वे ते तव राघव। रूपं दृष्ट्वापसर्पेयुर्भये सर्वे हि बिभ्यति ॥ ४ ॥ + त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया । त्वद्वियोगेन मे राम त्यक्तव्यमिह जीवितम् ॥ ५ ॥

टीका—परसीता राम के इस वचन को सुनकर दुःखित हुई, मुख पर आंसु बहाती हुई धीरे से यह वचन बोली ॥१॥ वनवास के विषय में जो आपने दोष कहे हैं, आपके प्रेम को आगे करके उन सब को गुण ही जान ॥२॥ मृग, शेर, हाथी, चीते, शरभ, चमर और सृमर और जो और भी बनचारी हैं ॥३॥ पहले न देखे हुए तेरे रूप को देखकर हे राघव ! सभी भाग जाएंगे, क्योंकि भय में सभी डरते हैं (आपके शस्त्र उनके भय का हेतु होंगे)॥४॥ मुझे गुरुजन (पिता) की (सदा छाया की तरह भर्ता के अनुगत रहना इस) आज्ञा से आपके साथ अवश्य जाना है, आपके वियोग से हे राम ! मैं जीवन त्याग दूंगी ॥ ५ ॥

मूल—+ वनवासे हि जानामि दुःखानि बहुधा किल । प्राप्यन्ते

नियतं वीर पुरुषैरकृतात्मभिः ॥ ६ ॥ कृतक्षणाहं भद्रं ते गमनं प्रति राघव । वनवासस्य शूरस्य चर्या हि मम रोचते ॥७॥+शुद्धात्मन् प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा । भर्तारमनुगच्छन्ती भर्त्ता हि मम दैवतम्॥८॥ प्रेत्यभावे हि कल्याणः संगमो मे सदा त्वया । श्रुति र्हि श्रूयते पुण्या ब्राह्मणानां तपस्विनाम् ॥९॥ इहलोके च पितृ-भिर्या स्त्री यस्य महाबल । अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेण प्रेत्यभावेऽपि तस्य सा

टीका—हे वीर । मैं निश्चित जानती हूं, कि वनवास में अनेक दुःख हैं, पर उन दुःखों को वह पुरुष प्राप्त होते हैं, जो जिते-न्द्रिय न हों ॥६॥ हे राघव ! जाने के लिए मैं उत्साह युक्त हूं, आप का कल्याण हो, बन में रहते हुए तुझ शूरवीर की सेवा मुझे पसन्द है ॥७॥ हे शुद्धात्मन् ! मैं अपने प्रेमभाव से अपने भर्ता के पीछे चलती हुई निर्दोष हूंगी, भर्ता ही मेरा देवता है ॥८॥ मर कर फिर जन्मने में भी आपके साथ मेरा कल्याण संगम होगा, जैसा कि तपस्वी ब्राह्मणों की श्रुति है ॥९॥ इस लोक में जो स्त्री पितरों ने जलों के साथ धर्ममर्यादा से जिस को दी है, हे महाबल ! वह परलोक में भी उसी की होती है ॥१०॥

मूल—एवमस्मात्स्वकां नारीं सुवृत्तां हि पतिव्रताम् । नाभिरोचयसे नेतुं त्वं मां केनेह हेतुना ॥ ११ ॥+ भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः । नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥१२ + यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि । विषमग्निं जलं वाह-मास्थास्ये मृत्युकारणात् ॥ १३ ॥ एवं बहुविधं तं सा याचते गमनं प्रति । नानुमेने महाबाहुस्तां नेतुं विजनं वनम् ॥ १ ॥ एवमुक्त्वा तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता । स्नापयन्तीव गामुष्णैरश्रुभि-

नयनच्युतैः ॥ १६ ॥ चिन्तयन्तीं तदा तां तु निवर्तयितुमात्मवान्।
ताम्रोष्ठीं स तदा सीतां काकुत्स्थो बहु सान्त्वयत् ॥ १६ ॥

टीका—जब ऐसे है, तो फिर आप अपनी पतिव्रता सदाचारिणी नारी को यहां से साथ ले जाना किस हेतु से पसन्द नहीं करते हैं ॥११॥ भक्तिमती, पतिव्रता,दीन,सुख दुःख में सम, एक सुख दुःख वाली मुझ को हे काकुत्स्थ ! आप ले चलने योग्य हैं ॥१२॥ यदि इस प्रकार दुखिया को वन में ले जाना नहीं चाहोगे, तो मैं मृत्यु के अर्थ जल अग्नि वा विष को स्वीकार करूंगी ॥१३॥ इस तरह अनेक प्रकार से जाने के लिए वह याचना करती भई, पर महाबाहु ने फिर भी उस को निर्जन बन में जाने की अनुमति न दी ॥ १४ ॥ मैथिली को जब इस तरह फिर रोका गया, तो वह चिन्ता में डूब गई और नेत्रों से बहती हुई गर्म आंसुओं की धारा से मानों पृथिवी को स्नान कराती भई ॥१५॥ इस तरह सोच में डूबी हुई लाल होटों वाली सीता को रोकने के लिए जितेन्द्रिय राम बहुत सी तसल्ली देता भया ॥१६॥

सर्ग २९ (व० ३०) सीता के पति पर दावे के वचन

मूल—सान्त्व्यमाना तु रामेण मैथिली जनकात्मजा। वनवासनिमित्तार्थं भर्त्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥ सा तमुत्तमसंविग्ना सीता विपुलवक्षसम्। प्रणयाच्चाभिमानाच्च परिचिक्षेप राघवम् ॥२॥+किं त्वामन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः। राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥३॥ अनृतं बत लोकोऽयमज्ञानाद्यदि वक्ष्यति। तेजो नास्ति परं रामे तपतीव दिवाकरे ॥४॥ किं हि कृत्वा विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते। यत्परित्यक्तुकामस्त्वं माम-

नन्यपरायणाम् ॥५॥ द्युमत्सेनसुतं वीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् । सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवशवर्तिनीम् ॥ ६ ॥

टीका—राम से तसल्ली दी जाती हुई जनकसुता मैथिली बनवास के निमित्त भर्ता से यह बोली ॥१॥ अतीव कांपती हुई सीता अतीव प्रेम और अभिमान (अपना पति होने का जो अभिमान है, उस) से विशाल छाती वाले राम पर आक्षेप करती भई ॥ २ ॥ मेरे पिता मिथिलाऽधिपति वैदेह ने तुझ जामाता को पाकर क्या समझा था, जो कि पुरुष का शरीर धारण किए स्त्री है ॥ ३ ॥ दुनिया यदि ऐसा कहेगी, कि तपते हुए सूर्य में तेज की तरह राम में तेज है, तो वह झूठ क्यों नहीं होगा ॥४॥ क्या सोच कर आप को विषाद होरहा है, अथवा किस से आपको भय है, जो आप मुझ अनन्य परायणा को छोड़ने की कामना करते हैं ॥५॥ द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् के पीछे चलने वाली सावित्री की तरह आप मुझे जानें, हे वीर ! मैं आप के वशवर्तिनी हूं ॥६॥

मूल—न त्वहं मनसा प्यन्यं द्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ । त्वया राघव गच्छेयं यथाऽन्या कुलपांसनी ॥७॥+स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि । तपो वा यदि वाऽरण्यं स्वर्गो वा मे सह त्वया ॥८॥ न च मे भविता तत्र कश्चित्पथि परिश्रमः । पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारशयनेष्विव ॥९॥+ कुशकाशशरेषीका ये च कण्टाकिनो द्रुमाः । तूलाजिनसमस्पर्शा मार्गे मम सह त्वया ॥१०॥+ महावात समुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति । रजो रमण तन्मन्ये परार्ध्यमिव चन्दनम् ॥११॥+ शाद्वलेषु यदा शिश्ये वनान्तर्वनगोचरा । कुथास्तरणयुक्तेषु किं स्यात्सुखतरं ततः ॥१२॥

टीका—हे निष्पाप मैं किसी और कुलकलंकिनी की तरह नहीं

हूं, मैं तेरे विना मन से भी दूसरे को नहीं देखूंगी (इस लिए आपके साथ जाऊंगी) ॥७॥ सो मुझे न ले जाकर आप बन को रवाना होने योग्य नहीं हैं, तप वा वन वा स्वर्ग जो कुछ हो मेरा आप के साथ है ॥८॥ वहां मार्ग में आपके पीछे चलती हुई मुझे आराम की शय्या पर सोई हुई की तरह कोई परिश्रम नहीं होगा ॥९॥ कुशा काही और सरकण्डे और जो कांटों वाले वृक्ष हैं, वह आप के साथ मेरे मार्ग में रूई और पश्म के तुल्य स्पर्श वाले होंगे ॥१०॥ बड़ी आंधी से उत्पन्न हुई धूलि जो मेरे ऊपर गिरेगी हे रमण ! मैं उसे सब से बढ़िया चन्दन समझूंगी ॥११॥ वन में जाकर वन के अन्दर जब हरे घास पर सोऊंगी, तो नर्म पश्मीने के आस्तरण वाले पलंगों पर उस से बढ़ कर क्या सुख होगा

मूल—पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु । दास्यसे स्वयमाहृत्य तन्मेऽमृतरसोपमम् ॥१३॥+ न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः । आर्तवान्युपभुञ्जाना पुष्पाणि च फलानि च ॥१४॥ यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना । इति जानन्परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह ॥१५॥ इमं हि सहितुं शोकं मुहूर्तमपि नोत्सहे । किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च दुःखिता ॥१६॥ इति सा शोकसंतप्ता विलप्य करुणं बहु । चुक्रोश पतिमायस्ता भृशमालिङ्ग्य सस्वरम् ॥१७॥ तस्याः स्फाटिकसंकाशं वारि संतापसंभवम् । नेत्राभ्यां परिसुस्राव पङ्कजाभ्यामिवोदकम्

टीका—पत्र फल मूल जो कुछ थोड़ा वा बहुत आप मुझे लाकर देंगे, वह मुझे अमृतरस के तुल्य है ॥ १३ ॥ मौसमी फूल फलों को उपभोग करती हुई न वहां माता को, न पिता को, न घर को स्मरण करूंगी ॥१४॥ (अधिक क्या) जो आपके साथ है, वह

स्वर्ग है, जो आपके बिना है, वह नरक है, यह जानते हुए आप हे राम ! मेरे साथ परम प्रीति को प्राप्त हों ॥ १५ ॥ इस शोक को हे राम ! मुहूर्त भी नहीं सह सक्ती हूं, क्या फिर चौदह वर्ष दुःखित हुई ॥ १६ ॥ इतना कह शोक से तपी हुई वह बहुत करुण विलाप करके तंग हुई पति को गाढ़ आलिंगन करके सशब्द रोती भई ॥ १७ ॥ संताप से उत्पन्न हुआ स्फटिक की तरह निर्मल जल उसके नेत्रों से इस तरह वहने लगा, जैसे कमलों से पानी ॥

सर्ग ३० (व० ३०) सीता को साथ चलने की आज्ञा

मूल—तां परिष्वज्य बाहुभ्यां विसंज्ञामिव दुःखिताम् । उवाच वचनं रामः परिविश्वासयंस्तदा ॥ १ ॥ न देवि तव दुःखेन स्वर्ग मप्यभिरोचये ॥२॥ तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने । वासं न रोचये ऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे॥३॥ तत्सृष्टासि मया सार्धं वनवासाय मैथिलि । न विहातुं मया शक्या कीर्त्तिरात्मवता यथा॥४॥

टीका—ऐसी दुःखिता होकर विचेतन सी हुई उसको राम दोनों भुजाओं से आलिंगन करके तसल्ली देता हुआ यह वचन बोला ॥ १॥ हे देवि तेरे दुःख से मैं स्वर्ग को भी पसन्द नहीं करता हूं ॥२॥ तेरे सारे अभिप्राय को जाने बिना हे सुन्दरमुखि ! बन में तेरे वास को पसन्द नहीं करता था, चाहे रक्षा में शक्तिमान् भी हूं ॥३॥ सो हे मैथिलि ! मेरे साथ बनवास की तुझे आज्ञा है, मैं तुझे छोड़ नहीं सक्ता हूं, जैसे उच्चहृदय अपनी कीर्ति को नहीं छोड़ सक्ता है ॥ ४ ॥

मूल—न खल्वहं न गच्छेयं वनं जनकनन्दिनि । वचनं तन्नयति मां पितुः सत्योपबृंहितम् ॥५॥+एवं धर्मश्च सुश्रोणि पितुर्मातुश्च वश्यता । अतश्च तं व्यतिक्रम्य नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ६ ॥+ न

सत्यं दानमानौ वा यज्ञो वाप्याप्तदक्षिणः। तथा बलकराःसीते यथा सेवा पितुर्मता ॥ ७ ॥ +स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्या पुत्राः सुखानि च। गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥८॥

टीका—हे जनक नन्दिनि! मैं वन को न जाउं ऐसा नहीं होसक्ता है, पिता का सचाई से पुष्ट वचन मुझे लेजाता है ॥५॥ यह धर्म है हे सुश्रोणि! पिता के और माता के वशवर्ती होना, इसलिये उसे उल्लंघन करके मैं जी नहीं सक्ता हूं॥६॥ न सचाई न दान मान न पूरी दक्षिणा वाले यज्ञ वैसा बल पैदा करने वाले हैं हे सीते! जैसे पिता की सेवा हितकारी है ॥७॥ बड़ों की वृत्ति के अनुसार चलने से स्वर्ग,धन,धान्य,विद्या,पुत्र और सुख, कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है॥८

मूल—देवगन्धर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान्। प्राप्नुवन्ति महात्मानो मातापितृपरायणाः ॥ ९ ॥ स मां पिता यथाशास्ति सत्य धर्मपथे स्थितः। तथा वर्त्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः १० मम सन्ना मतिः सीते नेतुं त्वां दण्डकावनम्। वसिष्यामीति सा त्वं मामनुयातुं सुनिश्चिता ॥११॥ सा हि सृष्टानवद्याङ्गि वनाय मदिरेक्षणे। अनुगच्छस्व मां भीरु सहधर्मचरी भव ॥१२॥

टीका—मातापितृपरायण पुरुष देव लोकोंको गन्धर्व लोकों को गो लोकों को तथा ब्रह्मलोकों को प्राप्त होते हैं ॥९॥ सो सत्यधर्म के पथ पर स्थित पिता मुझे जैसी आज्ञा देता है, वैसे वर्तना चाहता हूं, यह सनातन धर्म है ॥१०॥ हां हे सीते! तुझे दण्डक वन को लेजाने का मेरा विचार फिसला हुआ था, पर तू 'मैं बनवास लूंगी' इस प्रकार मेरे साथ जाने को पक्के निश्चय वाली है॥११॥सो हे सुन्दर अंगों वाली हे मस्त आंखों वाली! तुझे बन जाने की अनुज्ञा है,हे भीरु मेरे साथ चल और मेरी सहधर्मचारिणीहो

मूल—सर्वथा सदृशं सीते मम स्वस्य कुलस्य च । व्यवसायमनुक्रान्ता कान्ते त्वमतिशोभनम् ॥१३॥ आरभस्व शुभश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः । नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोऽपि मम रोचते ॥१४॥ ब्राह्मणेभ्यश्च रत्नानि भिक्षुकेभ्यश्च भोजनम् । देहि चाशंसमानेभ्यः संत्वरस्व च मा चिरम् ॥१५॥ भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च । रमणीयाश्च ये केचित् क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः १६ शयनीयानि यानानि मम चान्यानि यानि च । देहि स्वभृत्यवर्गस्य ब्राह्मणानामनन्तरम् ॥१७॥ अनुकूलं तु सा भर्तुर्ज्ञात्वा गमनमात्मनः। क्षिप्रं प्रमुदिता देवी दातुमेव प्रचक्रमे ॥ १८ ॥

टीका—सर्वथा हे सीते ! तू मेरी और अपनी कुल के सदृश निश्चय पर पहुंची है, हे कान्ते ! तेरा निश्चय बड़ा शोभन है ॥ १३ ॥ हे सुश्रेणि ! वनवास के योग्य कर्मों को आरम्भ कर, नहीं अब तेरे बिना हे सीते ! स्वर्ग भी मुझे पसन्द है ॥१४॥ ब्राह्मणों को रत्न और मांगने वाले भिक्षुकों को भोजन दे, जल्दी कर, अब देर न हो ॥१५॥ और बहुमूल्य भूषण, उत्तम वस्त्र,और रमणीय खेल के जो सामान हैं, शयन और और भी जो मेरी वस्तुएं हैं, वह ब्राह्मणों के पीछे अपने भृत्यवर्ग को दे ॥ १६, १७ ॥ अब वह देवी अपना जाना पति के अनुकूल जानकर बड़ी प्रमुदित हो जल्दी २ बांटने लगी ॥ १८ ॥

सर्ग ३१ (व० ३१) लक्ष्मण का आज्ञा मांगना

मूल—एवं श्रुत्वा तु संवादं लक्ष्मणः पूर्वमागतः । बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥१॥ स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः । सीतामुवाचातियशा राघवं च महाव्रतम् ॥२॥ यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् । अहं त्वानुगमिष्यामि वनमग्रे

धनुर्धरः ॥ ३ ॥ मया समेतोऽरण्यानि रम्यानि विचरिष्यसि ।
पक्षिभिर्भृंगयूथैश्च संघुष्टानि समन्ततः ॥ ४ ॥

टीका—इस सम्वाद को सुनकर पहले आया हुआ लक्ष्मण आंसुओं से व्याप्त मुख वाला शोक को न सहार सक्ता हुआ ॥१॥ भाई के चरणों को पकड़कर वह परमयशस्वी रघुसन्तान सीता से और महाव्रती राम से यों बोला॥२॥यदि मृग और हाथियोंसे युक्त वन को जानेका निश्चय कर लिया है,तो मैं धनुष पकड़कर आपके साथ आपके आगे वन को जाऊंगा॥३॥मेरे साथ आप बहुत वनोंमें विचरेंगे, जहां पक्षी और भौरों के समूह चारों ओर गूंज रहे हैं ॥ ४ ॥

मूल—+ न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे। ऐश्वर्यं चापि लोका-
नां कामये न त्वया विना ॥५॥ एवं ब्रुवाणः सौमित्रिर्वनवासाय
निश्चितः। रामेण बहुभिः सान्त्वैर्निषिद्धः पुनरब्रवीत् ॥६॥ अनु-
ज्ञातस्तु भवता पूर्वमेव यदस्म्यहम् । किमिदानीं पुनरपि क्रियते
मे निवारणम् ॥७॥+यदर्थं प्रतिषेधो मे क्रियते गन्तुमिच्छतः।
एतदिच्छामि विज्ञातुं संशयो हि ममानघ ॥ ८ ॥

टीका—आपके बिना न मैं देवलोक में पहुंचना न अमर होना मांगता हूं, न सारे लोकों का ऐश्वर्य चाहता हूं ॥ ५ ॥ इस प्रकार जब लक्ष्मण ने वनवास के लिये निश्चित होकर कहा, तो राम ने बहुत बड़ी तसल्ली देकर रोका, (जिसको सुनकर) वह फिर बोला ॥६॥ जब आपने पहले ही मुझे अनुमति*दे दी है, तो अब फिर यह आप मुझे क्यों रोकते हैं॥७॥ क्यों मुझे जाना चाहते हुए को यह रोक है, यह जानना चाहता हूं हे निष्पाप ! मुझे संशय है ॥८॥

मूल—ततोऽब्रवीन्महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रतः। स्थितं प्राग्गामिनं

* पूर्व २१ । २१ में उसे अनुमति दी है ।

वीरं याचमानं कृताञ्जलिम् ॥ ९ ॥ + स्निग्धो धर्मरतो वीरः सततं सत्पथे स्थितः । प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राताचापि सखा च मे ॥ ॥ १० ॥ मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद्वनम् । को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ॥ ११ ॥ तामार्यां स्वयमेवेह राजानुग्रहणेन वा । सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुंचर ॥ ॥१२॥ एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता । धर्मज्ञ गुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ॥ १३ ॥

टीका–तब महातेजस्वी राम हाथ जोड़कर आगे खड़े हुए आगे २ चलने की याचना करते हुए वीर लक्ष्मण से बोला ॥९॥ तू स्नेह से भरा हुआ,धर्मरत,निरन्तर सन्मार्ग में स्थित, प्यारा, प्राणतुल्य, वशवर्ती भाई और सखा है ॥ १० ॥ पर मेरे साथ आज तेरे वन जाने पर कौसल्या का और यशस्विनी सुमित्रा का कौन सेवन करेगा॥११॥उस आर्या को और कौसल्या को हे लक्ष्मण ! आप स्वयं वा राजा के अनुग्रह से पालन कर, यह काम कर ॥ १२ ॥ इस प्रकार मुझ में तेरी भक्ति पूरी दर्शित होगी और हे धर्मज्ञ गुरुपूजा में धर्म भी अतुल होगा ॥ १३ ॥

मूल–एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन । अस्माभिर्विप्रहीणाया मातुर्नो न भवेत् सुखम् ॥१४ ॥ एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा । प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम्॥१५ तवैव तेजसा वीर भरतः पूजयिष्यति । कौसल्यां च सुमित्रां च प्रयतो नात्र संशयः॥१६॥कौसल्या बिभृयादार्या सहस्रं मद्विधानपि यस्याः सहस्रं ग्रामाणां संप्राप्तमुपजीविनाम् ॥ १७ ॥ तदात्मभरणे चैव मम मातुस्तथैव च । पर्याप्ता मद्विधानां च भरणाय मनस्विनी ॥

टीका–हे रघुनन्दन लक्ष्मण मेरे वास्ते ऐसा कर,क्योंकि हम दोनों

से वियुक्त हुई हमारी माता को सुख नहीं होगा ॥ १४ ॥ जब स्पष्ट वाणी से राम ने लक्ष्मण से ऐसे कहा, तो वह वाक्य का जानने वाला वाक्य के जानने वाले को उत्तर देता भया ॥१५॥ तेरे ही तेज से हे वीर ! कौसल्या को और सुमित्रा को भरत शुद्ध मन से पूजेगा, इस में संशय नहीं ॥ १६ ॥ और आर्या कौसल्या मेरे जैसे सहस्रोंका पालन कर सक्ती है, जिसके नौकरों को सहस्र गाओं मिले हुए हैं ॥ १७ ॥ वह यशस्विनी अपने पालन में, मेरी माता के पालन में और मेरे जैसों के पालन में समर्थ है ॥ १८ ॥

मूल—कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते । कृतार्थोऽहं भविष्यामि तवचार्थः प्रकल्प्यते ॥१९॥ धनुरादाय सशरं खनित्रपिटकाधरः । अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं तव दर्शयन् ॥ २० ॥ आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च । वन्यानि च तथान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम् ॥२१॥ भवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुषु रंस्यते । अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते ॥२२॥

टीका—सो मुझे अपना अनुचर बनावें, इस में कोई उलट नहीं, (क्योंकि यहां का सारा काम मेरे बिना चल जाएगा)आपकी सेवा होगी और मैं कृतार्थ हूंगा ॥१९ ॥ धनुषबाण लिये, (कन्दमूल खोदने और डालने के लिये) खनित्र और पिटारी को धारण किये हुए मार्ग दिखलाता हुआ आपके आगे चलूंगा॥२०॥नित्य आप के लिये फलफूल लाउंगा,और दूसरी जंगली वस्तुएं भी जो तपस्वियों के होम के योग्य होती हैं ॥२१॥ आप जानकी के साथ पर्वत की चोटियों पर रमण करेंगे, मैं आपके जागते और सोते सब कुछ करूंगा ॥ २२ ॥

मूल—रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् । व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ॥२३॥ ये च राज्ञो ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् । जनकस्य महायज्ञे धनुषी रौद्रदर्शने ॥ २४॥ अभेद्य कवचे दिव्ये तूणी चाक्षय्यसायकौ । आदित्यविमलाभौद्धौ खङ्गौ हेमपरिष्कृतौ ॥२५॥ सत्कृत्य निहितं सर्वमेतदाचार्यसद्मनि सर्वमायुधमादाय क्षिप्रमाव्रज लक्ष्मण ॥२६ ॥ स सुहृज्जनमामन्त्र्य वनवासाय निश्चितः । इक्ष्वाकुगुरुमागम्य जग्राहायुधमुत्तमम्।२७। तद्दिव्यं राजशार्दूलः सत्कृतं माल्यभूषितम् । रामाय दर्शयामास सौमित्रिः सर्वमायुधम् ॥ २८ ॥

टीका—राम इस वाक्य से बड़ा प्रसन्न हुआ उसे उत्तर देता भया, जा हे लक्ष्मण ! सारे ही सुहृद्जनों से आज्ञा ले आ ॥२३॥और वह दोनों भयङ्कर धनुष जो महात्मा वरुण ने स्वयं राजा जनक को महायज्ञ में दिये थे ॥२४॥ और दोनों अभेद्य कवच, और अनखुट तीरों वाले दोनों भत्थे, और सोने की मुठीवालीं सूर्य की तरह चमकती हुई दोनों तलवारें ॥ २५ ॥ यह सब सत्कार पूर्वक आचार्य के घर में रक्खा हुआ है, सो तू शस्त्र ले करके हे लक्ष्मण जल्दी आ ॥२६॥वनवास के लिये निश्चित हुआ लक्ष्मण सुहृद्जनों से आज्ञा ले, इक्ष्वाकुओं के गुरु के पास जा, लक्ष्मण शस्त्र को ग्रहण करता भया ॥२७॥ फिर उस क्षत्रियश्रेष्ठ लक्ष्मण ने माला से भूषित दिव्य शस्त्र लाकर राम को दिखलाए ।२८॥

मूल—तमुवाचात्मवान्रामः प्रीत्या लक्ष्मणमागतम् । काले त्वमागतः सौम्य कांक्षिते मम लक्ष्मण ॥२९॥ अहं प्रदातुमिच्छामि यदिदं मामकं धनम् । ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वया सह परंतप ॥ ३० ॥ वसन्तीह दृढं भक्त्या गुरुषु द्विजसत्तमाः । तेषामपि च मे भूयः

सर्वेषां चोपजीविनाम् ॥३१॥वसिष्ठपुत्रं तु सुयज्ञमार्यं त्वमानयाशु प्रवरं द्विजानाम् । अपि प्रयास्यामि वनं समस्तानभ्यर्च्य शिष्टानपरान्द्विजातीन् ॥ ३२ ॥

टीका—तब उदार हृदय राम ने प्रीति से आए लक्ष्मण को यह कहा 'हे सौम्य लक्ष्मण ! मेरे चाहे हुए समय पर आया है ॥ २९ ॥ हे परंतप ! मैं अपना सारा धन तेरे साथ मिलकर तपस्वी ब्राह्मणों को देना चाहता हूं ॥३०॥ यहां गुरुओं के पास दृढ़ भक्ति से जो ब्राह्मण वास करते हैं, उनको भी और फिर अपने सारे नौकरों को भी (देना चाहता हूं) ॥३१॥ सो वसिष्ठ के पुत्र द्विजवर आर्य सुयज्ञ को यहां जल्दी लेआ, और भी सारे ब्राह्मणों को पूजकर मैं वन को जाऊंगा ॥ ३२ ॥

सर्ग ३२ (व० ३२) राम का धनादि दान

मूल—तमागतं वेदविदं प्राञ्जलिः सीतया सह । सुयज्ञमभिचक्राम राघवोऽग्निमिवार्चितम्॥१॥ जातरूपमयैर्मुख्यैरङ्गदैः कुण्डलैःशुभैः। सहेमसूत्रैर्मणिभिः केयूरैर्वलयैरपि ॥२॥ अन्यैश्च रत्नैर्बहुभिः काकुत्स्थः प्रत्यपूजयत् । सुयज्ञं स तदोवाच रामः सीताप्रचोदितः ॥३॥ हारं च हेमसूत्रं च भार्यायै सौम्य हारय । रशनां चाथ सा सीता दातुमिच्छति ते सखे ॥४॥

टीका—जब वह वेद को जानने वाला सुयज्ञ आया, तो राम हाथ जोड़ सीता सहित पूजित अग्नि की तरह उन की प्रदक्षिणा करता भया ॥१॥ और सोने के सुन्दर बाहुबन्द, शुभकुण्डल, सोने के सूत्र (जञ्जीर) में प्रोये हुए रत्न केयूर और कङ्कणों से ॥२॥ और और भी बहुत रत्नों से उस की पूजा की और फिर सीता से प्रेरे हुए राम ने सुयज्ञ को यह कहा ॥३॥ (सीता का

यह) हार और हेमसूत्र हे सौम्य ! स्त्री के लिए लेजा और हे सखे ! यह सोने की तडागी सीता देना चाहती है ॥४॥

मूल—अङ्गदानि च चित्राणि केयूराणि शुभानि च । प्रयच्छति सखे तुभ्यं भार्यायै गच्छती वनम् ॥५॥ पर्यङ्कमग्र्यास्तरणं नानारत्नविभूषितम् । तमपीच्छाति वैदेही प्रतिष्ठापयितुं त्वयि ॥६॥ नागः शत्रुंजयो नाम मातुलो यं ददौ मम । तं ते निष्कसहस्रेण ददामि द्विजपुङ्गव ॥७॥ इत्युक्तः स तु रामेण सुयज्ञः प्रतिगृह्य तत् । रामलक्ष्मणसीतानां प्रयुयोजाशिषः शिवाः ॥८॥

टीका—विचित्र बाहुबन्द और शुभ केयूर हे सखे ! बन को जाती हुई सीता तेरी भार्या को देना चाहती है ॥५॥ उत्तम बिस्तर से युक्त, नाना रत्नों से भूषित यह पलंग भी जानकी तुझे देना चाहती है ॥६॥ और यह शत्रुंजय हाथी जो मेरे मामा ने दिया है, वह हज़ार मुहर के साथ हे द्विजपुंगव ! आपको देता हूं ॥७॥ राम से ऐसे कहा हुआ सुयज्ञ उस को स्वीकार कर राम लक्ष्मण और सीता को शुभ आशीर्वाद देता भया ॥८॥

मूल—अथाब्रवीद्बाष्पगलांस्तिष्ठतश्चोपजीविनः । स प्रदाय बहुद्रव्यमेकैकस्योपजीवनम् ॥९॥ लक्ष्मणस्य च यद्वेश्म गृहं च यदिदं मम अशून्यं कार्यमेकैकं यावदागमनं मम ॥१०॥ इत्युक्त्वा दुःखितं सर्वं जनं तमुपजीविनम् । उवाचेदं धनाध्यक्षं धनमानीयतां मम ॥११॥ ततोऽस्य धनमाजह्रुः सर्व एवोपजीविनः । स राशिः सुमहांस्तत्र दर्शनीयो ह्यदृश्यत ॥१२॥ ततः स पुरुषव्याघ्रस्तद्धनं सहलक्ष्मणः । द्विजेभ्यो बालवृद्धेभ्यः कृपणेभ्यो ह्यदापयत् ॥१३॥

टीका—अब पास खड़े हुए आंसुओं से रुके हुए गले वाले नौकरों में से एक २ को बहुत सी जीविका देकर बोला ॥९॥ मेरे आने

तक मेरे और लक्ष्मण के घरों को कभी खाली न छोड़ना॥१०॥ यह उन सारे दुःखित उपजीवी वर्ग (नौकरों चाकरों) को कह कर फिर धनाध्यक्ष से बोला, कि मेरा खज़ाना ले आओ ॥११॥ तब उपजीवीजन उस के सारे धन को ले आए, वह वहां बड़ा ढेर दर्शनीय दिखलाई देता था ॥१२॥तब वह पुरुष श्रेष्ठ लक्ष्मण समेत उस धन को ब्राह्मणों को और दीन बाल वृद्धों को देताभया

मूल—तत्रासीत्पिङ्गलो गार्ग्यस्त्रिजटो नाम वै द्विजः। क्षतवृत्तिर्वने नित्यं फालकुद्दाललाङ्गली ॥१४॥ तं वृद्धं तरुणी भार्या बाला-नादाय दारकान्। अब्रवीद् ब्राह्मणं वाक्यं दारिद्र्येणाभिपीड़िता ॥१५॥ अपास्य फालं कुद्दालं कुरुष्व वचनं मम। रामं दर्शय धर्मज्ञ यदि किञ्चिदवाप्स्यसे ॥१६॥+ स भार्याया वचः श्रुत्वा शाटीमाच्छाद्य दुश्छदाम्। स प्रातिष्ठत पन्थानं यत्र रामनिवेशनम्

टीका—वहां एक भूरे रङ्ग का गर्ग गोत्री त्रिजट नामी ब्राह्मण था,जो फाल कुदाल और लम्बा दण्ड लेकर बन में निर्वाह किया करता था ॥१४॥ उस वृद्ध ब्राह्मण को उसकी तरुणी भार्या गरीबी से तंग आई हुई छोटे बच्चों को सामने लाकर यह वाक्य बोली ॥१५॥ फाल कुदाल को छोड़कर मेरे वचन को कीजिये, धर्मज्ञ राम के पास जाओ, यदि कुछ मिलजाए ॥१६॥ वह भार्या की बात मान, फटी फूटी धोती पहन राम के घर गया ॥१७॥

मूल—भृग्वाङ्गिरःसमं दीप्त्या त्रिजटं जनसंसदि। आपञ्चमायाः कक्ष्याया नैनं कश्चिदवारयत ॥१८॥ स राममासाद्य तदा त्रिजटो वाक्यमब्रवीत्। निर्धनो बहुपुत्रोऽस्मि राजपुत्र महाबल ॥१९॥ तमुवाच ततो रामः परिहाससमन्वितम् ॥२०॥ गवां सहस्रमप्येकं न च विश्राणितं मया। परिक्षिपासि दण्डेन यावत्तावदवाप्स्यसे।

टीका—तेज में वह भृगु और अङ्गिरा के तुल्य था, अतएव इतने बड़े जनसमुदाय में से पांचवीं डेवढ़ी तक उसे कोई रोक नहीं सका ॥ १८ ॥ राजपुत्र के पास आकर त्रिजट यह वाक्य बोला, हे राजपुत्र महाशय ! मैं बहुत पुत्रों वाला निर्धन हूं ॥ १९ ॥ उसको राम ने हंसी से यह कहा ॥ २० ॥ अभी गौओं का एक सहस्र भी मैंने नहीं दिया है, सो तू अपने दण्ड को जितनी दूर फैंक सकेगा, उतनी गौएं तेरी होंगी ॥ २१ ॥

मूल—स शाटीं परितः कट्यां संभ्रान्तः परिवेष्ट्य ताम् । आविद्ध्य दण्डं चिक्षेप सर्वप्राणेन वेगतः ॥२२॥ स तीर्त्वा सरयूपारं दण्डस्तस्य कराच्च्युतः । गोव्रजे बहुसाहस्रे पपातोक्षाणसंनिधौ ॥२३॥ तं परिष्वज्य धर्मात्मा आवाप्य सरयूतटात् । आनयामास ता गावस्त्रिजटस्याश्रमं प्रति ॥२४॥ उवाच च तदा रामस्तं गार्ग्यमभिमान्त्वयन् । मन्युर्न खलु कर्तव्यः परिहासो ह्ययं मम २५

टीका—वह बड़ी तेज़ी के साथ धोती को कमर में लपेटकर दण्ड को घुमाकर पूरे जोर के साथ वेग से फैंकता भया ॥ २२॥ दण्ड उसके हाथ से छूटते ही सरयू के पार निकलकर अनेक सहस्रों (गौओं)वाले गोव्रज में बैल के सामने जापड़ा॥२३॥धर्मात्मा (राम) ने उसे गले लगा लिया, और सरयू के किनारे तक जितनी गौएं थीं, वह त्रिजट के आश्रम में पहुंचादीं ॥२४॥ और उस गार्ग्य को तसल्ली देता हुआ राम यह बोला, आप इस बात का क्रोध न करें, क्योंकि यह एक हंसी की बात थी ॥ २५ ॥

मूल—इदं हि तेजस्तव यद्दुरत्ययं तदेव जिज्ञासितुमिच्छता मया। इमं भवानर्थमभिप्रचोदितो वृणीष्व किं चेदपरं व्यवस्यसि ॥२६॥ ततः सभार्यस्त्रिजटो महामुनिर्गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः । यशो-

बलप्रीतिसुखोपबृंहिणीस्तदाशिषः प्रत्यवदन्महात्मनः ॥ २७ ॥ स चापि रामः प्रतिपूर्णमानसो महाधनं धर्मबलैरुपार्जितम् । नियोजयामास सुहृज्जने चिराद्यथार्थसंमानवचःप्रचोदितः ॥ २८ ॥ द्विजः सुहृद्भृत्यजनोऽथवा तदा दरिद्रभिक्षाचरणश्च यो भवेत् । न तत्र कश्चिन्न बभूव तर्पितो यथार्थसंमाननदानसंभ्रमैः ॥ २९ ॥

टीका—यह जो आपका सारी दुनिया को अपने सामने झुकाने वाला तेज है उसी को जानना चाहते हुए मैंने इस बात के लिये आपको प्रेरणा की, अब कहिये यदि कुछ आप और भी चाहते हैं ॥२६॥ तब वह स्त्री सहित महामुनि त्रिजट गौओं के समूह को लेकर प्रसन्न हुआ महात्मा (राम) को यश बल प्रीति और सुख के बढ़ाने वाले आशीर्वाद देता भया ॥२७॥ वह राम भी जिनका मन भरा हुआ है धर्मबल से कमाए हुए अपने बड़े धन को यथायोग्य सन्मान के वचनों से प्रेरा हुआ जल्दी ही सुहृद्जनों में लगा देता भया॥२८॥ ब्राह्मण, सुहृद्, भृत्यजन, गरीब और भिक्षुक उस समय कोई ऐसा नहीं था,जो यथायोग्य सन्मान दान और संभ्रम (सत्कार) से तृप्त न किया गया हो ॥२९॥

सर्ग ३३ (व० ३३) बन को जाते हुए पिता के दर्शन को जाना

मूल—दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनं बहु । जग्मतुः पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवौ ॥ १ ॥ न हि रथ्याः स्म शक्यन्ते गन्तुं बहुजनाकुलाः । आरुह्य तस्मात्प्रासादान् दीनाःपश्यन्ति राघवम् ॥ २ ॥ पदातिं सानुजं दृष्ट्वा ससीतं च जनास्तदा । ऊचुर्बहुजना वाचः शोकोपहतचेतसः ॥३॥ यं यान्तमनुयाति स्म चतुरङ्गबलं महत् । तमेकं सीतया सार्धमनुयाति स्म लक्ष्मणः ॥ ४ ॥

टीका—जानकी के साथ ब्राह्मणों को बहुत सा धन दे करके यह दोनों राघव सीता सहित पिता के दर्शन को गए ॥१॥ बहुत जनों से भरी हुई गलियों में चलना अशक्य था, इस लिए लोग महलों के ऊपर चढ कर बड़े दीन हो राम को देखने लगे ॥२॥ छोटे भाई और सीता के साथ राम को पैदल देख कर उस समय लोग शोक से दबे हुए चित्तवाले अनेक प्रकार की बातें कहते भये ॥३॥ जिस के चलने पर उन के पीछे बड़ी भारी चतुरङ्ग सेना चलती थी, आज सीता सहित उस अकेले के पीछे केवल लक्ष्मण चल रहा है ॥ ४ ॥

मूल—ऐश्वर्यस्य रसज्ञः सन्कामिनां चैव कामदः। नेच्छत्येवानृतं कर्तुं पितरं धर्मगौरवात् ॥५॥ या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि। तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः ॥६॥ अङ्गरागोचितां सीतां रक्तचन्दनसेविनीम्। वर्षमुष्णं च शीतं च नेष्यत्याशु विवर्णताम् ॥७॥ + आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः। राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम् ॥ ८ ॥ तस्मादस्यापघातेन प्रजाः परम पीडिताः। औदकानीव सत्वानि ग्रीष्मे सलिलसंक्षयात् ॥९॥

टीका—ऐश्वर्य के रस का जानने वाला और अर्थियों के अर्थों का पूरने वाला होकर भी धर्म के गौरव से पिता को झूठा करना नहीं चाहता है ॥५॥ जिसको आकाश में चलनेवाले जीव भी पहले नहीं देख सक्ते थे, उस सीता को आज राजमार्ग में स्थित लोग देख रहे हैं ॥६॥ अङ्गराग के योग्य, रक्त चन्दन के सेवन करने वाली सीता के रंग को वर्षा गर्मी और सर्दी बदल देगी ॥७॥ अहिंसा, दया, शास्त्र, शील, शम, दम, यह छः गुण पुरुषश्रेष्ठ राम को शोभायमान कर रहे हैं ॥८॥ इस लिए इस की पीडा से सारी प्रजाएं पीड़ित हुई हैं जैसे ग्रीष्म में जल के क्षय से जलजीव ॥९॥

मूल—पीडया पीडितं सर्वं जगदस्य जगत्पतेः । मूलस्येवोपघातेन वृक्षः पुष्पफलोपगः ॥१०॥ ते लक्ष्मण इव क्षिप्रं सपत्न्यः सहबान्धवाः । गच्छन्तमनुगच्छामो येन गच्छति राघवः ॥११॥ उद्यानानि परित्यज्य क्षेत्राणि च गृहाणि च । एक दुःखसुखा राममनुगच्छाम धार्मिकम् ॥१२॥ वनं नगरमेवास्तु येन गच्छति राघवः । अस्माभिश्च परित्यक्तं पुरं संपद्यतां वनम् ॥१३॥

टीका—इस जगत्पति की पीड़ा से सारा जगत ही पीड़ित हो रहा है, जैसे मूल पर चोट से फल पुष्प समेत सारा वृक्ष पीडित होता है ॥१०॥ सो हम भी लक्ष्मण की तरह जल्दी पत्नियों समेत और बान्धवों समेत जाते हुए के पीछे जायेंगे, जिस मार्ग से राम जाएगा ॥११॥ बगीचे, क्षेत्र, और घर छोड़ कर एक दुःख सुख वाले हुए हम धार्मिक राम के पीछे जाएंगे॥१२॥वन नगर ही होजाएगा, जहां से राम जायगा और हम से छोड़ा हुआ पुर वन बनेगा ॥१३॥

मूल—राघवेण वयं सर्वे वने वत्स्याम निर्वृताः॥१४॥ इत्येवं विविधा वाचो नानाजनसमीरिताः । शुश्राव राघवः श्रुत्वा न विचक्रेऽस्य मानसम्॥१५॥ प्रतीक्षमाणोऽभिजनं तदार्तमनार्तरूपः प्रहसन्निवाथ। जगाम रामः पितरं दिदृक्षुः पितुर्निदेशं विधिवच्चिकीर्षुः ॥१६॥ पितुर्निदेशेन तु धर्मवत्सलो वनप्रवेशे कृतबुद्धिनिश्चयः । स राघवः प्रेक्ष्य सुमन्त्रमब्रवीन्निवेदयस्वागमनं नृपाय मे ॥१७॥

टीका—हम राम के साथ चैन से वन में रहेंगे ॥१४॥ इत्यादि विविध वाणियें अनेक लोगों से उच्चारण की हुई राम सुनता भया और सुन कर उस के मन में कोई विकार नहीं हुआ ॥१५॥ देखता हुआ भी उन लोगों को जो पीडित हो रहे हैं, स्वयं पीडित न हुआ हंसता हुआ राम पिता की आज्ञा को विधिवत् करना चाहता हुआ

पिता के दर्शन को गया ॥१६॥ वह धर्म का प्यारा राम-जिस ने पिता की आज्ञा से वन प्रवेश में अपना बुद्धि निश्चय कर लिया है सुमन्त्र को देख कर बोला, राजा को मेरा आना निवेदन कीजिए।

सर्ग ३४ (व० ३४) राम का पिता से विदा मांगना

मूल—स रामप्रेषितः क्षिप्रं संतापकलुषेन्द्रियम्। प्रविश्य नृपतिं सूतो निःश्वसन्तं ददर्श ह॥१॥ आबोध्य च महाप्राज्ञः परमाकुलचेतनम्। राममेवानु शोचन्तं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥२॥ अयं स पुरुष व्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः। ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्वा सर्वं चैवोपजीविनाम् ॥३॥ स त्वां पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः। सर्वान्सुहृद आपृच्छ्य त्वा मिदानीं दिदृक्षते ॥४॥

टीका—राम से भेजा हुआ सूत जल्दी प्रवेश करके संताप से व्याकुल इन्द्रियों वाले राजा को आहें भरते हुए देखता भया ॥१॥ वह महाप्राज्ञ सूत (हे महाराज!) ऐसे सम्बोधन करके राम को ही शोक करते हुए अत्यन्त व्याकुल चेतना वाले राजा से हाथ जोड़ कर बोला ॥२॥ यह वह पुरुष श्रेष्ठ आप का पुत्र ब्राह्मणों को और अपने उपजीवियों को सारा धन देकर के आप के द्वार पर खड़ा है ॥३॥ वह सच्चे पराक्रम वाला राम आप के दर्शन करे, सारे सुहृद्जनों को पूछ कर अब आप के दर्शन चाहता है ॥४॥

मूल—गमिष्यति महारण्यं तं पश्य जगतीपते। वृतं राजगुणैःसर्वैरादित्यमिव रश्मिभिः॥५॥स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात् सागरोपमः। आकाश इव निष्पङ्को नरेन्द्रः प्रत्युवाच तम् ॥६॥ सुमन्त्रानय मे दारान्ये केचिदिह मामकाः। दारैः परिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥७॥ सोऽन्तःपुरमतीत्यैव स्त्रियस्ता वाक्यमब्रवीत्। आर्या ह्वयति वो राजा गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥८॥

टीका—अब वह महावन की ओर जाने को है, हे पृथिवी के मालिके ! उस को देख, जोकि रश्मियों से सूर्य की तरह सारे राजगुणों से युक्त है ॥५॥ (यह सुन) वह सच्ची वाणी वाला धर्मात्मा राजा जो गंभीरता में समुद्र के तुल्य है और आकाश की तरह निर्लेप है उनसे यह बोला ॥६॥ हे सुमन्त्र मेरी स्त्रियों को लेआ और जो कोई और भी वहां मेरे अपने हैं, उन सब से युक्त हो उस धार्मिक को देखना चाहता हूं ॥७॥ वह अन्तः पुर में बहुत जल्दी पहुंच कर उन स्त्रियों से बोला, हे आर्याओ ! आप को राजा बुलाते हैं, चलिये देर न हो ॥८॥

मूल—एवमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेण नृपाज्ञया । प्रचक्रमुस्तद्भवनं भर्तुराज्ञाय शासनम् ॥९॥ आगतेषु च दारेषु समवेक्ष्य महीपतिः । उवाच राजा तं सूतं सुमन्त्रानय मे सुतम् ॥१०॥ स सूतो राममादाय लक्ष्मणं मैथिलीं तथा । जगामाभिमुखस्तूर्णं संकाशं जगतीपतेः ॥११॥ स राजा पुत्रमायान्तं दृष्ट्वा चारात्कृताञ्जलिम् उत्थायासनात्तूर्णमार्त्तः स्त्रीजनसंवृतः ॥१२॥

टीका—राजा की आज्ञा से सुमन्त्र द्वारा ऐसे कही हुई वह सब स्त्रियें भर्ता की आज्ञा मान कर उस भवन को गई ॥९॥ स्त्रियों के आजाने पर उन को देख कर पृथिवीपति राजा ने सूत को कहा सुमन्त्र मेरे पुत्र को लेआ ॥१०॥ तब वह सूत राम लक्ष्मण और सीता को साथ लेकर जल्दी पृथिवीपति के सम्मुख गया ॥११॥ वह राजा अपने पुत्र को हाथ जोड़ निकट आता देख कर पीड़ित हो स्त्री जनों के साथ जल्दी आसन से उठा ॥१२॥

मूल—सोऽभिदुद्राव वेगेन रामं दृष्ट्वा विशांपतिः । तमसंप्राप्य दुःखार्तः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१३॥ तं रामोऽभ्यपतत्क्षिप्रं

लक्ष्मणश्च महारथः । विसंज्ञमिव दुःखेन सशोकं नृपतिं तदा ॥१४॥ तं परिष्वज्य बाहुभ्यां तावुभौ रामलक्ष्मणौ । पर्यङ्के सीतया सार्धं रुदन्तः समवेशयन् ॥१५॥ अथ रामो मुहूर्तस्य लब्धसंज्ञं महीपतिम् । उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतम् ॥१६॥

टीका—वह प्रजाओं का मालिक राम को देख कर जल्दी आगे बढा, पर उस के पास पहुंचने से पहले ही दुःख से पीडित हुआ मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१३॥ तब राम और महारथ लक्ष्मण जल्दी दुःख से अचेतनसे हुए सशोक राजा के पास पहुंचे ॥१४॥ दोनों भाइयों ने भुजाओं से उस को गले लगा कर सीता सहित रोते हुओं ने पलंग पर लिटाया ॥१५॥ तब थोड़ी देर के पीछे जब राजा को होश आई, तो शोकसागर में डूबे हुए उस राजा से राम यह बोला ॥१६॥

मूल—आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः । प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम् ॥१७॥ लक्ष्मणं चानुजानीहि सीता चान्वेतु मां वनम् । कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः ॥१८॥ नव पञ्च च वर्षाणि वनवासे विहृत्य ते । पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप ॥१९॥ रुदन्नार्तः प्रियं पुत्रं सत्यपाशेन संयतः । कैकेय्या चोद्यमानस्तु मिथो राजा तमब्रवीत् ॥२०॥

टीका—आज्ञा मांगता हूं, हे महाराज ! आप हम सब के मालिक हैं, अब दण्डक बन को जाते हुए मुझ पर कुशल दृष्टि डालिए ॥१७॥ लक्ष्मण को भी अनुज्ञा दीजिए, और सीता को भी साथ जाने की आज्ञा दीजिये, बहुत सच्चे हेतुओं से इन को रोका भी गया है, पर यह नहीं रुकते हैं ॥१८॥ चौदह बरस बन में सैर करके प्रतिज्ञा के अन्त में हे नरपते फिर आप के चरण

ग्रहण करूंगा ॥१९॥ कैकेयी से एकान्त में प्रेरा हुआ सत्य की फांस मे बंधा हुआ राजा आर्त हो रोता हुआ प्यारे पुत्र से बोला

मूल–श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च। गच्छस्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम् ॥२१॥ अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा। एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम् ॥२२॥ मातरं मां च संपश्यन् वसेमामद्य शर्वरीम्। तर्पितः सर्वकामैस्त्वं श्वः काल्ये साधयिष्यसि ॥२३॥ दुष्करं क्रियते पुत्र सर्वथा राघव प्रिय। मत्प्रियार्थं प्रियांस्त्यक्त्वा यद्यासि विजनं वनम् ॥२४॥

टीका–कल्याण के लिए, वृद्धि के लिए और फिर आने के लिए जाओ हे तात! तुम्हारा मार्ग तुम्हारे लिए पाप दुःख से रहित हो और कहीं से भय लाने वाला न हो ॥२१॥ किन्तु आज की रात हे पुत्र सर्वथा न जा, एक दिन भी और देख कर जी ठण्डा कर लूंगा ॥२२॥ माता की तर्फ और मेरी तर्फ देखते हुए आज की रात रहो, सारी कामनाओं से तुझे तृप्त करेंगे, कल समय पर (आज बेमौका भी हो गया है) चले जाना॥२३॥ सर्वथा हे प्यारे पुत्र राघव तू दुष्कर काम कर रहा है, जो मेरे प्रिय के लिए प्यारों को छोड़ कर निर्जन वन को जा रहा है॥

मूल–वञ्चना या तु लब्धा मे तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि। अनया वृत्तसादिन्या कैकेय्याभिप्रचोदितः ॥२५॥ न चैतदाश्चर्यतमं यत् त्वं ज्येष्ठः सुतो मम। अपानृतकथं पुत्र पितरं कर्तुमिच्छसि॥२६॥ अथ रामस्तदा श्रुत्वा पितुरार्तस्य भाषितम्। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा दीनो वचनमब्रवीत् ॥२७॥ +प्राप्स्यामि यानद्य गुणान्को मे श्वस्तान् प्रदास्यति। अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं वृणे ॥२८॥

टीका–वृत्त के नाश करने वाली इस कैकेयी से प्रेरे हुए मैंने जो

धोखा खाया है तू उस से मेरा निस्तारा चाहता है ॥२५॥ यह कोई आश्चर्यमय नहीं है, जो तू मेरा ज्येष्ठ पुत्र होकर हे पुत्र पिता को झूठे वचन से बचाया चाहता है ॥ २६ ॥ तब राम पिता के इस भाषण को सुन कर दीन हुआ भाई लक्ष्मण के साथ यह वचन बोला ॥२७॥ आज जिन गुणों को प्राप्त हूंगा, कल वह मुझे कौन देगा, इस लिये यहां से निकलना ही सारी कामनाओं से मैं स्वीकार करता हूं ॥२८॥

मूल—यस्तु युद्धे वरो दत्तः कैकय्यै वरद त्वया। दीयतां निखिलेनैव सत्यस्त्वं भव पार्थिव ॥२९॥ अहं निदेशं भवतो यथोक्त मनुपालयन्। चतुर्दश समा वत्स्ये वने वनचरैः सह ॥३० ॥ मा विमर्शो वसुमती भरताय प्रदीयताम्। नहि मे कांक्षितं राज्यं सुख मात्मनि वा प्रियम् ॥३१॥ यथानिदेशं कर्तुं वै तवैव रघुनन्दन ३२

टीका—जो प्रसन्न होकर हे वर के देने वाले आपने कैकेयी को वर दिया हुआ है, वह पूरा हो, हे पृथिवीपते! आप सच्चे बनिये ॥२९॥ मैं आप की आज्ञा को यथोक्त पालन करता हुआ वनचरों के साथ चौदह वर्ष वन में रहूंगा ॥३०॥ मत सोच कीजिये, पृथिवी भरत को दीजिए, मुझे राज्य की इच्छा नहीं, न अपने लिए वैसी सुख वा प्रिय की इच्छा है ॥३१॥ जैसी कि आप की आज्ञा पूरी करने की इच्छा है हे रघुनन्दन ॥३२॥

मूल—अपगच्छतु ते दुःखं मा भूर्बाष्पपरिप्लुतः। नहि क्षुभ्यति दुर्धर्षः समुद्रः सरितांपतिः ॥३३॥ नैवाहं राज्यमिच्छामि न सुखं न च मेदिनीम्। नैव सर्वानिमान्कामान्न स्वर्गं न च जीवितम् ३४ त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ। प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन

च ते शपे ॥३५॥ न च शक्यं मया तात स्थातुं क्षणमपि प्रभो ।
स शोकं धारयस्वेमं नहि मेऽस्ति विपर्ययः ॥३६॥

टीका—आप का दुःख दूर हो, आप आंसुओं से परिप्लुत न हों, नदियों का पति दुर्धर्ष समुद्र कभी क्षुब्ध नहीं होता है ॥३३॥ न मैं राज्य को चाहता हूं, न सुख, न पृथिवी को, न इन सारी कामनाओं को, न स्वर्ग को, न जीवन को ॥३४॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं आप को सच्चा हुआ चाहता हूं, न कि झूठा हुआ, आपके सामने सचाई और पुण्य की शपथ करता हूं॥३५॥ हे तात हे प्रभो! मैं यहां क्षण भी नहीं ठहर सक्ता हूं, सो आप शोक को थामिए मुझ से अब उलट नहीं हो सकता है ॥३६॥

मूल—अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव । मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये ॥३७॥ मा चोत्कण्ठां कृथा देव वने रंस्यामहे वयम् । प्रशान्तहरिणाकीर्णे नानाशकुनिनादिते ॥३८॥ पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम् । तस्माद्दैवतमित्येव क-रिष्यामि पितुर्वचः ॥ ३९ ॥ चतुर्दशसु वर्षेषु गतेषु नृपसत्तम पुनर्द्रक्ष्यसि मां प्राप्तं संतापोऽयं विमुच्यताम् ॥४०॥

टीका—"बन को जा" यह बात कैकेयी ने मुझ से मांगी है और हे राघव! मैंने कहा है 'जाता हूं' सो इस सत्य को पालता हूं ॥३७॥ हे देव! आप मेरे लिए उत्कण्ठा मत कीजिये, हम शान्त हरिणों से भरे हुये नाना पक्षियों से सुरीले हुए बन में आनन्द मनाएंगे ॥३८॥ हे तात! पिता देवताओं का देवता माना गया है, सो देवता का वचन जान कर ही मैं पिता का वचन करूंगा ॥३९॥ चौदह बरस के बीतने पर हे नर श्रेष्ठ! आप फिर मुझे यहां आया हुआ देखेंगे, सो इस संताप को दूर कीजिए ॥४०॥

मूल—येन संस्तम्भनीयोऽयं सर्वो बाष्पगलो जनः । स त्वं पुरुषशार्दूल किमर्थं विक्रियां गतः ॥४१॥ फलानि मूलानि च भक्षयन्वने गिरींश्च पश्यन्सरितः सरांसि च । वनं प्रविश्यैव विचित्रपादपं सुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः ॥४२॥ एवं स राजा व्यसनाभिपन्नस्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः । आलिङ्ग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो भूमिं गतो नैव विचेष्ट किंचित् ॥४३॥ देव्यः समस्ता रुरुदुः समेतास्तां वर्जयित्वा नरदेवपत्नीम् । रुदन्सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्छां हाहाकृतं तत्र बभूव सर्वम् ॥ ४४ ॥

टीका—इन सब रोते हुए जनों को जिसने थामना है वही आप हे पुरुषशार्दूल! किस लिये विकार को प्राप्त हुए हैं ॥४१॥ बन में फल मूल को भक्षण करता हुआ पर्वत नदियों और सरोवरों को देखता हुआ विचित्र वृक्षों वाले बन में प्रवेश करके सुखी हूंगा, आप को शान्ति हो ॥४२॥ तब वह राजा दुःख से घिरा हुआ शोक और मोह से मुरझाया हुआ पुत्र को आलिङ्गन कर चेतनता के नाश से मूर्छित होगया, और फिर कुछ चेष्टा नहीं की ॥४३॥ तब कैकेयी के सिवाय सब रानियें रोने लगीं, सुमन्त्र भी रोता हुआ मूर्छा को प्राप्त हुआ और वहां सारे हाहाकार मचगया ॥ ४४ ॥

सर्ग ३५ (व० ३५) सुमन्त्र का कैकेयी को रोकना

मूल—वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिन्दन्निव चाशुगैः । कैकेय्या सर्वमर्माणि सुमन्त्रः प्रत्यभाषत ॥१॥ नह्यकार्यतमं किञ्चित्तव देवीह विद्यते । पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः ॥२॥ यन्महेन्द्रमिवाजय्यं दुष्प्रकम्प्यमिवाचलम् । महोदधिमिवाक्षोभ्यं संतापयसि कर्मभिः ॥३॥ मावमंस्था दशरथं भर्त्तारं वरदं पतिम् । भर्तुरिच्छा हि नारीणां

पुत्रकोट्या विशिष्यते ॥४॥ यथावयो हि राज्यानि प्राप्नुवन्ति नृपक्षये । इक्ष्वाकुकुलनाथेऽस्मिंस्तल्लोपयितुमिच्छसि ॥५॥

टीका—तब तीरों के तुल्य कठोर वाक्यवज्रों से कैकेयी के सारे मर्मों को बींधता हुआ सुमन्त्र बोला ॥१॥ हे देवि ! तेरे लिये इस संसार में कुछ भी अकर्त्तव्य नहीं है, मैं तुझे पति का घात करनेवाली और अन्ततः कुल का घात करनेवाली समझता हूं ॥ २ ॥ जो तू इन्द्र की तरह न जीता जाने वाले, पर्वत की तरह न हिलाए जाने वाले, और समुद्र की तरह न क्षोभ में आनेवाले (राजा) को अपने कर्मों से संतप्त कर रही है ॥ ३ ॥ वर के देने वाले, धारण पोषण करनेवाले, अपने मालिक दशरथ का अपमान मत कर, भर्त्ता की इच्छा स्त्रियों के लिये पुत्र कोटि से बढ़कर है ॥४॥ राजा के मरने पर आयु के अनुसार राज्य को प्राप्त होते हैं। सो तू इक्ष्वाकुकुल के मालिक के होते हुए इस (बात) को लुप्त करना चाहती है ॥ ५ ॥

मूल—राजा भवतु ते पुत्रो भरतः शास्तु मेदिनीम् । वयं तत्र गमिष्यामो यत्र रामो गमिष्यति ॥६॥ न च ते विषये कश्चिद्ब्राह्मणो वस्तुमर्हति । तादृशं त्वममर्यादमद्य कर्म करिष्यसि ॥७॥ आश्चर्यमिव पश्यामि यस्यास्ते वृत्तमीदृशम् । आचरन्त्या न विदृता सद्यो भवति मेदिनी ॥८॥ नैवं भव गृहाणेदं यदाह वसुधाधिपः । भर्तुरिच्छामुपास्वेह जनस्यास्य गतिर्भव ॥ ९ ॥ मा त्वं प्रोत्साहिता पापैर्देवराजसमप्रभम् । भर्तारं लोकभर्तारमसद्धर्ममुपादधाः ॥१०॥

टीका—तेरा पुत्र राजा बने, भरत पृथिवी का शासन करे, पर हम वहां जाएंगे, जहां राम जाएगा ॥६॥ तेरे अधिकृत देश में कोई ब्राह्मण नहीं बसेगा, इसप्रकार का तू आज बेमर्याद कर्म

किया चाहती है ॥७॥ मैं आश्चर्य की तरह देख रहा हूं, कि तेरे ऐसा आचरण करते हुए पृथिवी फट नहीं जाती है ॥ ८ ॥ ऐसी मत हो, वह बात ग्रहणकर, जो राजा ने कही है, भर्त्ता की मर्ज़ी पर चल, और इन लोगों की शरण बन ॥ ९ ॥ मत तू पापों से प्रेरी जाकर देवराज के तुल्य सारे लोक के पालने वाले भर्त्ता को असद् धर्म का ग्रहण करवा ॥ १० ॥

मूल—परिवादो हि ते देवि महांल्लोके चरिष्यति । यदि रामो वनं याति विहाय पितरं नृपम् ॥११॥ रामे हि यौवराज्यस्थे राजा दशरथो वनम् । प्रवेक्ष्यति महेष्वासः पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥१२॥ इति सान्त्वैश्च तीक्ष्णैश्च कैकेयीं राजसंसदि । भूयः संक्षोभयामास सुमन्त्रस्तु कृताञ्जलिः ॥१३॥ नैव सा क्षुभ्यते देवी न च स्म परिदूयते । न चास्या मुखवर्णस्य लक्ष्यते विक्रिया तदा ॥ १४ ॥

टीका—हे देवि ! लोक में तेरी बड़ी निन्दा फैल जाएगी, यदि राम मनुष्यों के पालक पिता को (घर) छोड़ कर बन को गया ॥११॥ राम के यौवराज्य पर स्थित होजाने पर महाधनुर्धारी राजा दशरथ बड़ों की चाल का स्मरण करता हुआ बन में प्रवेश करेगा ॥१२॥ इसप्रकार नर्म और तीक्ष्ण वाक्यों से राजसभा में सुमन्त्र हाथ जोड़कर कैकेयी को अत्यन्त क्षुब्ध करता भया ॥१३॥ पर वह देवी न क्षुब्ध होती है, न संतप्त होती है, और न इसके मुख का रंग फीका पड़ता है ॥ १४ ॥

सर्ग ३६ (व० ३६) सुमन्त्र का कैकेयी को फिर कथन

मूल—ततः सुमन्त्रमैक्ष्वाकः पीडितोऽत्र प्रतिज्ञया । सबाष्पमतिनिःश्वस्य जगादेदं पुनर्वचः ॥१॥ सूत! रत्नसुसंपूर्णा चतुर्विधबला चमूः राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रं प्रतिविधीयताम् ॥२॥ ये चैनमुपजीवन्ति

रमते यैश्च वीर्यतः । तेषां बहुविधं दत्त्वा तानप्यत्र नियोजय ॥३॥ धान्यकोशश्च यः कश्चिद्धनकोशश्च मामकः । तौ राममनुगच्छेतां वसन्तं निर्जने वने ॥४॥ यजन् पुण्येषु देशेषु विसृजंश्चाप्तदक्षिणाः । ऋषिभिश्चापि संगम्य प्रवत्स्यति सुखं वने ॥५॥ भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिष्यति । सर्वकामैः पुनः श्रीमान्रामः संसाध्यतामिति ॥६॥

टीका—तब इक्ष्वाकुओं का राजा अपनी प्रतिज्ञा से पीड़ित हुआ आंसुओं सहित लम्बा सांस भरके सुमन्त्र से फिर यह बोला ।१। हे सूत रत्नों से पूर्ण चार प्रकार की सेना राघव की अनुयात्रा (साथ चलने) के लिए जल्दी तय्यार कीजिए ॥२॥ जो इस के नौकर चाकर हैं और जिन के साथ बल पराक्रम से रमण करता है, उन को भी बहुत कुछ देकर साथ चलने की आज्ञा दो ॥३॥ मेरा जो अनाज का कोश और धन का कोश है, वह भी निर्जन वन में बसते हुए राम के साथ जावे ॥४॥ पुण्य स्थानों में यज्ञ करता हुआ और पर्याप्त दक्षिणाएं देता हुआ ऋषियों के साथ मिल कर वन में सुख से बसेगा ॥५॥ भरत महाबाहु अयोध्या का पालन करेगा, और श्रीमान् राम को सारी कामनाओं के साथ रवाना करो ॥६॥

मूल—एवं ब्रुवति काकुत्स्थे कैकेय्या भयमागतम् । मुखं चाप्यगमच्छोषं स्वरश्चापि न्यरुध्यत ॥७॥ सा विषण्णा च संत्रस्ता मुखेन परिशुष्यता । राजानमेवाभिमुखी कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥८॥ तवैव वंशे सगरो ज्येष्ठपुत्रमुपारुधत् । असमञ्ज इति ख्यातं तथायं गन्तुमर्हति ॥९॥ एवमुक्तो धिगित्येव राजा दशरथोऽब्रवीत् । व्रीडितश्च जनः सर्वः सा च तन्नावबुध्यत ॥१०॥

तत्र वृद्धो महामात्रः सिद्धार्थो नाम नामतः। शुचिर्बहुमतो राज्ञः कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥११॥ असमञ्जो गृहीत्वा तु क्रीडतः पथिदारकान्। सरय्वां प्रक्षिपन्नप्सु रमते तेन दुर्मतिः ॥१२॥

टीका—दशरथ के ऐसा कहते हुए कैकेयी को बड़ा भय हुआ, मुंह सूख गया और स्वर रुक गया ॥७॥ वह उदास हुई और डरी हुई कैकेयी सूखते हुए मुख से राजा को ही अभिमुख कर के बोली ॥८॥ आप के ही वंश में राजा सगर ने बड़े पुत्र असमञ्ज को भोगों से रोक दिया था, वैसे यह जाने योग्य है ॥९॥ ऐसा कहने पर राजा दशरथ ने उसे धिक्कारा, (कैकेयी के पक्ष के) लोग सब लज्जित होगए, पर वह नहीं समझी १० तब सिद्धार्थ नामी प्रधान जो शुचि और राजा का बड़ा आदर दिया हुआ था, वह कैकेयी से बोला ॥११॥ असमञ्ज मार्ग में खेलते हुए बच्चों को पकड़ कर सरयू के जल में फैंक कर आनन्द मनाता था, इस लिए वह दुर्मति था ॥१२॥

मूल—तं दृष्ट्वा नागराः सर्वे क्रुद्धा राजानमब्रुवन्। असमंजं वृणीष्वैकमस्मान्वा राष्ट्रवर्धन ॥१३॥ तानुवाच ततो राजा किंनिमित्तमिदं भयम्। ताश्चापि राजा संपृष्टा वाक्यं प्रकृतयोऽब्रुवन् १४ क्रीडतस्त्वेष नः पुत्रान् बालानुद्भ्रान्तचेतसः। सरय्वां प्रक्षिपन्मौर्ख्यादतुलां प्रीतिमश्नुते ॥१५॥ स तासां वचनं श्रुत्वा प्रकृतीनां नराधिपः। तं तत्याजाहितं पुत्रं तासां प्रियचिकीर्षया ॥१६॥ तं यानं शीघ्रमारोप्य सभार्यं सपरिच्छदम्। यावज्जीवं विवास्योऽयमिति तानन्वशात्पिता ॥१७॥ सफालपिटकं गृह्य गिरिदुर्गाण्यलोकयत्। दिशः सर्वास्त्वनुचरन्स यथापापकर्मकृत् ॥१८॥

टीका—उस को देख कर नगरवासीजन क्रुद्ध हुए राजा के पास

जाकर बोले,हे राज्य के बढ़ाने वाले ! या तो आप अकेले असमंज को स्वीकार करें या हमें स्वीकार करें ॥१३॥ तब राजा ने उन को कहा, यह भय आप को किस निमित्त से है, राजा से पूछे हुए वह लोग यह वाक्य बोले ॥१४॥ यह खेलते हुए हमारे छोटे लड़कों को मूर्खता से सरयू में फैंकता हुआ अतुल प्रीति को भोगता है ॥१५॥ राजा उन लोगों के इस वचन को सुनकर उन के प्रिय करने की इच्छा से उस अहिती पुत्र को त्याग देता भया ॥१६॥ जल्दी उस को रथ पर चढ़ा कर सहित स्त्री के और सहित सामान (पिटारी आदि) के उस को सारी आयु के लिए निकालने की पिता ने आज्ञा दी ॥१७॥ वह फाला पिटारी लेकर अपने पाप कर्म के अनुसार पर्वतों के दुर्गों में और चारों दिशाओं में घूमता रहा ॥१८॥

मूल–इत्येनमत्यजद्राजा सगरो वै सुधार्मिकः। रामः किमकरोत्पापं येनैवमुपरुध्यते ॥१९॥ नहि कञ्चन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम्। दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम् ॥२०॥ अथवा देवि त्वं कञ्चिद्दोषं पश्यसि राघवे। तमद्य ब्रूहि तत्त्वेन तदा रामो विवास्यते ॥२१॥ अदुष्टस्य हि संत्यागः सत्पथे निरतस्य च। निर्दहेदपि शक्रस्य द्युतिं धर्मविरोधवान् ॥२२॥ तदलं देवि रामस्य श्रिया विहतया त्वया। लोकतोऽपि हि ते रक्ष्यः परिवादः शुभानने ॥२३॥

टीका–इस प्रकार उसे सुधार्मिक राजा सगर ने त्यागा था पर राम ने क्या पाप किया है, जिस से इस को इस तरह तंग किया जाए ॥१९॥ राम का हम कोई अवगुण नहीं देखते हैं, चन्द्र में मैल की तरह इस में दोष दुर्लभ है ॥२०॥ अथवा हे देवि ! यदि

तू कुछ राम में दोष देखती है, तो तू ही ठीक कहो, जिस से राम को निकाला जाए ॥२१॥ जो निर्दोष है और सन्मार्ग में स्थित है, उस का त्यागना इन्द्र के भी तेज को जला देता है, क्योंकि वह धर्म की पीड़ा है ॥२२॥ इस लिए हे देवि राम की राज्यलक्ष्मी में विघ्न डालना तुझे उचित नहीं है, हे शुभानने! लोक से भी अपनी निन्दा बचानी चाहिये ॥२३॥

सर्ग ३७ (व० ३७) राम लक्ष्मण और सीता का मुनिवेषधारण

मूल—महामात्रवचः श्रुत्वा रामो दशरथं तदा । अभ्यभाषत वाक्यंतु विनयज्ञो विनीतवत् ॥ १ ॥ त्यक्तभोगस्य मे राजन्वने वन्येन जीवतः । किं कार्यमनुयात्रेण त्यक्तसङ्गस्य सर्वतः ॥२॥ यो हि दत्वा द्विपश्रेष्ठं कक्ष्यायां कुरुते मनः । रज्जुस्नेहेन किं तस्य त्यजतः कुंजरोत्तमम् ॥३॥ तथा मम सतां श्रेष्ठ किं ध्वजिन्याजगत्पते सर्वाण्येवानुजानामि चीराण्येवानयन्तु मे ॥४॥ खनित्र पिटके चोभे समानयत गच्छत । चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वसतोमम ५

टीका—प्रधान के वचन को सुनकर विनय के जाननेवाला राम विनीत की तरह दशरथ से यह वाक्य बोला ॥१॥ हे राजन् ! भोग को त्यागकर बन में जंगली फलों से निर्वाह करते हुए मुझे अनुयात्रा से क्या प्रयोजन जबकि सारे ही संग छोड़ दिये ॥२॥ जो उत्तम हाथी को देकर तंग में मन लगाता है, उस उत्तम हाथी के त्यागनेवालेको रस्सी के स्नेह से क्या फल ॥३॥ इसीप्रकार हे सत् पुरुषों में श्रेष्ठ हे जगत्पते मुझे सेना से क्या फल, मैं सब को ही सम्मति देता हूं, चीर ही मेरे लिये लावें ॥४॥ मैं चौदह बरस बनवास को जाता हूं, जाओ मेरे लिये खनित्र और पिटारी लाओ ॥ ५ ॥

मूल—अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् । उवाच परिधत्स्वेति जनौघे निरपत्रपा ॥६॥ स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः

प्रतिगृह्य ते । सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥७॥ लक्ष्मण श्चापि तत्रैव विहाय वसने शुभे । तापसाच्छादने चैव जग्राह पितुरग्रतः ॥८॥ अथात्मपरिधानार्थं सीता कौशेयवासिनी । संप्रेक्ष्य चीरं संत्रस्ता पृषती वागुरामिव ॥ ९ ॥ सा व्यपत्रपमाणेव प्रगृह्य च सुदुर्मनाः । कैकेय्याः कुशचीरं ते जानकी शुभलक्षणा ॥ १० ॥ अश्रुसंपूर्णनेत्रा च धर्मज्ञा धर्मदर्शिनी । गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥११॥ कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः । इति ह्यकुशला सीता सा मुमोह मुहुर्मुहुः ॥१२॥ कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना । तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा ॥१३॥ तस्यास्तत्क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतां वरः । चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥ १४ ॥

टीका—उसी समय कैकेयी आप चीर लाकर उस जनसमुदायमें निर्लज्ज होकर बोली, यह लो पहनो ॥ ६ ॥ उस पुरुष श्रेष्ठ ने कैकेयी से वह दोनों चीर लेकर के सूक्ष्म वस्त्रों को फैंककर मुनियों के वस्त्र पहने ॥७॥ लक्ष्मण भी वहीं दोनों शुभ वस्त्रों को त्यागकर पिता के सामने तपस्वियों के वस्त्र पहनता भया ॥८॥ तब रेशमी वस्त्र पहने हुई सीता अपने पहनने के लिये चीर को देखकर डर गई जैसे हिरणी फांस को देखकर ॥९॥ वह शुभ लक्षणों वाली जानकी बड़ी दुर्मन हुई और लज्जित सी हुई कैकेयी से दो कुशचीर लेकर ॥१०॥ आंसुओं से भरे हुए नेत्रोंवाली धर्मज्ञा धर्म के देखने वाली गन्धर्वराज के तुल्य भर्त्ता से यह बोली ॥११॥ वनवासी मुनि किसतरह चीर बांधते हैं । इस प्रकार अनजान सीता बार २ घबराई ॥१२॥ एक चीर को कण्ठ में करके और दूसरे को हाथ में पकड़ कर अनजान जनकसुता लज्जित

होकर खड़ी की खड़ी रह गई ॥१३॥ तब राम ने जल्दी आकर सीता के रेशमी वस्त्र के ऊपर वह चीर बान्ध दिया ॥ १४ ॥

मूल—रामं प्रेक्ष्य तु सीताया बध्नन्तं चीरमुत्तमम् । अन्तःपुरचरा नार्यो मुमुचुर्वारि नेत्रजम् ॥१५॥ ऊचुश्च परमायत्तं रामं ज्वलिततेजसम् । वत्स नैवं नियुक्तेयं वनवासे मनस्विनी ॥१६॥ पितुर्वाक्यानुरोधेन गतस्य विजनं वनम् । तावद्दर्शनमस्या नः सफलं भवतु प्रभो ॥१७॥ लक्ष्मणेन सहायेन वनं गच्छस्व पुत्रक । नेयमर्हति कल्याणी वस्तुं तापसवद्वने ॥१८॥ तासामेवंविधा वाचः-श्रृण्वन्दशरथात्मजः । बबन्धैव तथा चीरं सीतया तुल्यशीलया ॥१९॥ चीरे गृहीते तु तया सबाष्पो नृपतेर्गुरुः । निवार्य सीतां कैकेयीं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

टीका—सीता को चीर बान्धते हुए राम को देखकर अन्तःपुर की सब स्त्रियों के नेत्रों से पानी चल गया ॥१५॥ और बड़ी दुःखी हुई प्रदीप्त तेज वाले राम से बोलीं, वत्स इस मनस्विनी को वनवास की आज्ञा नहीं दीगई है ॥१६॥ पिता के अनुरोध से आप निर्जन वन में जाते हैं, तो इसका दर्शन तो हे प्रभो हमारे नेत्रों को सफल करे ॥१७॥ हे पुत्रक लक्ष्मण को साथ लेकर वन को जाओ, यह कल्याणी तपस्वियों की तरह वन में बसने योग्य नहीं है ॥१८॥ उनकी इस प्रकार की विविध बातों को सुनते हुए रामने तुल्य शीलवाली सीता को चीर बांध दिया ॥१९ सीता से दोनों चीर ग्रहण किये हुए देखकर राजा का गुरु वसिष्ठ सीता को रोककर कैकेयी से यह वाक्य बोला ॥२०॥

मूल—न गन्तव्यं वनं देव्या सीतया शीलवर्जिते । अनुष्ठास्यति रामस्य सीता प्रकृतमासनम् ॥२१॥ आत्मा हि दाराः सर्वेषां

दारसंग्रहवर्तिनाम् । आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ॥ २२ ॥ अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता । वयमप्यनुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति ॥२३॥ भरतश्च सशत्रुघ्नश्चीरवासा वनेचरः । वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम् ॥ २४ ॥

टीका—हे शीलहीने ! सीता देवी बनको नहीं जाएगी, वह राम के प्रकृत आसन की अधिष्ठात्री होगी ॥२१॥ सब गृहस्थों के लिये स्त्री अपना रूप हुआ करती है । यह राम का अपना रूप है, इस लिए पृथिवी का पालन करेगी ॥२२॥ और यदि राम के साथ सीता वन को जाएगी, तो हम भी साथ चलेंगे और यह सारा पुर चलेगा ॥२३॥ भरत भी शत्रुघ्न के साथ चीर पहन कर वनचारी बन बन में बसते हुए बड़े भाई राघव के साथ वसेगा ॥

मूल—ततः शून्यां गतजनां वसुधां पादपैः सह । त्वमेका शाधि दुर्वृत्ता प्रजानामहिते स्थिता ॥२५॥ नहि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः । तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ।२६। +नह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमर्हति । त्वयि वा पुत्रवद्वस्तुं यदि जातो महीपतेः ॥२७॥+यद्यपि त्वं क्षितितलाद्गगनं चोत्पतिष्यसि । पितृवंशचारित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति ॥२८॥

टीका—तब सब लोगों के निकल जाने पर पौधों समेत इस उजाड़ पृथिवी पर अकेली हकूमत करना जो ऐसी तू वृत्त को त्यागी हुई और प्रजाओं के अहित में स्थित है ॥२५॥ वह राष्ट्र नहीं होगा जहां राम राजा नहीं होगा, किन्तु वह वन राष्ट्र होगा जहां राम निवास करेगा ॥२६॥ भरत जो राजा का पुत्र है, तो वह न राजा से बिन दी पृथिवी पर शासन करेगा, न तुझ में पुत्र की तरह बर्तेगा ॥२७॥ यदि तू पृथिवी से आकाश को

उड़ जाएगी, पर वह पितृवंश के चरित्र को जानने वाला अन्यथा नहीं करेगा ॥२८॥

मूल—तत्त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमप्रियम् । लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः ॥२९॥ अथोत्तमान्याभरणानि देवि देहि स्नुषायै व्यपनीय चीरम् । न चीरमस्याः प्रविधीयतेति न्यवारयत्तद्वसनं वसिष्ठः ॥३०॥ एकस्य रामस्य वने निवासस्त्वया वृतः केकयराजपुत्रि । विभूषितेयं प्रतिकर्मनित्या वसत्वरण्ये सह राघवेण ॥३१॥ यानैश्च मुख्यैः परिचारकैश्च सुसंवृता गच्छतु राजपुत्री । वस्त्रैश्च सर्वैः सहितैर्विधानैर्नेयंवृता ते वरसंप्रदाने ।३२। तस्मिंस्तथा जल्पति विप्रमुख्ये गुरौनृपस्याप्रतिमप्रभावे । नैवस्म सीता विनिवृत्तभावा प्रियस्य भर्तुःप्रतिकारकामा ॥३३॥

टीका—सो तूने पुत्र की लालसा में पुत्र का अप्रिय कर डाला है लोक में कोई ऐसा है नहीं, जो राम के अनुसार न हो ॥२९॥ हे देवि ! चीरों को दूर हटा और उत्तम भूषण अपनी स्नुषा (सीता) को दे, चीर इस के योग्य नहीं हैं, इस प्रकार वसिष्ठ ने जानकी का वह पहरावा रोका ॥३०॥ हे कैकेयराजपुत्रि ! तूने अकेले राम का वनवास वरा है, सो यह भूषित हुई शृङ्गार करती राम के साथ बन में रहेगी ॥३१॥ यह राजपुत्री मुख्य रथों और सेवकों से सब प्रकार के वस्त्रों और दूसरे साधनों से युक्त हुई जावे तूने वरदान में इस को नहीं वरा है ॥३२॥ अतुल प्रभाव वाले राजा के गुरु विप्रवर के ऐसा कहते हुए सीता पति का सादृश्य चाहती हुई (चीरों के स्वीकार से) अलग भावना वाली नहीं हुई ॥३३॥

सर्ग ३८ व० ३८) दशरथ का कैकेयी को रोकना

मूल–तस्यां चीरं वसानायां नाथवसामनाथवत् । प्रचुक्रोश जनः सर्वो धिक्त्वां दशरथं त्विति ॥ १ ॥ तेन तत्र प्रणादेन दुःखितः स महीपतिः । स निःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तां भार्यामिदमब्रवीत् ॥२॥ सुकुमारी च बाला च सततं च सुखोचिता । नेयं वनस्य योग्येति सत्यमाह गुरुर्मम ॥ ३ ॥ इयं हि कस्यापि करोति किञ्चित्तपस्विनी राजवरस्य पुत्री । या चीरमासाद्य जनस्य मध्ये स्थिता विसंज्ञा श्रमणीव काचित्॥४॥चीराण्यपास्याज्जनकस्य कन्या नेयं प्रतिज्ञा मम दत्तपूर्वा । यथासुखं गच्छतु राजपुत्री वने समग्रा सह सर्वरत्नैः

टीका–नाथ वाली सीता जब इस तरह अनाथ की तरह चीर पहन रही थी, तो लोग चिल्ला उठे, कि धिक्कार है तुझ दशरथ को (यह बात वर में तो मांगी नहीं, फिर यह कैकेयी को ऐसा करने से रोकता क्यों नहीं, यह लोगों की निन्दा का हेतु हुआ) ॥ १ ॥ उस आवाज़ से वहां दुःखी हुआ राजा गर्म सांस भरकर उस स्त्री से यह बोला ॥ २ ॥ कि सुकुमारी और बाला, और सदा सुखों में पली हुई यह बन के योग्य नहीं, यह बात मेरे गुरु ने सत्य कही है ॥ ३ ॥ यह बेचारी राजवर की पुत्री किसी का क्या करती है, जोकि चीर पहन कर भिखारनी की तरह बन को जाए, जो कि चीर को देखकर घबरा गई है ॥ ४ ॥ जनक की कन्या चीरों को त्याग देवे, यह प्रतिज्ञा मैंने पूर्व नहीं दी है, इसलिये राजपुत्री सारे रत्नों के साथ जैसे उसको सुख हो वन को जावे ॥ ५ ॥

मूल–रामेण यदि ते पापे किंचित्कृतमशोभनम् । अपकारः क इह ते वैदेह्या दर्शितोऽधमे ॥ ६ ॥ मृगीवोत्फुल्लनयना मृदुशीला मन-

स्विनी। अपकारं कमित्र ते करोति जनकात्मजा ॥ ७ ॥ ननु पर्याप्तमेतं ते पापे रामविवासनम्। किमेभिः कृपणैर्भूयः पातकैरपि ते कृतैः ॥ ८ ॥ प्रतिज्ञातं मया तावत्त्वयोक्तं देवि शृण्वता। रामं यदभिषेकाय त्वमिहागतमब्रवीः ॥ ९ ॥ तत्त्वेतत्समतिक्रम्य निरयं गन्तुमिच्छसि। मैथिलीमपि या हि त्वमीक्षसे चीरवासिनीम् ॥ १०

टीका—राम ने यदि हे पापिने! तेरा कोई अपराध किया है, तौ भी सीता ने हे अधर्मे! तेरा क्या अपराध किया है ॥ ६ ॥ हिरणी की तरह खिले हुए नेत्रोंवाली मृदुशीला मनीस्विनी जानकी तेरा कौन सा अपराध कर रही है ॥ ७ ॥ राम का निकालना ही तेरे लिये हे पापिनि! पर्याप्त (भारी पातक) है, बसकर अब और इन नीच पातकों के करने से ॥ ८ ॥ वह तो मैंने प्रतिज्ञा की हुई थी जो तूने हे देवि अभिषेक के लिये आए राम को मेरे सुनते हुए कही ॥ ९ ॥ सो उसको उल्लंघ कर तू अब नरक को जाना चाहती है, जोकि तू जानकी को भी चीर पहने हुए देखती है ॥ १० ॥

मूल—एवं ब्रुवन्तं पितरं रामः संप्रस्थितो वनम्। अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी। वृद्धा चाक्षुद्रशीला च न च त्वां देव गर्हते ॥ १२ ॥ मया विहीनां वरद प्रपन्नां शोकसागरम्। अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः संमन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥

टीका—पिता के ऐसा कहते हुए ही बन को रवाना हुआ राम नीचे सिर करके बैठे हुए पिता से यह बोला ॥ ११ ॥ यह यशस्विनी कौशल्या मेरी माता वृद्धा है, और उदारशीला है (आप की आज्ञा से मेरे बन को जाने पर भी आप को निन्दती

नहीं है क्योंकि जानती है, कि सत्य की रक्षा धर्म है) ॥ १२ ॥ सो हे वरदातः ! मुझ से हीन हुई शोकसागर में पड़ी हुई इस को आप अधिक संमान करने के योग्य है, पहले इसने कभी दुःख नहीं देखा है ॥ १३ ॥

सर्ग ३९ (व० ३९) कौसल्या का सीता को उपदेश

मूल—रामस्य तु वचः श्रुत्वा मुनिवेषधरं च तम्। समीक्ष्य सह भार्याभी राजा विगतचेतनः॥१॥संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात् स महीपतिः। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ औपवाह्यं रथं युक्त्वा त्वमायाहि हयोत्तमैः। प्रापयैनं महाभागमितो जनपदात्परम् ॥३॥ एवं मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते। पित्रा मात्रा च यत्साधुर्वीरो निर्वास्यते वनम् ॥४॥ राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमन्त्रः शीघ्रविक्रमः। योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥ ५ ॥ तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत्। अनाचरन्तीं कृपणं मूर्ध्न्युपाघ्राय मैथिलीम् ॥ ६ ॥

टीका—राम के वचन को सुनकर और उसको मुनिवेषधारी देख कर स्त्रियों के साथ राजा अचेतन होगया ॥ १ ॥ थोड़ी देर के पीछे राजा पृथिवीपति होश में आकर आंसुओं से भरे हूए नेत्रों से सुमन्त्र को यह बोला ॥२॥ आराम से ले जाने वाले रथ को उत्तम घोड़ों से जोडकर लेआ, इस महाभाग को इस जनपद के पार लेजा ॥३॥ जब पिता और माता से एक साधु वीर पुरुष वन को निकाला जारहा है, तो मैं समझता हूं, कि गुणवालों के गुणों का फल ऐसा ही कहा है (अत्यन्त दुःख से यह वचन राजाने कहा है)॥४॥ राजा के वचन को जानकर सुमन्त्र जल्दी जा घोड़ों से सजे हुए रथ को जोडकर वहां ले आया ॥ ५ ॥ अब उदार

आचरण करती हुई मिथिलाऽधिपति की कन्या सीता को गले लगा कर और सिर चूमकर सास यह बोली ॥ ६ ॥

मूल—साध्वीनां हि स्थितानां तु शीले सत्ये श्रुते स्थिते। स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ॥७॥ स त्वया नावमन्तव्यः पुत्रः प्रव्राजितो वनम्। तव दैवतमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा ॥ ८ ॥ विज्ञाय वचनं सीता तस्या धर्मार्थसंहितम्। कृत्वाञ्जलिमुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता ॥९॥+करिष्ये सर्वमेवाहमार्या यदनुशास्ति माम्। अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे ॥ १० ॥+न मामसज्जनेनार्या समानयितुमर्हति। धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥ ११ ॥ नातन्त्री विद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः। नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥ १२ ॥

टीका—पतिव्रता स्त्रियें जोकि शील, सत्य, शास्त्र और मर्यादा में स्थित हैं, उनके लिये एक पति ही परम पवित्र सबसे बढकर है ॥७॥ सो तूने मेरे पुत्र की कभी अवज्ञा न करना, जब कि वह वनवास दिया गया है, चाहे निर्धन हो, वा सधन हो, वह तेरा देवता है ॥८॥ धर्म अर्थ से युक्त उसके वचन को जानकर सम्मुख स्थित हुई सीता हाथ जोडकर सास से बोली ॥ ९ ॥ वह सब कुछ करूंगी, जैसे मुझे आर्या आज्ञा देती है, मैंने शास्त्र से सुना है और जानती हूं, जैसे भर्ता के साथ बर्तना चाहिये ॥ १० ॥ आर्या मुझे किसी असज्जन की तरह न समझे, मैं चन्द्र से प्रभा की तरह धर्म से कभी विचल नहीं हूंगी ॥ ११ ॥ विना तार के वीणा नहीं बजती है, विना चक्र के रथ नहीं चलता है, विना पति के सुखी हुई नहीं बढती है, चाहे सौ पुत्रवाली भी हो ॥१२॥

मूल—+मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य

तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥१३॥ साहमेवंगता श्रेष्ठे श्रुतधर्मपरावरा । आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्त्ता हि दैवतम् ॥ १४ ॥ सीताया वचनं श्रुत्वा कौसल्या हृदयंगमम् । शुद्धसत्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥१५॥ तां प्राञ्जलिरभिप्रेक्ष्य मातृमध्येऽतिसत्कृताम् । रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ अम्ब मा दुःखिता भूत्वा पश्येस्त्वं पितरं मम । क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ १७ ॥ सुप्तायास्ते गमिष्यन्ति नव वर्षाणि पञ्च च । समग्रमिह संप्राप्तं मां द्रक्ष्यसि सुहृद्वृतम् ॥ १८ ॥

टीका—क्योंकि पिता मिना हुआ देता है, भाई मिना हुआ देता है, पुत्र मिना हुआ देता है, बिन मिना देनेवाले भर्ता को कौन नहीं पूजे ॥ १३ ॥ सो हे श्रेष्ठे ! मैं ऐसा जानती हूं, धर्म के सामान्य विशेष रूप को मैंने सुना है, हे आर्ये ! मैं कैसे कभी अवज्ञा कर सकती हूं, क्योंकि पति तो स्त्रियों का देवता है ॥ १४ ॥ सीता के इस प्यारे उत्तर को सुनकर शुद्ध हृदयवाली कौशल्या के दुःख और हर्ष से उत्पन्न हुए आंसू सहसा निकल पड़े ॥ १५ ॥ अब परम धर्मात्मा राम हाथ जोड़कर पास जा माताओं के मध्य में अति सत्कृता माता से यह वाक्य बोला ॥ १६ ॥ अम्ब मत दुःखी हो, मेरे पिता की तर्फ देखना, वनवास की समाप्ति जल्दी ही होजायगी ॥ १६ ॥ सोई हुई की तरह तुझे चौदह बरस बीत जाएंगे और तू मुझे सब के साथ यहां आया हुआ सुहृदों से घिरा हुआ देखेगी ॥ १७ ॥

सर्ग ४० (व० ४०) राम का वन गमन

मूल—अथ रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः । उपसंगृह्य राजानंचक्रुर्दीनाः प्रदाक्षिणम् ॥१॥ तं चापि समनुज्ञाप्य धर्मज्ञःसह

सीतया। राघवः शोकसंमूढो जननीमभ्यवादयत् ॥ २ ॥ अन्वक्षं लक्ष्मणो भ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत्। अपि मातुः सुमित्राया जग्राह चरणौ पुनः ॥३॥ तं वन्दमानं रुदती माता सौमित्रिमब्रवीत्। हितकामा महाबाहु मूर्ध्न्युपाघ्राय लक्ष्मणम् ॥४॥

टीका—अब राम लक्ष्मण और सीता हाथ जोड़ कर राजा के चरणों को ग्रहण करके (माता पिता के शोक से) दीन हुए प्रदक्षिणा करते भए ॥१॥ उस (पिता) से अनुज्ञा लेकर संमूढ़ हुआ राम सीता के समेत माता को अभिवादन करता भया ।२। भाई के अनन्तर लक्ष्मण ने कौसल्या को अभिवादन किया और फिर माता सुमित्रा के चरण पकड़े ॥३॥ वन्दना करते हुए महाबाहु लक्ष्मण को हितकामना वाली माता सिर पर चूमकर रोती हुई बोली ॥४॥

मूल—सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने। रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ॥५॥+ व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ। एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ॥६॥ +इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम्। दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि ॥७॥+रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्। अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ८

टीका—तुझे बनवास के लिए आज्ञा दी गई है, तू अपने सुहृज्जन में पूरा अनुरक्त है, हे पुत्र अपने भाई राम के चलते हुए कभी प्रमाद न करना (सदा सावधान रहना) ॥५॥ विपद् में हो, वा समृद्धि में हो, हे निष्पाप! यह तेरा आश्रय है, लोक में भलों का यही धर्म है, कि बड़े के वशगामी हो ॥६॥ यह इस कुल का उचित सनातन आचरण है। तथा दान, यज्ञों में दीक्षा और युद्धों

में शरीर का त्याग (कुल धर्म है) ॥७॥ राम को दशरथ जान और जनकसुता को मेरा रूप (माता) जान और वन को अयोध्या जान, हे तात आनन्द से जा ॥८॥

मूल—तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा। आरुरोह वरारोहा कृत्वालङ्कारमात्मनः ॥९॥ वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च। भर्त्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वसुरो ददौ ॥१०॥ तथैवायुधजातानि भ्रातृभ्यां कवचानि तु। रथोपस्थे प्रविन्यस्य सचर्म कठिनं च यत् ॥११॥ अथो ज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम्। तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१२॥

टीका—अब सूर्य सदृश उस रथ पर प्रसन्न मन से वरारोहा सीता अपना अलङ्कार करके आरूढ हुई॥९॥वनवास की गिनती करके वस्त्र और भूषण भर्त्ता के पीछे जाती हुई सीता को श्वशुर ने दिये ॥१०॥ और दोनों भाईयों के लिए बहुत से शस्त्र कवच पेटी और खनित्र रथ में रखा दिये ॥११॥ इस के पीछे अग्नि के सदृश सुवर्ण से भूषित रथ पर दोनों भाई राम और लक्ष्मण आरूढ हुए ॥१२॥

मूल—सीतातृतीयानारूढान्दृष्ट्वा रथमचोदयत्। सुमन्त्रः संमतानश्वान्वायुवेगसमाजवे ॥१३॥ ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीड़िता। राममेवाभिदुद्राव घर्मातः सलिलं यथा ॥१४॥ पार्श्वतः पृष्ठतश्चापि लम्बमानास्तदुन्मुखाः। बाष्पपूर्णमुखाः सर्वेतमूचुर्भृशानिःस्वना ॥१५॥

टीका—तब बाल वृद्धों समेत वह सारी पुरी परम पीड़ित हुई राम की ही ओर दौड़ी, जिस तरह घाम से पीडित पुरुष जल की ओर दौडते हैं ॥१४॥ आस पास से और पीछे से उस की

तर्फ दौडते हुए आंसुओं से पूर्ण मुख वाले सब ऊंचे स्वर से सूत को बोले ॥१५॥

मूल–संयच्छ वाजिनां रश्मीन् सूत याहि शनैः शनैः। मुखं द्रक्ष्याम रामस्य दुर्दर्शं नो भविष्यति ॥१६॥ कृतकृत्या हि वैदेही छायेवानुगता पतिम्। न जहाति रता धर्मे मेरुमर्कप्रभा यथा ॥१७॥ अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्। भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ॥१८॥ महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्। एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ॥१९॥ एवं वदन्तस्ते सोढुं न शेकुर्बाष्पमागतम्। नरास्तमनुगच्छन्तः प्रियमिक्ष्वाकुनन्दनम् ॥२०॥ अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः। निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रक्ष्यामीति ब्रुवन् गृहात् ॥२१॥

टीका–हे सूत घोड़ों की बागों को रोक, धीरे २ चल, हम राम का मुख देखेंगे, जो हमें देखना दुर्लभ होगा ॥ १७ ॥ कृतकृत्या है सीता जो धर्म में रती हुई छाया की तरह पति के अनुगत हुई साथ नहीं छोड़ती है, जैसे मेरु को सूर्य की प्रभा ॥ १७ ॥ अहो लक्ष्मण तू कृतकृत्य है, जो देवसदृश प्रियवादी भाई की सेवा करेगा ॥ १८ ॥ यह तेरी बड़ी बुद्धि है यह बडा अभ्युदय है, यह स्वर्ग का मार्ग है, जो तू इसके पीछे जाता है ॥ १९ ॥ ऐसा कहते हुए, प्यारे राम के पीछे चलते हुए, वह लोग निकलती हुई आंसुओं को नहीं थाम सके ॥ २० ॥ इधर राजा भी स्त्रियों से युक्त, दीन चेतनावाला, 'प्यारे पुत्र को देखूंगा' यह कहता हुआ घर से बाहर निकला ॥ २१ ॥

मूल–रामो याहीति तं सूतं तिष्ठेति च जनस्तथा। उभयं नाशकत्सूतः कर्तुमध्वनि चोदितः ॥२२॥ दृष्ट्वा तु नृपतिः श्रीमानेकचित्तगतं

पुरम् । निनिपातैव दुःखेन कृत्तमूल इव द्रुमः ॥२३॥ ततो हलहला-शब्दो जज्ञे रामस्य पृष्ठतः । नराणां प्रेक्ष्य राजानं सीदन्तं भृश-दुःखितम् ॥२४॥ अन्वीक्षमाणो रामस्तु विषण्णं भ्रान्तचेतसम् । राजानं मातरं चैव ददर्शानुगतौ पथि ॥२५॥ पदातिनौ च याना-र्हावदुःखार्हौसुखोचितौ । दृष्ट्वा संचोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम् ॥२६॥

टीका—राम सूत को कहता है 'चलो' और लोग कहते हैं 'ठहरो' इस प्रकार मार्ग में प्रेरा हुआ सूत दोनों बातें न कर सका ॥ २२ ॥ श्रीमान् नरपति पुर को एक चित्त हुआ देखकर दुःख से कटी हुई जड वाले वृक्ष की तरह नीचे गिर पड़ा ॥ ५३ ॥ तब मनुष्यों के राजा को अत्यन्त दुःखित हो फिसलता हुआ देखकर राम के पीठ की ओर शोर पड़ गया ॥ २४ ॥ राम ने मुड़कर देखा कि उदास हुआ घबराया हुआ राजा और माता दोनों मार्ग में पीछे आरहे हैं ॥ २५ ॥ राम ने दुःख के अयोग्य, सुखी रहनेवाले, सवारी के योग्य माता पिता को प्यादा आते देखा, तो सारथि को प्रेरा, कि जल्दी चलो ॥ २६ ॥

मूल—नाहि तत्पुरुषव्याघ्रो दुःखजं दर्शनं पितुः । मातुश्च सहितुं शक्तस्तोत्रैर्नुन्न इव द्विपः ॥२७॥ प्रत्यागारमिवायान्ती सवत्सा वत्सकारणात् । बद्धवत्सा यथा धेनू राममाताभ्यधावत ॥२८॥ तिष्ठेति राजा चुक्रोश याहि याहीति राघवः । सुमन्त्रस्य बभूवा-त्मा चक्रयोरिव चान्तरा ॥२९॥ यमिच्छेत्पुनरायान्तं नैनं दूर मनुव्रजेत् । इत्यमात्या महाराजमूचुर्दशरथं वचः ॥३०॥ तेषां वचः सर्वगुणोपपन्नः प्रस्विन्नगात्रः प्रविषण्णरूपः । निशम्य राजा कृपणः सभार्यो व्यवस्थितस्तं सुतमीक्षमाणः ॥३१॥

टीका—क्योंकि वह पुरुषश्रेष्ठ माता पिता को इसतरह देख नहीं सका, अंकुश से पीडित हाथी की तरह दुःखी हुआ ॥ २७ ॥ (रथ को दौड़ता देख) राम की माता इसतरह दौड़ी, जैसे बन्धे हुए बछडेवाली, गौ बछड़े के लिये बन्धन स्थान को दौड़ती है ॥२८ राजा कहता है ठहरो, और राम कहता है चलो, इस प्रकार सूत का हाल दो पहियों के मध्य में आए पुरुष की तरह था । २९ । उस समय मन्त्रियों ने महाराज दशरथ को यह बचन कहा, 'जिस का फिर आना चाहते हो उस के पीछे दूर तक नहीं जाना चाहिये' ॥३०॥ उनके वचन को सुन कर सर्व गुणों से युक्त राजा जिसके सारे अङ्गों पर पसीना आया हुआ और रूप मुरझाया हुआ है, दीन हो पुत्र को देखता हुआ स्त्रियों समेत ठहर गया ॥

सर्ग ४१ (व० ४२) राम को विदा कर घर जाना

मूल—यावत्तु निर्यतस्तस्य रजोरूपमदृश्यत । नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्संजहारात्मचक्षुषी ॥१॥ न पश्यति रजोऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः । तदार्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥२॥ अथ रेणुसमुद्ध्वस्तं समुत्थाप्य नराधिपम् । न्यवर्तत तदा देवी कौसल्या शोककर्शिता ॥ ३ ॥ अथ गद्गदशब्दस्तु विलपन्वसुधाधिपः । उवाच मृदु मन्दार्थं वचनं दीनमस्वरम् ॥ ४ ॥ कौसल्यागृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम् । नह्यन्यत्र ममाश्वासो हृदयस्य भविष्यति ॥५ ॥ इति ब्रुवन्तं राजानमनयन्द्वारदर्शिनः । कौसल्यायाः गृहं तत्र न्यवेशयत विनीतवत् ॥ ६ ॥

टीका—निकलते हुए राम (के रथ) की धूलि जब तक दिखलाई देती रही, तब तक इक्ष्वाकुवर ने अपने नेत्र नहीं हटाए ॥१॥ पर जब राम की धूलि को भी राजा नहीं देखता है, तब उदास

और आर्त होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ २ ॥ तब धूलि मे लिबड़े हुए उस नरपति को उठाकर शोक मे मुरझाई हुई देवी कौशल्या वापिस लौटी ॥ ३ ॥ तब मनुष्यों का अधिपति गद्गद वाणी से विलाप करता हुआ, वड़ा नर्म, स्वर से हीन अस्पष्ट वचन बोला ॥ ४ ॥ जल्दी मुझे राम की माता कौसल्या के घर ले चलो और कहीं मेरे हृदय को तसल्ली नहीं होगी ॥ ५ ॥ ऐसा कहते हुए राजा को द्वारपाल कौसल्या के घर ले गये, वहां वह विनीत की तरह लिटाया गया ॥ ६ ॥

मूल—ततस्तत्र प्रविष्टस्य कौसल्याया निवेशनम् । अधिरुह्यापि शयनं बभूव लुलितं मनः ॥ ७ ॥ पुत्रद्वयविहीनं च स्नुषया च विवर्जितम् । अपश्यद्भवनं राजा नष्टचन्द्रमिवाम्बरम् ॥ ८ ॥ तच्च दृष्ट्वा महाराजो भुजमुद्यम्य वीर्यवान् । उच्चैः स्वरेण प्राक्रोशद्धा राम विजहासि मां ॥ ९ ॥ सुखिता बत तं कालं जीविष्यन्ति नरोत्तमाः । परिष्वजन्तो ये रामं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥ १० ॥ अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यामिवात्मनः । अर्धरात्रे दशरथः कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ न त्वां पश्यामि कौसल्ये साधु मां पाणिना स्पृश । रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते । १२ तं राममेवानुविचिन्तयन्तं समीक्ष्य देवी शयने नरेन्द्रम् । उपोपविश्याधिकमार्तरूपा विनिःश्वसन्तं विललाप कृच्छ्रम् ॥ १३ ॥

टीका—कौसल्या के घर प्रवेश करके भी, पलंग पर लेट कर भी उस का मन व्याकुल ही रहा ॥७॥ दोनों पुत्रों से हीन और स्नुषा से रहित वह घर राजा को ऐसा दीखता था, जैसे चांद के छिप जाने से आकाश ॥८॥ यह देख कर वीर्यवान् महाराज भुजा उठा कर ऊंचे स्वर से पुकारता भया, हा राम तू मुझे छोड़ता

है ॥९॥ भाग्यवाले उत्तम पुरुष उस समय तक जियेंगे, जो गले लगाते हुए, राम को फिर आया हुआ देखेंगे ॥१०॥ अब अपनी कालरात्रि जैसी रात्रि आने पर आधीरात के समय दशरथ ने कौसल्या को कहा ॥११॥ हे कौसल्ये ! तू मुझे दीखती नहीं है मुझे भली भान्ति हाथ से स्पर्श कर, राम के पीछे गई हुई मेरी दृष्टि अभी भी नहीं लौटती है ॥१२॥ शय्या पर राम का ही चिन्तन करते हुए राजा को देखकर देवी अधिक पीड़ित हुई पास बैठ कर लम्बे सांस भरती हुई दुःखी हो विलाप करती भई ॥१३॥

सर्ग ४२ (वा० ४३, ४४) कौसल्या का विलाप

मूल—गजराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः। वनमाविशते नूनं सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥१॥ अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकक्षयः शिवः सहभार्यं सह भ्रात्रा पश्येयमिह राघवम् ॥२॥ कदा प्रेक्ष्य नरव्याघ्रावरण्यात्पुनरागतौ। भविष्यति पुरी हृष्टा समुद्र इव पर्वणि ३ निःसंशयं मया मन्ये पुरा वीर कदर्यया। पातुकामेषु वत्सेषु मातॄणां शातिताः स्तनाः ॥४॥

टीका—गजराज की गतिवाला महाबाहु धनुर्धारी ! वीर स्त्री और लक्ष्मण समेत बन को चला गया है ॥१॥ हे जगदीश्वर मेरे शोक के क्षय करने वाला वह शुभ समय आवे, जब मैं स्त्री और भाई सहित राम को यहां देखूं ॥२॥ कब वन से फिर आये उन दोनों नरश्रेष्ठों को देख कर पुरी प्रसन्न होगी, जैसे पर्व में समुद्र ॥३॥ निःसन्देह मैं जानती हूं कि पूर्व जन्म में हे वीर (दशरथ) मैं पापिनि ने दूध पीना चाहते हुए बछड़ों की माताओं के थन काट डाले हैं ॥४॥

मूल—साहं गौरिव सिंहेन विवत्सा वत्सलाकृता। कैकेय्या पुरुषव्याघ्र बालवत्सेव गौर्बलात् ॥५॥ विलपन्तीं तथा तां तु कौसल्यां प्रमदोत्तमाम्। इदं धर्मे स्थिता धर्म्यं सुमित्रा वाक्यमब्रवीत् ॥६॥ +तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः स पुत्रः पुरुषोत्तमः। किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा ॥७॥ + यस्तवार्ये गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः। साधु कुर्वन्महात्मानं पितरं सत्यवादिनम् ॥८॥

टीका—सो मैं शेर से गौ की तरह प्यारे पुत्रवाली बिना पुत्र के की गई हूं ॥५॥ इस प्रकार विलाप करती हुई उत्तम नारी कौसल्या को धर्म में स्थित सुमित्रा यह धर्म वाक्य बोली ॥६॥ हे आर्ये तेरा पुत्र सद्गुणों से युक्त पुरुषोत्तम है, तुझे ऐसे विलाप से और दीन रुदन से क्या ॥७॥ जो तेरा महाबली पुत्र है आर्ये राज्य को त्याग कर महात्मा पिता को भली भांति सत्यवादी बनाता हुआ गया है ॥८॥

मूल—शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्य फलोदये। रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन ॥९॥ + कीर्तिभूतां पताकां यो लोके भ्रामयति प्रभुः। धर्मसत्यव्रतपरः किं न प्राप्तस्तवात्मजः ॥१०॥+नार्हा त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः। नहि रामात्परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥११॥ अभिवादयमानं तं दृष्ट्वा ससुहृदं सुतम्। मुदाश्रु मोक्ष्यसे क्षिप्रं मेघरेखेव वार्षिकी ॥१२॥ निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः। सद्यः शरीरे विननाश शोकः शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः ॥१३॥

टीका—शिष्टों से आचरण किए हुए और भली भांति सदा परलोक में फल देने वाले धर्म में स्थित श्रेष्ठ राम कभी शोक के योग्य नहीं है ॥९॥ क्या तुझे धर्म पराक्रम और सत्यव्रत परायण

पुत्र नहीं मिला जो अपनी कीर्ति का झण्डा सारे लोक में फिराता ॥१०॥ हे देवि ! तू शोक करने के योग्य नहीं है, जिस का राम पुत्र है, राम से बढ़ कर लोक में कोई सन्मार्ग में स्थित नहीं है ॥११॥ वह समय दूर नहीं है जब तू सुहृदों समेत अपने पुत्र को अभिवादन करता हुआ फिर देख कर बरसाती मेघमाला की तरह आनन्द से आंसुएं छोड़ेगी ॥१२॥ लक्ष्मण की माता के इस वाक्य को सुनकर नरदेव की पत्नी राम की माता का शोक शरदऋतु के थोड़े जल वाले मेघ की तरह तत्क्षण दूर होगया ॥१३॥

सर्ग ४३ (व० ४५) पुरवासियों का राम के साथ जाना

मूल—अनुरक्ता महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः ॥ १ ॥ अयोध्यानिलयानां हि पुरुषाणां महायशाः । बभूव गुणसंपन्नः पूर्णचन्द्र इव प्रियः ॥ २ ॥ अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव । उवाच रामः सस्नेहं ताः प्रजाः स्वाः प्रजा इव ॥ ३ ॥ या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम् । मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम् ॥ ४ ॥ स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः। करिष्यति यथावद्वः प्रियाणि च हितानि च ॥ ५ ॥ ज्ञानवृद्धो वयोबालो मृदुर्वीर्युगणान्वितः । अनुरूपः स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ॥ ६ ॥

टीका—सच्चे पराक्रम वाले महात्मा राम में अनुराग वाले (अयोध्यावासी) लोग वनवास के लिये जाते हुए के पीछे गए ॥१॥ क्योंकि अयोध्यावासियों को गुणों से सम्पन्न महायशस्वी राम पूर्णचन्द्र की तरह प्यारा था ॥२॥ स्नेह से देखता हुआ मानों नेत्रों से पीता हुआ राम अपने पुत्रों की तरह उन प्रजाओं को

स्नेह से यह वाक्य बोला ॥ ३ ॥ जो प्रीति और बहुमान मुझ में अयोध्या वासियों का है, मेरे प्रिय के लिये इस से बढकर उसे भरत में लगाओ। ८ ।पवित्र आचरणवाला कैकेयी का आनन्द बढाने वाला, वह तुम्हारा ठीक २ प्रिय और हित करेगा ॥५॥ आयु में छोटा पर ज्ञान में बड़ा हुआ, वीर्य के गुणों से युक्त पर मृदु, वह तुम्हारा योग्य स्वामी तुम्हारे भयों का मिटाने वाला होगा ॥ ६ ॥

मूल—स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समीक्षितः। अपि चापि मया शिष्टैः कार्यं वो भर्तृशासनम् ॥७॥ न संतप्येद्यथा चासौ वनवासं गते मयि । महाराजस्तथा कार्यो मम प्रियचिकीर्षया ॥ ८ ॥ यथा यथा दाशरथिर्धर्म एव स्थितोऽभवत् । तथा तथा प्रकृतयो रामं पतिमकामयन् ॥ ९ ॥ बाष्पेण पिहितं दीनं रामः सौमित्रिणा सह । चकर्षेव गुणैर्बद्धं जनं पुरनिवासिनम् ॥ १० ॥ ते द्विजास्त्रिविधं वृद्धा ज्ञानेन वयसौजसा । वयःप्रकम्पशिरसो दूराद्चुरिदं वचः ॥ ११ ॥ वहन्तो जवना रामं भो भो जात्यास्तुरंगमाः । निवर्तध्वं न गन्तव्यं हिता भवत भर्तरि ॥ १२ ॥

टीका—वह राजगुणों से युक्त युवराज निश्चय किया गया है, हां वह मुझसे बढ़कर गुणों से युक्त है, अब आपको अपने मालिक का हुक्म मानना चाहिए ॥ ७ ॥ किञ्च मेरे बन जाने पर जैसे कि महाराज दुःखी न हों, वैसे आप को करना चाहिये इसी में मेरा प्रेम है ॥ ८ ॥ ज्यों २ राम धर्म में दृढता दिखलाता गया, त्यों त्यों लोग उसी को पति चाहते भए ॥ ९ ॥ लक्ष्मण सहित राम रोते हुए पुरवासी लोगों को मानों अपने गुणों से बांध कर खींच रहा था ॥ १० ॥ वह ब्राह्मण जो

ज्ञान से तप से और अवस्था से तीनों प्रकार से वृद्ध हैं, बड़ी आयु के हेतु जिनके सिर कांप रहे हैं, वह दूर से यह वचन बोले ॥ ११ ॥ हे वेग से राम को ले जाते हुए कुलीन घोड़ों लौट आओ, न जाओ, अपने मालिक के हितकारी बनो ॥१२॥

मूल—एवमार्तप्रलापांस्तान्वृद्धान्प्रलपतो द्विजान् । अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ॥ १३ ॥+पद्भ्यामेव जगामाथ ससीतःसह-लक्ष्मणः । संनिकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः ॥ १४ ॥ गच्छ-न्तमेव तं दृष्ट्वा रामं संभ्रान्तमानसाः । ऊचुः परमसंतप्ता रामं वा-क्यमिदं द्विजाः ॥ १५ ॥+या हि नः सततं बुद्धिर्वेदमन्त्रानुसा-रिणी । त्वत्कृते सा कृता वत्स वनवासानुसारिणी ॥ १६ ॥+ हृदयेष्ववतिष्ठन्ति वेदा ये नः परं धनम् । वत्स्यन्त्यपि गृहष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः ॥ १७ ॥ एवं विक्रोशतां तेषां द्विजातीनां निवर्तने । ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम् ॥ १८ ॥

टीका—इस प्रकार आर्त प्रलाप करते हुए उन वृद्ध ब्राह्मणों को देख कर राम रथ से झट पट उतर पड़ा ॥१३॥ और सीता और लक्ष्मण के साथ राम शनैः २ पाओं रखता हुआ पैदल गया, हां मुख वन की ओर ही रहा (रथ से जाने में पीछे आते वृद्ध ब्राह्मणों को क्लेश होगा और लौट कर तसल्ली देने में व्रतभंग होगा, इस लिए उतर कर वन को ही गया) ॥१४॥ जाते हुए ही राम को देख कर परम संतप्त हुए ब्राह्मण बड़े आदर के साथ यह वाक्य बोले ॥१५॥ जो हमारी बुद्धि सदा वेद मन्त्रों के अनुसार है, तेरे कारण हे बेटा वह हमने बनवास के अनुसार करली है ॥१६॥ वेद जो हमारा परम धन है, वह हमारे हृदयों में स्थित है और हमारी स्त्रियें अपने चारित्र से

रक्षा की हुई घरों में रहेंगी ॥१७॥ इस प्रकार पुकारते हुए उन ब्राह्मणों के लौटाने के लिये राम को मानों ठहराती हुई तमसा नदी आगई ॥१८॥

सर्ग ४४ (व० ४६) वन की पहली रात

मूल—ततस्तु तमसातीरं रम्यमाश्रित्य राघवः। सीतामुद्वीक्ष्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥ इयमद्य निशा पूर्वा सौमित्रे प्रहिता वनम्। वनवासस्य भद्रं ते न चोत्कण्ठितुमर्हसि ॥२॥ अद्यायोध्या तु नगरी राजधानी पितुर्मम। सस्त्रीपुंसा गतानस्मान्शोचिष्यति न संशयः ॥३॥ अनुरक्ता हि मनुजा राजानं बहुभिर्गुणैः। त्वां च मां च नरव्याघ्र शत्रुघ्नभरतौ तथा ॥४॥ पितरं चानुशोचामि मातरं च यशस्विनीम्। अपि नान्धौ भवेतां नौ रुदन्तौ तावभीक्ष्णशः ॥५॥ भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे। धर्मार्थकामसहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति ॥६॥

टीका—तब तमसा के रमणीय तट पर आकर राम ने सीता और लक्ष्मण को देखकर कहा ॥ १ ॥ आज यह हे लक्ष्मण ! बनवास की पहली रात वन में आई है, तुझे भद्र हो, तुझे अब (अयोध्या आदि का) स्मरण नहीं करना चाहिये ॥ २॥ आज अयोध्या नगरी जो मेरे पिता की राजधानी है, वह स्त्री पुरुषों समेत हमें शोक कर रही होगी, इस में संशय नहीं ॥ ३ ॥ वहां के सब लोग बहुत गुणों के हेतु से राजा में अनुरक्त हैं, और हे नरव्याघ्र ! तेरे में, मेरे में, तथा भरत और शत्रुघ्न में अनुरक्त हैं ॥ ४ ॥ मैं पिता को और यशस्विनी माता को सोचमें हूं, वह अत्यन्त रोते हुए अन्धे न होजायें ॥५॥ धर्मात्मा भरत मेरे माता पिता को धर्म अर्थ और काम युक्त वाक्यों से तसल्ली देगा ॥६॥

मूल-भरतस्यानृशंसत्वं संचिन्त्याहं पुनः पुनः । नानुशोचामि पितरं मातरं च महाभुज ॥७॥ अद्भिरेव हि सौमित्रे वत्स्याम्यद्य निशामिमाम । एतद्धि रोचते मह्यं वन्येऽपि विविधे सति ॥८॥ गोकुलाकुलतीरायास्तमसाया विदूरतः । अवसत्तत्र तां रात्रिं रामः प्रकृतिभिः सह ॥९॥ उत्थाय च महातेजाः प्रकृतीस्ता निशाम्य च । अब्रवीद्भ्रातुरं रामो लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् ॥१०॥ अस्मद्व्यपेक्षान्सौमित्रे निर्व्यपेक्षान्गृहेष्वपि । वृक्षमूलेषु संसुप्तान्पश्य लक्ष्मण सांप्रतम् ॥११॥ यथैते नियमं पौराः कुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने । अपि प्राणानसिष्यन्ति न तु त्यक्ष्यन्ति निश्चयम् ॥१२॥

टीका-भरत के दयाभाव को फिर २ चिन्तन करके हे लक्ष्मण ! मैं माता पिता के लिये शोक नहीं करता हूं ॥७॥ आज की रात हे लक्ष्मण ! निरा जल पीकर ही रहूंगा, यही मेरी रुचि है, यद्यपि बन के नाना प्रकार के फल मूल भी यहां हैं ॥८॥ गौओं के समूहों से व्याप्त तमसा के कुछ दूर वह रात राम प्रकृतियों (अपने लोगों) के साथ सोया ॥९॥ वह महातेजस्वी राम (प्रभात के समय उठकर) उन प्रकृतियों को देख कर पुण्य लक्षणों वाले भाई आतुर लक्ष्मण से बोला ॥१०॥ हे लक्ष्मण अब वृक्षों के नीचे सोए हुए इन को देख,जो हमारी परवाह करते हुये घर से बेपरवाह होरहे हैं ॥११॥ यह पुर के लोग जिस तरह हमारे लौटाने में यत्न कर रहे हैं, यह प्राणों को छोड़ देंगे, पर अपने निश्चय को नहीं छोड़ेंगे ॥१२॥

मूल-यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु । रथमारुह्य गच्छामः पन्थानमकुतोभयम् ॥१३॥ अतो भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः । स्वपेयुरनुरक्ता मां वृक्षमूलेषु संश्रिताः ॥ १४ ॥ +पौरा

ह्यात्मकृतद् दुःखाद्विप्रमोच्या नृपात्मजैः । न तु खल्वात्मना योज्या दुःखेन पुरवासिनः ॥ १५ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणो रामं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् । रोचते मे तथा प्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति ॥ १६ ॥ सूतस्ततः संत्वरितः स्यन्दनं तैर्हयोत्तमैः । योजयित्वा तु रामस्य प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ॥१७॥ तं स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः । शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसामतरन्नदीम् ॥ १८ ॥

टीका—जो जब तक यह सोए हुए हैं, तभी तक हम जल्दी रथ पर चढ़कर निर्भय मार्ग को चलें ॥१३॥ इससे पीछे अब फिर भी इक्ष्वाकुपुर के वासी मेरे अनुराग में वृक्षोंके नीचे न सोएं॥१४॥ राजपुत्रों को चाहिये, कि पुर के लोगों को उनके दुःखों से छुड़ाएं, न कि उलटा अपने दुःखों से उनको युक्त करें ॥१५॥ साक्षात् धर्म की तरह स्थित राम को लक्ष्मण ने उत्तर दिया, हे प्राज्ञ ! यह बात मुझे भी पसन्द है, जल्दी सवार होजाइये ॥१६॥ उसी समय सुमन्त्र जल्दी उन उत्तम घोड़ों से जोड़कर रथ ले आया, और हाथ जोड़कर रामसे निवेदन किया ॥१७॥ राम तब सामान (कवचादि) के समेत उस रथ पर चढ़कर तेज चलती हुई—भँवरोंवाली तमसा नदी से पार हुआ ॥ १८ ॥

मूल—स संतीर्य महाबाहुः श्रीमाञ्शिवमकण्टकम् । प्रापद्यत महामार्गमभयं भयदर्शिनाम् ॥१९॥ मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः । उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमारुह्य सारथे ॥२०॥ मुहूर्तं त्वरितं गत्वा निवर्तय रथं पुनः । यथा न विद्युः पौरा मां तथा कुरु समाहितः ॥ २१ ॥ रामस्य तु वचः श्रुत्वा तथा चक्रे च च सारथिः । प्रत्यागम्य च रामस्य स्यन्दनं प्रत्यवेदयत् ॥२२॥ तौ संप्रयुक्तं तु रथं समास्थितौ तदा ससीतौ रघुवंशवर्धनौ ।

प्रचोदयामास ततस्तुरंगमान्स सारथिर्येन पथा तपोवनम् ॥ २३ ॥

टीका—पार होकर वह महाबाहु श्रीमान् निष्कण्टक शुभ मार्ग में आया, जो भयदर्शियों के लिए भी अभय है (राजमार्ग है)॥१९॥ पुर के लोगों की भ्रान्ति के लिये राम ने सूत को यह वचन कहा. हे सारथे ! तू अकेला रथ पर चढ़कर उत्तराभिमुख जा (पुरवासियों को मेरे लौटने की भ्रान्ति हो, जिससे कि वह अयोध्या को लौट जाएं, इस हेतु से राम ने रथ को लौटाया, पर आप उसमें से उतर पड़े, कि व्रतभङ्ग न हो) ॥२०॥ थोड़ी दूर तेज़ जाकर फिर रथ को लौटा ला, जिससे कि पुर के लोग मुझे न जान सकें, सावधान होकर वैसा कर ॥ २१ ॥ राम की आज्ञा को सुनकर सारथि ने वैसा किया, और वापिस आकर राम को रथ निवेदन किया ॥ २२ ॥ तब वे दोनों रघुवंशवर्धन सीता समेत सज्जित रथ पर सवार हुए, तब सारथि ने घोड़ों को उधर हांका, जिस मार्ग से तपोवन आता है ॥ २३ ॥

सर्ग ४५ (व० ४७) पौर जनों का वापिस आना

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां पौरास्ते राघवं विना । शोकोपहतनिश्चेष्टा बभूवुर्हतचेतसः ॥ १ ॥ शोकजाश्रुपरिद्यूना वीक्षमाणास्ततस्ततः । आलोकमपि रामस्य न पश्यन्ति स्म दुःखिताः ॥ २ ॥ ते विषादार्तवदना रहितास्तेन धीमता । कृपणाः करुणा वाचो वदन्ति स्म मनीषिणः ॥३॥ धिगस्तु खलु निद्रां तां ययापहृतचेतसः । नाद्य पश्यामहे रामं पृथूरस्कं महाभुजम् ॥ ४ ॥ यो नः सदा पालयति पिता पुत्रानिवौरसान् । कथं रघूणां स श्रेष्ठस्त्यक्त्वा नो विपिनं गतः॥५॥सा नूनं नगरी दीना दृष्ट्वास्मान्राघवं विना । भविष्यति निरानन्दा सस्त्रीबालवयोधिका ॥६ ॥ निर्या-

तास्तेन वीरेण सह नित्यं जितात्मनः । विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम् ॥७॥ इतीव बहुधा वाचो बाहुमुद्यम्य ते जनाः विलपन्ति स्म दुःखार्ता विवत्सा इव धेनवः ॥ ८ ॥

टीका—रात के प्रभात होने पर राम के बिना उन पौर जनों का चित्त और चेष्टा शोक से नष्ट होगए ॥ १ ॥ शोक की आंसुओं से खिन्न हुए,इधर उधर ढूंढते हुए, दुःखित हुए, राम का निशान भी नहीं देखते हैं । २ । उस बुद्धिमान् से बिछड़ने के हेतु उनके मुख मुरझा गए, और दीन करुण वाणियें बोलते भए । ३ । धिक्कार हो उस निद्रा को, जिससे बेहोश हुए हम आज विशाल छातीवाले महाबाहु राम को नहीं देखते हैं । ४ । जो सदा हमारा इसतरह पालन करता है, जैसे पिता सगे पुत्रों का, कैसे वह रघु श्रेष्ठ हमें त्यागकर वन को गया है । ५ । वह दीन नगरी निः-सन्देह हमें राम से बिना आया देखकर स्त्री बाल वृद्धों समेत शोक में डूब जाएगी । ६ । उस जितात्मा वीर के साथ निकलकर अब उससे बिना कैसे हम उसपुरी को देखेंगे । ७ । इस प्रकार वह जन भुजा उठाकर बछड़ों से हीन हुई धेनुओं की तरह दुःखार्त हुए अनेक प्रकार से विलाप करते भए । ८ ।

मूल—ततो मार्गानुसारेण गत्वा किंचित्ततः क्षणम् । मार्गनाशा-द्विषादेन महता समभिप्लुताः ॥ ९ ॥ रथमार्गानुसारेणन्यवर्तन्त मनस्विनः । किमिदं किं करिष्यामो दैवेनोपहता इति ॥ १० ॥ तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः । अयोध्यामगमन्सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम् ॥११॥ चन्द्रहीनामिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम् । अपश्यन्निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः ॥ १२ ॥ ते तानि वेश्मानि

महाधनानि दुःखेन दुःखोपहता विशन्तः । नैव प्रजग्मुः स्वजनं परं वा निरीक्षमाणाः प्रविनष्टहर्षाः ॥ १३ ॥

टीका—तब मार्ग के अनुसार कुछ काल चलकर फिर मार्ग के नाश से बड़े विषाद में डूब गए ।९। रथ का मार्ग नाश होजाने से वह मनस्वी लौटे, यह क्या हुआ, अब क्या करें, दैव ने हमें मार डाला है ।१०। तब वह खिन्न चित्त हुए यथागत मार्ग से अयोध्यापुरी को वापिस आगए, जिसमें कि सब सज्जन पीड़ित होरहे हैं ।११। चन्द्र हीन आकाश की तरह, जल हीन समुद्र की तरह वह मूढ़ हुए आनन्द से शून्य नगर को देखते भए ।१२। दुःख के मारे हुए वह उन बड़े धन वाले घरों में दुःख से प्रवेश करते हुए देखते हुए अपने बेगानों को नहीं जानते भए, क्योंकि उन का हर्ष नष्ट हो चुका हुआ था ।१३।

सर्ग ४६ (व० ४९, ५०) राम की दूसरे दिन की यात्रा

मूल—रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनैव महदन्तरम् । जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥१॥ तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद्रजनी शिवा । उपास्य तु शिवां संध्यां विषयानत्यगाहत ॥२॥ ग्रामान्विकृष्टसीमान्तान्पुष्पितानि वनानि च । पश्यन्नतिययौ शीघ्रं शनैरिव हयोत्तमैः ॥३॥ ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम् । उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम् ॥४॥ गत्वा तु सुचिरं कालं ततः शीतवहां नदीम् । गोमतीं गोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम् ॥५॥

टीका—पुरुषश्रेष्ठ राम भी पिता की आज्ञा का स्मरण करता हुआ उसी रात्रि शेष से बहुत दूर निकल गया ।१। वैसे ही उसके चलतेहुए वह शुभ रात्रि बीत गई, तब कल्याणी सन्ध्या को उपास करके और देशों को लंघ गया ।२। खेतों से रहित हदोंवाले ग्रामों

को और फूले हुए वनों को देखते हुए उसे उत्तम घोड़ों से अति शीघ्र चलना भी मन्द २ प्रतीत हुआ । ३ । तब उत्तम जल के बहाने वाली वेदश्रुति नाम नदी को पार कर अगस्त्य से आश्रित (दक्षिण) दिशा की ओर गया । ४ । इसके पीछे बहुत देर तक चलकर शीत जलवाली समुद्र तक पहुंचने वाली गोमती नदी से पार हुआ, जिसके वेले गौओं से युक्त हैं । ५ ।

मूल—गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः । मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम् ॥६॥ ततो धान्यधनोपेतान्दानशीलजनाञ्शिवान् । अकुतश्चिद्भयान्रम्यांश्चैत्ययूपसमावृतान् ॥ ७ ॥ उद्यानाम्रवणोपेतान्संपन्नसलीलाशयान् । तुष्टपुष्टजनाकीर्णान्गोकुलाकुलसेवितान् ॥८॥ रक्षणीयान्नरेन्द्राणां ब्रह्मघोषाभिनादितान् । रथेन पुरुषव्याघ्रः कोसलानत्यवर्तत ॥९॥ तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम् । ददर्श राघवो गङ्गां रम्यां मुनिनिषेविताम्॥

टीका—शीघ्र जाने वाली गोमती को भी घोड़ों से पार करके मोर और हंसों से गूंजती हुई स्यान्दिका नदी से पार हुआ । ६ । तब धन धान्य से भरपूर, दान शील जनोंवाले, शुभ, सर्वतो निर्भय, चैत्य और यूपों से युक्त । ७ । बगीचों और आम्रवनों से युक्त, भरे हुए जलाशयों वाले, तुष्ट पुष्ट जनों से भरे हुए, गौओं के समूहों से सेवित । ८ । राजाओं की रक्षा के योग्य, वेद की ध्वनि से गूंजते हुए, कोसल देशों को वह पुरुषश्रेष्ठ रथ से पार हुआ । ९ । और वहां राघव ने शीत जलवाली, शैवाल से रहित ऋषियों से सेवित दिव्य जलवाली रमणीय गङ्गा को देखा ।१०।

मूल—क्वचित्तीररुहैर्वृक्षैर्मालाभिरिव शोभिताम् । क्वचित्फुल्लोत्पलच्छन्नां क्वचित्पद्मवनाकुलाम् ॥११॥ समुद्रमहिषीं गङ्गां सारसक्रौ-

अनादिताम् । आससाद महाबाहुः शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥१२॥ तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्य महारथः । सुमन्त्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्य वसामहे ॥१३॥ अविदूरादयं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान् । सुमहानिंगुदीवृक्षो वसामोऽत्रैव सारथे ॥१४॥ रामोऽभियाय तं रम्यं वृक्षमिक्ष्वाकुनन्दनः । रथादवातरत्तस्मात्सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥१५॥ सुमन्त्रोऽप्यवतीर्याथ मोचयित्वा हयोत्तमान् । वृक्षमूलगतं राममुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥१६॥

टीका—जो कहीं किनारे पर उत्पन्न हुए वृक्षों की मालाओं से शोभायमान है, कहीं फूले हुए कमलों से ढकी है, कहीं पद्मबनों से युक्त है । ११ । ऐसी समुद्र की पटरानी सारस और क्रौंचों की गूंज से गूंजती गङ्गा पर शृङ्गवेरपुर * के पास वह महाबाहु पहुंचा । १२ । उस लहरों और भँवरों वाली को देखकर महारथ (राम) सुमन्त्र से बोला, आज यहीं रहते हैं । १३ । नदी के निकट ही बहुत फूल और कोंपलों वाला यह बहुत बड़ा इंगुदी का वृक्ष है, हे सारथे ! यहां ही रहते हैं । १४ । इक्ष्वाकुनन्दन राम उस सुहावने वृक्ष के पास जाकर पत्नी और लक्ष्मण समेत रथ से उतर पड़ा । १५ । सुमन्त्र भी उतर कर और उत्तम घोड़ों को खोल कर वृक्ष के मूल में बैठे राम के पास हाथ जोड़ उपस्थित हुआ ॥

सर्ग ४७ (व० ५१) दूसरी रात और गुह से मिलाप

मूल—तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा । निषादजात्यो बलवान्स्थपतिश्चेति विश्रुतः ॥ १ ॥ स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम् । वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः ॥ २ ॥ ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम् । सह सौमित्रिणा रामः

* प्रयाग प्रान्त का सिंगरौर ही पुराना शृङ्गवेर है ।

समागच्छद्गुहेन सः ॥३॥ तमार्तः संपरिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् ।
यथायोध्या तथेदं ते राम किं करवाणिते ॥ ४ ॥ ईदृशं हि महा-
बाहो कः प्राप्स्यत्यतिथिं प्रियं । ततो गुणवदन्नाद्यमुपादाय
पृथग्विधम् ॥५॥ अर्घ्यं चोपानयच्छ्रीमान् वाक्यं चेदमुवाच ह॥६॥

टीका—वहां गुह नाम भील जातीय, भीलों का, बड़ा बलवान् राजा राम का प्राणतुल्य सखा था ॥ १ ॥ वह पुरुषश्रेष्ठ राम को अपने देश में आया सुन कर वृद्ध मन्त्रियों और ज्ञातियों के साथ आया ॥ २ ॥ तब दूर से ही भीलों के अधिपति को आया देख कर राम और लक्ष्मण गुह के साथ मिले ॥ ३ ॥ (राम के चीर देख कर) पीड़ित हुआ गुह राम को गले लगाकर बोला, जैसे अयोध्या है, वैसे यह पुर आप का है, कहिये आपके लिये क्या करूं ॥ ४ ॥ हे महाबाहो कौन ऐसे प्यारे अतिथि को प्राप्त होगा । तब गुण वाले नाना प्रकार के अन्नाद्य को लाकर ॥५॥ शीघ्र आर्घ्य लिवाकर यह वाक्य बोला

मूल—स्वागतं ते महाबाहो तवेयमखिला मही। वयं प्रेष्या भवान्भर्ता
साधु राज्यं प्रशाधि नः॥७॥भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चेतदुप-
स्थितम् । शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते॥८॥गुहमेवं
ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह । अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता
सर्वदा वयम् ॥ ९ ॥ पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च ।
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ १० ॥ दिष्ट्या
त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः । अपि ते कुशलं राष्ट्रे
मित्रेषु च वनेषु च ॥११॥ यत्त्विदं भवता किंचित्प्रीत्या समुपक-
ल्पितम् । सर्वं तदनुजानामि नहि वर्ते प्रतिग्रहे ॥ १२ ॥

टीका—हे महाबाहो आप का आना शुभ हो, यह सारी पृथिवी आप की है। हम नौकर हैं आप स्वामी हैं, भली भान्ति राज्य का शासन कीजिये ॥ ७ ॥ यह भक्ष्य भोज्य, पेय और लेह्य (खाने पीने चाटने की वस्तुएं) उपस्थित हैं, और यह उत्तम बिस्तरे और घोड़ों का खाना ॥ ८ ॥ ऐसा कहते हुए गुहको राघव ने उत्तर दिया, आप के पैदल आने से और (यह राज्य आपका ही है इत्यादि) स्नेह दिखलाने से हम पूजे ही गए हैं, और आप से सदा प्रसन्न हैं। फिर सुन्दर गोल भुजाओं से गले लगाता हुआ राम यह वाक्य बोला ॥ ९, १० ॥ भाग्य से हे गुह आपको बान्धवों सहित कुशल से देखता हूं, आपके राष्ट्र में, मित्रों में और वनों में कुशल है ?॥ ११ ॥ जो कुछ आपने प्रीति से तय्यार किया है, वह सब कुछ मैं आहत करता हूं पर बर्त नहीं सक्ता ॥ १२ ॥

मूल—कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम् । विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ॥ १३ अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनाचित् । एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः ॥ १४ ॥ +एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे । एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ॥ १५॥ ततश्चीरोत्तरासङ्गः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् । जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम् ॥ १६ ॥ तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः । सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः ॥ १७ ॥ गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाषयन् । अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥ १८ ॥

टीका—मुझे आप कुशा के चीर और मृगान पहिननेवाला, फलमूल खाने वाला, धर्म में तत्पर वनचारी जानें ॥ १३ ॥ हां

घोड़ों के दाने चारे की मुझे ज़रूरत है, और किसी वस्तु की नहीं, इतने ही से मैं आपसे यहां सुपूजित हूंगा ॥ १४ ॥ यह घोड़े मेरे पिता राजा दशरथ के प्यारे हैं, इनकी तृप्ति से मैं पूजित हूंगा ॥ १५ ॥ तब उसने ऊपर चीर लेकर पश्चिमासन्ध्या को उपास कर जल ही पान किया जो कि लक्ष्मण स्वयं ले आया था ॥ १६ तब साहित स्त्री के पृथिवी पर सोए हुए राम के पाओं छूकर समीप ही वृक्ष के नीचे लक्ष्मण खड़ा रहा ॥ १७ ॥ गुह भी सूतके साथ लक्ष्मण से बात चीत करता हुआ अप्रमत्त हो धनुष पकड़ कर जागता रहा ॥ १८ ॥

सर्ग ४८ (व० ५२) सुमन्त्र और गुह को विदा करना

मूल—प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महायशाः । उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १ ॥ भास्करोदयकालोऽसौ गता भगवती निशा । असौ सुकृष्णो विहगः कोकिलस्तात कूजति ॥ २ ॥ बर्हिणानां च निर्घोषः श्रूयते नदतां वने । तराम जाह्नवीं सौम्य शीघ्रगां सागरंगमाम् ॥ ३ ॥ स तु रामस्य वचनं निशम्य प्रतिगृह्य च । स्थपतिस्तूर्णमाहूय सचिवानिदमब्रवीत् ॥४॥ अस्य वाहनसंयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम् । सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर ॥ ५ ॥

टीका—रात के प्रभात होने पर विशाल छाती वाला बड़े यश वाला राम शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण से बोला ॥ १ ॥ सूर्योदय का समय है, रात बीत गई है, हे तात वह काला पंछी कोयल कूकू सुना रहा है ॥२॥ बोलते हुए मोरों की ध्वनि वन में सुनाई देती है, हे सौम्य समुद्र को जाने वाली तेज गंगा को पार करें ॥३॥ वह भीलपति राम के वचन को सुनकर और स्वीकार

करके मन्त्रियों को जल्दी बुला कर बोला ॥४॥ उत्तम चप्पुओं वाली योग्य मल्लाहों वाली सुख से पार उतारने वाली दृढ़ नौका को जल्दी घाट पर लाओ ॥५॥

मूल—ततः कलापान्संनह्य खड्गौ बद्ध्वा च धन्विनौ । जग्मतुर्येन तां गङ्गां सीतया सह राघवौ ॥ ६ ॥ राममेवं तु धर्मज्ञमुपागत्य विनीतवत् । किमहं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ७ ॥ निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धि कृतं मम । रथं विहाय पद्भ्यां तु गमिष्यामो महावनम् ॥८॥ इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये । यथा दशरथो राजा मां न शोचेत्तथा कुरु ॥९॥ यद्यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति । न च ताम्यति शोकेन सुमन्त्र कुरु तत्तथा ॥१०॥ अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम् । ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैव मम हेतोरिदं वचः ॥ ११ ॥

टीका—तब वह दोनों धनुर्धारी भाई भत्थे और तलवारें बांध कर सीता समेत गङ्गा की ओर गए॥६॥ऐसे (रथ छोड़कर पैदल चलने को तय्यार हुए) धर्मज्ञ राम के पास हो विनीत की तरह हाथ जोड़कर सूत बोला, मुझे क्या आज्ञा है॥७॥अब आप वापिस जावें,राम ने यह उसे कहा,मेरा काम पूरा किया गया है,अब हम रथ छोड़ कर पाओं से महावन में जाएंगे ॥८॥ आपके तुल्य मैं इक्ष्वाकुओं का कोई सुहृद् नहीं जानता हूं, सो जैसे राजा दशरथ मेरे लिये शोक न करें, वैसे करना ॥९॥ जैसे वह महाराज हे सुमन्त्र ! अप्रिय न देखे और न शोक से मुरझाए, वैसे करना ॥ १० ॥ जिसने कभी दुःख नहीं देखा है, उस जितेन्द्रिय वृद्ध आर्य राजा को मेरा अभिवादन करके मेरे लिये यह वचन कहो ॥ ११ ॥

मूल—न चाहमनु शोचामि लक्ष्मणो न च शोचति । अयोध्या-

याऽच्युताश्चेति वने वत्स्यामहेति वा ॥ १२ ॥ चतुर्दशसु वर्षेषु निवृत्तेषु पुनः पुनः । लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे शीघ्रमागतान् ॥१३॥ एवमुक्त्वा तु राजानं मातरं च सुमन्त्र मे। अन्याश्च देवीः सहिताः कैकेयीं च पुनः पुनः ॥ १४ ॥ आरोग्यं ब्रूहि कौसल्यामथ पादाभिवन्दनम् । सीतायां मम चार्यस्य वचनाल्लक्ष्मणस्य च ॥ १५ ॥ ब्रूयाश्चापि महाराजं भरतं क्षिप्रमानय । आगतश्चापि भरतः स्थाप्यो नृपमते पदे ॥ १६ ॥

टीका—इस बात का न मुझे शोक है, न लक्ष्मण को शोक है, कि हम अयोध्या से अलग हुए हैं, वा बन में रहेंगे ॥ १२ ॥ चौदह बरसों के वीत जाने पर शीघ्र आए हुए लक्ष्मण को, मुझको और सीता को आप फिर २ देखेंगे ॥ १३ ॥ राजा को ऐसा कह करके मेरी माता कौसल्या को और दूसरी देवियों को और कैकेयी को मेरा सीता का और लक्ष्मण का बार २ आरोग्य कहो, और हमारा पादाभिवन्दन कर ॥१४,१५॥ और महाराज को कहना कि भरत को जल्दी मंगवालें, और भरत को आते ही राजा से संमत पद पर स्थापन करना ॥ १६ ॥

मूल—भरतं च परिष्वज्य यौवराज्येऽभिषिच्य च । अस्मत्संतापजं दुःखं न त्वामाभिभविष्यति ॥ १७ ॥ भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे । तथा मातृषु वर्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः ॥१८॥ निवर्त्यमानो रामेण सुमन्त्रः प्रतिबोधितः । तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत् ॥ १९ ॥

टीका—भरत को गले लगाकर और यौवराज्य में तिलक देकर हमारे सन्ताप से उत्पन्न हुआ दुःख आपको नहीं दबाएगा ॥१७ भरत को भी कहना, जैसे तू राजा में बर्तता है, वैसे सारी ही

माताओं में अविशेष से वर्तना ॥१८॥ राम ने अब सुमन्त्र को लौटाते हुए जब ऐसे सिखाया, तो वह सारे वचन को सुनकर स्नेह से राम को यह बोला ॥ १९ ॥

मूल—कथं हि त्वद्विहीनोऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम्। तव तात वियोगेन पुत्रशोकातुरामिव ॥२०॥ दैन्यं हि नगरी गच्छेद्दृष्ट्वा शून्यमिमं रथम्। सूतावशेषं स्वं सैन्यं हतवीरमिवाहवे ॥ २१ ॥ दृष्टं तद्वै त्वया राम यादृशं त्वत्प्रवासने। प्रजानां संकुलं वृत्तं त्वच्छोकक्लान्तचेतसाम् ॥ २२ ॥ आर्तनादो हि यः पौरैरुन्मुक्तस्त्वत्प्रवासने। सरथं मां निशाम्यैव कुर्युः शतगुणं ततः ॥२३॥

टीका—कैसे आप के बिना उस पुरी को जाऊं, हे तात जो आप के वियोग से पुत्रशोक से पीड़ित की तरह है ॥२०॥ इस रथ को शून्य देखकर सारी नगरी दीन होजाएगी, जैसे शूर वीर के मरने से बाकी रहे सूत वाले रथ को देखकर अपनी सेना ॥२१॥ हे राम आपने देख लिया है, आपके प्रवास में आपके शोक से मुरझाए चित्तवाली प्रजाओं को जैसी घबराहट हुई थी ॥२२॥ जो आर्तनाद पुर के लोगों ने आपके प्रवासन के समय किया था, अब मुझे रथ सहित देखकर उससे सौगुणा करेंगे ॥२३॥

मूल—+अहं किं चापि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया। नीतोऽसौ मातुलकुलं संतापं मा कृथा इति ॥ २४ ॥+असत्यमपि नैवाहं ब्रूयां वचनमीदृशम्। कथमप्रियमेवाहं ब्रूयां सत्यमिदं वचः ॥२५॥ +तन्न शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ। वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि ॥२६॥+ सन्निदिच्छामि तेऽरण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः। प्रीत्याभिहितमिच्छामि भव मे प्रत्यनन्तरः ॥ २७ ॥

टीका—दूसरा यह कि मैं देवी (कौसल्या) को जाकर क्या कहूंगा, कि तेरे पुत्र को मामा के घर पहुंचा आया हूं, तू संताप न कर ॥२४॥ यह असत्य है मैं ऐसा वचन नहीं कह सकता, (और वन को पहुंचा आया हूं) यह सत्य भी अप्रिय है, यह भी कैसे कहूंगा ॥२५॥ इस लिये हे निष्पाप तेरे बिना मैं अयोध्या को नहीं जासक्ता, सो आप वनवास में साथ जाने की मुझे आज्ञा देने योग्य हैं ॥२६॥ प्रसन्न हो, मैं वन में तेरा समीपी होना चाहता हूं, और "हो मेरा समीपी" यह आपसे प्रीति से कहा हुआ वाक्य सुनना चाहता हूं ॥२७॥

मूल—वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः । यदनेन रथेनैव त्वां वहेयं पुरीं पुनः ॥२८॥ एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः । रामो भृत्यानुकम्पी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥२९॥ जानामि परमं भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल। शृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः ॥३०॥ नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी । कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ॥३१॥ विपरीते तुष्टिहीना वनवासं गते मयि । राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम् ॥३२॥ एष मे प्रथमः कल्पो यदम्बा मे यवीयसी । भरतारक्षितं स्फीतं पुत्रराज्यमवाप्स्यते ॥३३॥ मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज । संदिष्टश्चापि यानर्थांस्तांस्तान्ब्रूयास्तथा तथा ॥३४॥ इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः । गुहं वचनमक्लीबो रामो हेतुमदब्रवीत् ॥३५॥

टीका—मेरा यही मनोरथ है, कि बनवास के क्षीण होने पर इसी रथ से आप को फिर पुरी में ले चलूं ॥२८॥ इस तरह अनेक प्रकार से बार २ दीन याचना करते हुए सुमन्त्र को अपने

भृत्यों पर दयालु रामने उत्तर दिया ॥२९॥ हे भर्तृवत्सल मैं आपकी परम भक्ति को जानता हूं, सुनिये आप को जिसलिये यहां से पुरी की ओर भेजता हूं ॥३०॥ आपको नगरी में गया देख कर मेरी छोटी माता कैकयी को विश्वास होगा, कि राम वन को चला गया है ॥३१॥ ऐसा न होने से अप्रसन्न हुई देवी मेरे वनवास को चले जाने पर भी धार्मिक राजा पर मिथ्यावादी होने की शङ्का करेगी ॥३२॥ यह मेरा मुख्य प्रयोजन है, कि मेरी छोटी माता भरत से रक्षित समृद्धिमत् पुत्रराज्य को प्राप्त हो, ॥३३॥ मेरे प्रिय के अर्थ और राजा के प्रिय के अर्थ हे सुमन्त्र तू पुरी को जा और जो २ बातें आप को सन्देश दी हैं, उन को वैसे २ कहो ॥३४॥ सूत को यह कह कर और तसल्ली दकर अकायर राम गुह से युक्ति युक्त वचन बोला ३५

मूल—नेदानीं गुह योग्योऽयं वासो मे सजने वने। अवश्यमाश्रमे वासः कर्तव्यस्तद्गतो विधिः ॥३६॥ सोऽहं गृहीत्वा नियमं तपस्विजनभूषणम्। जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधक्षीरमानय ॥३७॥ तत्क्षीरं राजपुत्राय गुहः क्षिप्रमुपाहरत्। लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामस्तेनाकरोज्जटाः ॥३८॥ ततो वैखानसं मार्गमास्थितः सहलक्ष्मणः। व्रतमादिष्टवान्रामः सहायं गुहमब्रवीत् ॥३९॥ अप्रमत्तो बले कोशे दुर्गे जनपदे तथा। भवेथा गुह राज्यं हि दुरारक्षतमं मतम्

टीका—हे गुह अब मुझे सजन वन में रहना योग्य नहीं है, अवश्य आश्रम में रहना है, इस लिये वैसी विधि करनी चाहिये ॥३६॥ सो मैं (भूशयनादि) नियम ग्रहण करके तपस्विजनों का भूषण जटाएं बनाकर जाऊंगा बड़ का दूध ले आ ॥३७॥ वह दूध गुह ने राजपुत्र को जल्दी भेट कर दिया उस से राम ने लक्ष्मण

की और अपनी जटाएं बनाई ॥३८॥ और लक्ष्मण समेत वानप्रस्थ धर्म का आश्रय करके उसके नियमों को अङ्गीकार किया और अपने सहायक गुह से बोला ॥३९॥ हे गुह सेना में, कोश में किले में और देश में सदा सावधान रहो, राज्य की रक्षा बड़ा कठिन काम है ॥४०॥

मूल—ततस्तं समनुज्ञाप्य गुहमिक्ष्वाकुनन्दनः । जगाम तूर्णमव्यग्रः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥४१॥ स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः । तितीर्षुः शीघ्रगां गङ्गामिदं वचनमब्रवीत् ॥४२॥ आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः । सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम् ॥४३॥ स भ्रातुः शासनं श्रुत्वा सर्वमप्रातिकूलयन् । आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥४४॥ अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः । ब्रह्मवत्क्षत्रवच्चैव जजाप हितमात्मनः ॥४५॥

टीका—तब गुह को अनुज्ञा देकर वह इक्ष्वाकुनन्दन पत्नी और लक्ष्मण समेत शान्त मन से गया ॥४१॥ नदी के तीर पर नौका को देख कर वह इक्ष्वाकुनन्दन तेज़ चलने वाली गंगा से पार होना चाहता हुआ लक्ष्मण से यह बोला ॥४२॥ हे नरश्रेष्ठ इस नौका को पकड़ कर धीरे से मनस्विनी सीता को उस पर चढ़ा और फिर आप चढ़ ॥४३॥ वह भाई की आज्ञा सुन कर उस के अनुसार चलता हुआ पहले सीता को चढ़ा कर फिर आप चढ़ा ॥४४॥ तब लक्ष्मण का बड़ा भाई तेजस्वी स्वयं आरूढ़ हुआ और ब्राह्मण और क्षत्रिय के योग्य अपने हित (मन्त्र) जपता भया ॥

मूल—अनुज्ञाय सुमन्त्रं च सबलं चैव तं गुहम् । आस्थाय नावं रामस्तु चोदयामास नाविकान् ॥४६॥ तीरं तु समनुज्ञाप्य नावं

हित्वा नरर्षभः । प्रातिष्ठत सह भ्रात्रा वैदेह्या च परंतपः ॥४७॥ अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्धनम् । भव संरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा ॥४८॥ अवश्यं रक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने । अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ॥४९॥

टीका—सुमन्त्र को और सेना समेत गुह को अनुज्ञा देकर के नौका पर सवार हो राम ने मल्लाहों को प्रेरा ॥४६॥ किनारे पर पहुंच कर नौका को छोड़कर शत्रुओं के तपाने वाला वह नरश्रेष्ठ भाई के और सीता के साथ रवाना हुआ ॥४७॥ तब वह महाबाहु सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले से बोला, सजन में वा निर्जन में रक्षा के लिये सावधान रहो ॥४८॥ इस अट्ट निर्जन वन में अवश्य रक्षा करनी योग्य है, हे लक्ष्मण तू आगे २ चल और सीता तेरे पीछे चले ॥४९॥

मूल-पृष्ठतोऽनु गमिष्यामि सीतां त्वां चानु पालयन् । अन्योन्यस्य हि नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ ॥५०॥ नहि तावदतिक्रान्ताऽसुकरा काचन क्रिया । अद्य दुःखं तु वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति ॥५१॥ प्रणष्टजनसंबाधं क्षेत्रारामविवर्जितम् । विषमं च प्रपातं च वनमद्य प्रवेक्ष्यति ॥५२॥ श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रतस्थे लक्ष्मणोऽग्रतः । अनन्तरं च सीताया राघवो रघुनन्दनः ॥५३॥

टीका-और पीछे २ मैं चलूंगा सीता की और तेरी रक्षा करता हुआ, यहां हमें आपही हे नर श्रेष्ठ ! एक दूसरे की रक्षा करनी होगी ॥५०॥ अभी तक कोई कठिन काम नहीं आया है, अब वैदेही वनवास के दुःख को देखेगी ॥५१॥ आज सीता उस बन में प्रवेश करेगी, जहां लोगों की भीड नहीं, खेत और बगीचे नहीं,, जो ऊंचा नीचा है और फिसलाने वाला है॥५२॥

राम के वचन को सुनकर लक्ष्मण आगे चला, पीछे सीता और उस के पीछे राम ॥ ५३ ॥

मूल–गतं तु गङ्गापरपारमाशु रामं सुमन्त्रः सततं निरीक्ष्य। अध्वप्रकर्षाद्विनिवृत्तदृष्टिर्मुमोच बाष्पं व्यथितस्तपस्वी ॥५४॥ स लोकपालप्रतिमप्रभावस्तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम्। ततः समृद्धाञ्छुभसस्यमालिनः क्रमेण वत्सान्मुदितानुपागमत् ॥५५॥ तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान्वराहमृश्यं पृषतं महारुरुम्। आदाय मध्ये त्वरितं बुभुक्षितौ वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम् ॥ ५६ ॥

टीका–राम को जल्दी गङ्गा के दूसरे पार गया हुआ देखकर सुमन्त्र ने अपनी दृष्टि मोड़ी, क्योंकि वह दूर मार्ग निकल गये थे और तब दुःखित हुए उस तपस्वी की छमाछम आंसुएं बरसीं ॥५४॥ वह लोकपालों के तुल्य प्रताप वाला वर देनेवाला महात्मा गङ्गा नदी के पार होकर तब क्रम से समृद्ध शुभ खेतों की मालाओं वाले मुदित वत्स देश में पहुंचे ॥५५॥ वहां वह वराह ऋष्य, पृषत, महारुरु इन चार मृगों को मार मेध्य (मांस) को जल्दी लेकर सायंकाल के वास के लिये एक वनस्पति के नीचे गये * ॥५६॥

सर्ग ४९ (व०५३,५४) भरद्वाज मुनि के आश्रम में जाना

मूल–स तं वृक्षंसमासाद्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्। रामो रमयतां

* राजऋषियों का शिकार खेलना सारे इतिहास गन्थों में पाया जाता है, सीता का छला जाना भी शिकार के हेतु ही हुआ। इस श्लोक को प्रक्षिप्त कहने वाले के पक्ष में अगले सर्ग में श्लोक १ में 'कहा उस वृक्ष के नीचे' और श्लोक ४ में कहा 'तस्मिन् महा वृक्षे=उस महावृक्ष के नीचे यह कथन असंगत होजाता है जबकि पहिले वृक्ष का वर्णन इस श्लोक के सिवाय है ही नहीं ॥

श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम् ॥१॥ अद्येयं प्रथमा रात्रिर्याता जनपदाद्बहिः। या सुमन्त्रेण रहिता तां नोत्कण्ठितुमर्हसि ॥२॥ जागर्तव्यमतन्द्रिभ्यामद्यप्रभृति रात्रिषु। योगक्षेमौ हि सीताया वर्तते लक्ष्मणावयोः ॥३॥ ते तु तस्मिन्महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम्। विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद्देशात्प्रतस्थिरे ॥४॥ यत्र भागीरथीं गङ्गां यमुनाभिप्रवर्तते। जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥ ते भूमिभागान् विविधान्देशांश्चापि मनोहरान्। अदृष्टपूर्वान्पश्यन्तस्तत्र तत्र यशस्विनः ॥ ६ ॥

टीका—उस वृक्ष के नीचे आ पश्चिम संध्या को उपासकर खुश रखने वालों में श्रेष्ठ राम लक्ष्मण से यह बोला ॥१॥ आज यह जनपद से बाहिर हमें पहिली रात आई है, जो सुमन्त्र से अलग होकर आई है, आपको अब उत्कण्ठा नहीं करनी चाहिये ॥२॥ आज से लेकर हमें रातें निरालस होकर जागना चाहिये, हे लक्ष्मण सीता का योग क्षेम हम दोनों के अधीन है ॥ ३ ॥ तब वह उस महावृक्ष के नीचे वह शुभ रात वास करके निर्मल सूर्य के उदय होने पर उस देश से रवाना हुए ॥४॥ जहां भागीरथी गङ्गा यमुना के साथ मिलती है, उस देश को लक्ष्य में रखकर बड़े वन को अवगाहन करके अनेक भूमि भागों को और मनोरम देश जो पहले नहीं देखे हुए थे उनको वहां देखते हुए वह यशस्वी गये ॥ ५, ६ ॥

मूल—यथा क्षेमेण संगच्छन् पश्यंश्चविविधान्द्रुमान्। निवृत्तमात्रे दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ७ ॥ प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम्। अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये सन्निहितो मुनिः ॥ ८ ॥ नूनं प्राप्ताः स्म संभेदं गङ्गायमुनयोर्वयम्। तथाहि श्रूयते शब्दो

वारिणोर्वारिघर्षजः ॥ ९ ॥ धन्विनौ तौ सुखं गत्वा लम्बमाने दिवाकरे । गङ्गायमुनयोः संधौ प्रापतुर्निलयं मुनेः ॥ १० ॥ स प्रविश्य महात्मानमृषिं शिष्यगणैर्वृतम् । संशितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम् ॥ ११ ॥ हुताग्निहोत्रं दृष्ट्वैव महाभागः कृताञ्जलिः । रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत् ॥ १२ ॥

टीका—चैन से जाता हुआ और विविध वृक्षों को देखता हुआ राम दिन के अस्त होते ही लक्ष्मण से बोला ॥७॥ प्रयाग की तरफ हे लक्ष्मण ऊंचे चढ़े हुए धूम को देख जो कि भगवान् अग्नि का झण्डा है इस से समझता हूं कि मुनि निकट है ॥ ८ ॥ निःसन्देह हम गङ्गा और यमुना के संगम को प्राप्त हुए हैं, क्योंकि जलका जल से टकराया हुआ शब्द सुनाई देता है ॥ ९. ॥ वह दोनों धनुर्धारी आराम से चलते हुए सूर्यास्त के समय गङ्गा यमुना के सङ्गम पर मुनि के आश्रम में पहुंचे ॥ १० ॥ वहां प्रवेश करके शिष्यगणों से घिरे हुए, तीक्ष्ण व्रतोंवाले, एकाग्र, तप से दिव्य दृष्टि पाये हुए, अग्निहोत्र कर चुके हुए महात्मा ऋषि को देखते ही महाभाग राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ हाथ जोड़कर अभिवादन किया ॥ ११, १२ ॥

मूल—न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः । पुत्रौ दशरथस्यावां भगवन्रामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ भार्या ममेयं कल्याणी वैदेही जनकात्मजा । मां चानुयाता विजनं तपोवनमनिन्दिता ॥१४॥ पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिरनुजः प्रियः । अयमन्वगमद्भ्राता वनमेव धृतव्रतः ॥ १५ ॥ पित्रा नियुक्ता भगवन्प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम् । धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥ १६ ॥

टीका—और लक्ष्मण के बड़े भाई ने अपना आप उस से निवेदन किया, कि हे भगवन् हम दोनों राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं ॥१३॥ और यह कल्याणी सीता जनक की कन्या मेरी पत्नी है, यह अनिन्दिता मेरे पीछे इस निर्जन तपोवन में आई है ॥१४॥ पिता से भेजे हुए मेरे साथ यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण व्रतों को धार कर वन में आया है ॥१५॥ पिता से आज्ञा दिये हुए हम हे भगवन् तपोवन में प्रवेश करेंगे और वहां फल मूल खाते हुए धर्म का ही आचरण करेंगे ॥१६॥

मूल—तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः। नानाविधानन्नरसान् वन्यमूलफलाश्रयान् ॥१७॥ तेभ्यो ददौ तप्ततपा वासं चैवाभ्यकल्पयत्। राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः ॥१८॥ प्रतिगृह्य तु तामर्चामुपविष्टं स राघवम्। भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा ॥१९॥ चिरस्य खलु काकुत्स्थं पश्याम्यहमुपागतम्। श्रुतं तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥२०॥ अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे। पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान्सुखम् ॥२१॥

टीका—उस बुद्धिमान् राजपुत्र के इस वचन को सुनकर तपस्वी मुनि ने आए राम को स्वागत से पूज कर जंगली मूल फलों के आश्रित नानाविधि अन्नरस उनको दिये, और वासस्थान दिया ॥ १७,१८ ॥ उस पूजा को स्वीकार करके बैठे हुए राम को भरद्वाज यह धर्मयुक्त वाक्य बोला ॥१९॥ हे राम चिर से तुझे आया देखता हूं, मैंने तेरा बिना कारण निकालाजाना सुना है ॥ २० ॥ महानदियों के सङ्गम पर यह स्थान एकान्त पवित्र और रमणीय है, यहां आप सुख से रहिये ॥ २१ ॥

मूल—एवमुक्तस्तु वचनं भरद्वाजेन राघवः। प्रत्युवाचशुभं वाक्यं रामः सर्वहिते रतः ॥२२॥ भगवन्नित आसन्नः पौरजानपदोजनः सुदर्शमिह मां प्रेक्ष्य मन्येऽहमिममाश्रमम् ॥२३॥ आगमिष्याति वैदेहीं मां चापि प्रेक्षको जनः। अनेन कारणेनाहमिहवासं न रोचये ॥२४॥ एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम्। रमते यत्र वैदेही सुखार्हा जनकात्मजा ॥२५॥ एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरद्वाजो महामुनेः। राघवस्य तु तद्वाक्यमर्थग्राहकमब्रवीत् ॥२६॥

टीका—जब भरद्वाज ने राम को यह कहा, तो सब के हित में प्रीति करने वाला राम यह शुभ वाक्य कहता भया ॥ २२ ॥ हे भगवन्! यहां पुर और देश के लोग निकट हैं, मैं यह समझता हूं, कि इस आश्रम में मेरा देखना आसान जान ॥२३॥ मुझे और जानकी को देखने के लिये दर्शक लोग आवेंगे, इस कारण से मैं यहां रहना नहीं पसन्द करता हूं ॥२४॥ हे भगवन्! एकान्त में कोई उत्तम आश्रम स्थान देखिये, जहां सुखों के योग्य जनक पुत्री सीता रमण करे ॥२५॥ महामुनि भरद्वाज इस शुभ वाक्य को सुन कर राम के अर्थ का साधक वाक्य बोला ॥२६॥

मूल—दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि। महर्षिसेवितःपुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥२७॥ गोलांगूलानुचरितो वानरर्क्षनिषेवितः। चित्रकूट इतिख्यातो गन्धमादनसंनिभः ॥२८॥ यावता चित्रकूटस्य नरः शृंगाण्यवेक्षते। कल्याणानि समाधत्ते न मोहे कुरुते मनः ॥२९॥ प्रविविक्तमहं मन्ये तं वासं भवतः सुखम्। इह वा वनवासाय वस राम मया सह॥३०॥ सीतातृतीयः काकुत्स्थः परिश्रान्तः सुखोचितः। भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत्सुखम् ॥३१॥

टीका—इस कोस यहां से हे तात महर्षियों से सेवित, शुभदर्शन वाला वह पवित्र पर्वत है. जहां तू रहेगा ॥२७॥ लंगूर, वानर और रीछों से सेवित चित्रकूट नाम गन्धमादन पर्वत के तुल्य है ॥२८॥ ज्योंही कि चित्रकूट की चोटियों को मनुष्य देखता है। तो उस का मन कल्याणों में टिकता है. अज्ञान में नहीं जाता है ॥२९॥ वह ठीक एकान्त है, वहां आपका वास मैं सुखदायी समझता हूं अथवा यहां हे राम मेरे साथ वनवास के लिए वस ॥ ३० ॥ सुख के योग्य थका हुआ राम सीता लक्ष्मण समेत उस रम्य भरद्वाजश्रम में वह रात सुख से रहा ॥३१॥

सर्ग ५० व० ५५) चित्रकूट की यात्रा

मूल—उषित्वा रजनीं तत्र राजपुत्रावरिन्दमौ। महर्षिमभिवाद्याथ जग्मतुस्तं गिरिं प्रति॥१॥ तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकारह। प्रस्थितान्प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान् ॥२॥ ततः प्रचक्रमे वक्तुं वचनं स महामुनिः। भरद्वाजो महातेजा रामं सत्यपराक्रमम् ॥३॥ गङ्गायमुनयोः सन्धिमादाय मनुजर्षभौ। कालिन्दी मनुगच्छेतां नदीं पश्चान्मुखाश्रिताम् ॥४॥

टीका—शत्रुओं को दबाने वाले वह दोनों राजपुत्र वहां रात रहकर महर्षि को अभिवादन करके उस पर्वत को गए ॥१॥ उन को रवाना हुआ देख कर महर्षि ने उन का स्वस्त्ययन किया, जैसे पिता सगे पुत्रों का करता है ॥२॥ तब वह महातेजस्वी भरद्वाज मुनि सच्चे पराक्रम वाले राम को वाक्य कहने लगा ॥३॥ गङ्गा यमुना के सङ्गम पर पहुंच कर हे मनुष्य श्रेष्ठो! पश्चिममुखी (गङ्गा) के आश्रित यमुना नदी के साथ २ जाओ ॥४॥

मूल—अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्रस्रोतसमापगाम्। तस्यास्तीर्थं प्रचरितं प्रकामं प्रेक्ष्य राघवौ ॥५॥ तत्र यूयं प्लवं कृत्वा तरतांशुमतीं नदीम्। ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम् ॥६॥ परीतं बहुभि वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम्। क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं प्रेक्ष्य च काननम् ॥७॥ स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतः सुबहुशो मया। रम्यो मार्दवयुक्तश्च दावैश्चैव विवर्जितः ॥८॥

टीका—तब तेज़प्रवाह वाली यमुना नदी का एक पुराना घाट जहां लोगों का प्रायः आना जाना है, उस को देख कर हे राघवो ॥५॥ वहां तुला बनाकर यमुना से पार उतर हरे पत्ते वाले श्यामवट (श्यामनामी बड़) को जाओ, जो चारों ओर और बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ है और जिस के नीचे सिद्धजन रहते हैं, फिर आगे कोस भर जाकर नील वन को देखोगे ६, ७ वह चित्रकूट का मार्ग है, मैं बहुत बार उस मे गया हूं, सुहावना कोमल, और बन की अग्नि से रहित है ॥८॥

मूल—इति पन्थानमादिश्य महर्षिः संन्यवर्तत। अभिवाद्य तथेत्युक्त्वा रामेण विनिवर्तितः ॥९॥ अथासाद्य तु कालिन्दीं शीघ्र स्रोतस्विनीं नदीम्। चिन्तामापेदिरे सर्वे नदीजलतितीर्षवः ॥१०॥ तौ काष्ठसंघाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम्। शुष्कैर्वंशैः समास्तीर्णं सुशीरैश्च समावृतम् ॥११॥ ततो वैतसशाखाश्च जम्बुशाखाश्च वीर्यवान्। चकार लक्ष्मणश्छित्वा सीतायाः सुखमासनम् ॥१२॥

टीका—इस प्रकार मार्ग बतलाकर महर्षि लौट आया जबकि तथास्तु कह कर अभिवादन करके राम ने लौटाया ॥९॥ तब तेज चलने वाली यमुना नदी पर पहुंच नदी के जल से पार होने की इच्छा से वह चिन्ता में पड गए ॥१०॥ तब उन्हों ने

बहुत सी लकडियों को मेल कर एक बडा तुला बनाया सूखे बांसों का उस का तला बनाया गया और चारों ओर नड़ लगाए गए ॥११॥ तब वीर लक्ष्मण ने बैत की और जम्बू की डालियां काट कर सीता के लिए सुखदायी आसन बनाया ॥१२॥

मूल–तत्र श्रियमिवाचिन्त्यां रामो दाशरथिः प्रियाम् । ईषत्सलज्जमानां तामध्यारोपयत प्लवम् ॥१३॥ पार्श्वे तत्र च वैदेह्या वसने भूषणानि च । प्लवे कठिनिकाजं च रामश्चक्रे समाहितः॥१४॥ आरोप्य सीतां प्रथमं संघाटं परिगृह्य तौ । ततः प्रतेरतुर्यत्तौ प्रीतौ वीरौ दशरथात्मजौ ॥१५॥ ते तीर्णाः प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात् । श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम् ॥१६॥ क्रोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । बहून्मेध्यान्मृगान्हत्वा चरतुर्यमुनावने ॥१७॥ विहृत्य ते बर्हिणपूगनादिते शुभे वने वारणवानरायुते । समं नदीवप्रमुपेत्य सत्वरं निवासमाजग्मुरदीनदर्शनाः ॥१८॥

टीका–वहां श्री की तरह अचिन्तनीय कुछ २ लजाती हुई उस प्रिया को दाशरथि राम ने तुला पर चढ़ाया ॥१३॥ और पास ही वहां तुला पर सीता के वस्त्र और भूषण और अपने खनित्र और पिटारी सहित शस्त्रों को रक्खा ॥१४॥ सीता को पहले चढ़ा कर पौरुषवान् वह दोनों दशरथसुत वीर प्रसन्न हुए तुला को लेकर उस से पार उतर गए ॥१५॥ वह पार जा तुला को छोड़ यमुना के बन में से चलते हुए हरे पत्तों वाले शीतल श्यामवट के पास पहुंचे ॥१६॥ उस से आगे कोस भर जाकर दोनों भाई राम लक्ष्मण यमुना के वन में बहुत से मेध्य मृगों को मार कर विचरते भए ॥ १७ ॥ मोरों के समूहों से गूंजते हुए वानर और हाथियों

से युक्त उस शुभ वन में सैर करके दीन न दीखने वाले वह सब नदी के सुन्दर किनारे पर रात्रिवास करते भये ॥

सर्ग ५१ (व० ५६) चित्रकूट में वास

मूल—तत उत्थाय ते सर्वे स्पृष्ट्वा नद्याः शिवं जलम् । पन्थानमृषिणादिष्टं चित्रकूटस्य तं ययुः ॥ १ ॥ ततः संप्रस्थितः काले रामः सौमित्रिणा सह । सीतां कमलपत्राक्षीमिदं वचनमब्रवीत् ॥२॥ आदीप्तानिव वैदेही सर्वतः पुष्पितान्नगान् । स्वैः पुष्पैः किंशुकान्पश्य मालिनः शिशिरात्यये ॥३॥ पश्य भल्लातकान् बिल्वान्नरैरनुपसेवितान् । फलपुष्पैरवनतान्नूनं शक्ष्याम जीवितुम् ॥ ४ ॥ पश्य द्रोणप्रमाणानि लम्बमानानि लक्ष्मण । मधूनि मधुकारीभिः संभृतानि नगे नगे ॥ ५ ॥ एष क्रोशति नत्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति । रमणीये वनोद्देशे पुष्पसंस्तरसंकटे ॥ ६ ॥

टीका—वहां से उठकर वह सारे नदी के शुभ जल को स्पर्श (अर्थात् स्नान सन्ध्या) करके ऋषि से बतलाए हुए चित्रकूट के उस मार्ग को गये ॥ १ ॥ उस समय लक्ष्मण के साथ चलता हुआ राम कमल जैसे नेत्रोंवाली सीता से यह वचन बोला ॥ २ ॥ हे वैदेहि ! सब ओर से फूले हुए मानो जलते हुए इन केसुओं को देख, जो वसन्त में अपने फूलों की मालाएं हाथ में लिये खड़े हैं ॥ ३ ॥ भलावों ओर बिल्लों को देख जो मनुष्यों से छेड़े नहीं गये, फल और पत्तों से झुके हुए हैं, निःसन्देह हमारा यहां निर्वाह होगा ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण मधुमक्खियों से तय्यार किये हुए द्रोण द्रोण जितने, वृक्ष २ पर लटकते हुए शहद के इन छत्तों को देख ॥ ५ ॥ वन के इस सुहावने स्थान में जो फूलों के बिछौनों

मे घना होरहा है, यहां एक ओर दात्यूह बोल रहा है, और उसके मुकाबिले दूसरी ओर मोर बोल रहा है ॥ ६ ॥

मूल—मातङ्गयूथानुसृतं पक्षिसंघानुनादितम् । चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ॥ ७ ॥ समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते। पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ॥ ८ ॥ ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सह सीतया । रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम् ॥ ९ ॥ अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकि मभिवादयन् । तान्महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित् ॥ १० ॥ आस्यतामिति चोवाच स्वागतं विनिवेद्य च ॥ ११ ॥ ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः । संनिवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः ॥ १२ ॥

टीका—ऊंची चोटियों वाले इस चित्रकूट पर्वत को देख, जिसमें हाथियों के यूथ घूम रहे हैं, और पक्षियों के समूह बोल रहे हैं ॥ ७ ॥ हे तात चित्रकूट का यह बन, जो सम भूतल वाला है, सुहावना है, बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ है, पवित्र है, इसमें रमण करेंगे ॥ ८ ॥ तब वह सीता सहित पाओं से चलते हुए दोनों भाई सुहावने मनोरम चित्रकूट पर्वत पर पहुंचे ॥ ९ ॥ सारे आश्रम में जाकर वाल्मीकि को अभिवादन करते भए, धर्मज्ञ महर्षि बड़ा प्रसन्न भया और उन की पूजा की ॥ १० ॥ और स्वागत कहकर उनको बैठने की आज्ञा दी ॥ ११ ॥ तब महाबाहु लक्ष्मण के बड़े भाई प्रभु ने यथाविधि ऋषि को अपना आप बतलाया । और उसके पीछे लक्ष्मण को कहा ॥ १२ ॥

मूल—लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च । कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः ॥ १३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् । आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिन्दमः ॥ १४ ॥

रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः । संग्रहेणाकरोत्सर्वान्मन्त्रान्सत्रावसानिकान् ॥ १५ ॥ इष्ट्वा देवगणान्सर्वान्विवेशावसथं शुचिः । बभूव च मनोल्हादो रामस्यामित तेजसः॥१६॥ सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थाम् । ननन्द हृष्ट्वा मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दुःखं पुरविप्रवासात् ॥१७॥

टीका—हे लक्ष्मण सुन्दर और दृढ़ लकड़ियें ला और कुटिया बना, हे सौम्य ! यहां रहने में मेरा मन प्रसन्न है ॥१३॥ उस के इस वचन को सुन कर शत्रुओं का दमन करनेवाला लक्ष्मण अनेक वृक्षों को काट लाया और उस से पर्णशाला (कुटिया) बानाई ॥१४॥ तब राम ने स्नान करके शुद्ध हो नियम सहित जप करके यज्ञ समाप्ति पर्यन्त मन्त्रों से (गृह प्रवेशादि) क्रिया ॥१५॥ सारे देवगणों को पूजकर पवित्र राम कुटिया में प्रविष्ट हुआ और उस अपरिमित तेजवाले राम का मन बड़ा प्रसन्न हुआ ॥१६॥ बड़े सुहावने चित्रकूट को और सुन्दर घाटवाली, मृगों और पक्षियों से सेवित माल्यवती नदी को पाकर राम प्रसन्न हुआ और पुर से प्रवास का सारा दुःख भूल गया ॥१७॥

*सर्ग ५२ (व० ५७) सारथि का अयोध्या में पहुंचना

मूल—कथयित्वा तु दुःखार्तः सुमन्त्रेण चिरं सह । रामे दक्षिणकूलस्थे जगाम स्वगृहं गुहः॥१॥ भरद्वाजाभिगमनं प्रयागे च सभाजनम् । आ गिरेर्गमनं तेषां तत्रस्थैरभिलक्षितम् ॥२॥ अनुज्ञातः सुमन्त्रोऽथ योजयित्वा हयोत्तमान् । अयोध्यामेव नगरीं प्रययौगाढदुर्मनाः ॥३॥ ततः सायान्हसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः । अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ॥४॥

टीका—(इस प्रकार राम की स्थिति कहकर अब राम से भेजे हुए सुमन्त्र का काम कहते हैं)—राम के दक्षिण किनारे पर चले जाने पर गुह बड़ा पीड़ित हुआ सुमन्त्र के साथ देर तक बातें कर अपने घर को गया ॥ १ ॥ उनका प्रयाग में भरद्वाज के पास जाना और आदर पाना, और आगे पर्वत को जाना उन्होंने वहां ठहरकर (जासूसों द्वारा) मालूम किया॥२॥ * तब अनुज्ञा दिया हुआ सुमन्त्र उत्तम घोड़ों को जोडकर अतीव दुर्मन हुआ अयोध्या को ही गया ॥३॥ तब दूसरे दिन सायं समय वह सारथि अयोध्या में पहुंचकर उसे आनन्द से शून्य देखता भया ॥ ४ ॥

मूल—सुमन्त्रमभिधावन्तः शतशोऽथ सहस्रशः। क्व राम इति पृच्छन्तः सूतमभ्यद्रवन्नराः ॥५॥ तेषां शशंस गङ्गायामहमापृच्छ्य राघवम् । अनुज्ञातो निवृत्तोस्मि धार्मिकेण महात्मना ॥६॥ ते तीर्णा इति विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखा नराः । अहो धिगिति निःश्वस्य हा रामेति विचुक्रुशुः ॥७॥ शुश्राव च वचस्तेषां वृन्दं वृन्दं च तिष्ठताम् । हताः स्म खलु ये नेह पश्याम इति राघवम् ॥८॥

---

* शृङ्गवेरपुर में राम सुमन्त्र और गुह को छोड़कर आगे गए। गुह ने उनके ठहरने का पता लगाने के लिए जासूस भेजे, राम जब प्रयाग में भरद्वाज के पास रहकर, सवेरे चित्रकूट पर जाकर वास करने का निश्चय करके चल दिए, तो उसी दिन उन जासूसों ने आकर गुह को पता दिया, सुमन्त्र भी पता लेने को वहां ठहरा हुआ था। पता लेकर सुमन्त्र उसी दिन चल दिया। राम अयोध्या से चलकर एक रात तमसा पर, दूसरी गंगा पर, तीसरी वन में, चौथी प्रयाग में, पांचवें दिन जासूस शृङ्गवेरपुर में वापिस आए, उसी दिन गुह अयोध्या को रवाना हुआ. और दूसरे दिन अयोध्या में पहुंचा. उसी रात को राजा का देहान्त हुआ।

टीका—सीधा (राज महल को) जाते हुए सुमन्त्र के "कहां राम है" ऐसा पूछते हुए सैंकड़ों और सहस्रों लोग पीछे दौड़े ॥५॥ उनको उस ने कहा, गंगा पर मैं राम से आज्ञा लेकर उस धार्मिक महात्मा से अनुज्ञा दिया हुआ लौटा हूं ॥६॥ "वह पार चले गये" ऐसा जानकर आंसुओं से पूर्ण मुखों वाले, लोग अहोधिक् ऐसा लम्बा सांस भरकर हा राम ऐसे पुकारते भए ७ वृन्द वृन्द बनकर खड़े हुए उन लोगों के इस वचन को सूत सुनता भया, हा हम हत होगये, जो यहां राम को नहीं देखते हैं॥८॥

मूल—किं समर्थं जनस्यास्य किं प्रियं किं सुखावहम् । इति रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम् ॥९॥वातायनगतानां च स्त्रीणामन्वन्तरापणम् । राममेवाभितप्तानां शुश्राव परिदेवनम् ॥१०॥ स राजमार्गमध्येन सुमन्त्रः पिहिताननः । यत्र राजा दशरथस्तदेवोपययौ गृहम् ॥११॥ सोऽवतीर्य रथाच्छीघ्रं राजवेश्म प्रविश्य च॥ कक्ष्याः सप्ताभिचक्राम महाजनसमाकुलाः ॥१२॥ स प्रविश्याष्टमीं कक्ष्यां राजानं दीनमातुरम् । पुत्र शोकपरिद्यूनमपश्यत्पाण्डुरे गृहे ॥१३॥ अभिगम्य तमासीनं राजानमभिवाद्य च । सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ॥१४॥ स तूष्णीमेव तच्छ्रुत्वा राजा विद्रुतमानसः । मूर्च्छितो न्यपतद्भूमौ रामशोकाभिपीड़ितः ॥१५॥ ततोऽन्तःपुरमाविद्धं मूर्च्छितं पृथिवीपतौ । उच्छ्रित्य बाहू चुक्रोश नृपतौ पतिते क्षितौ ॥१६॥

टीका—किस में लोगों की भलाई है, क्या इनको प्रिय है, किस से इनको सुख लाभ होता है, इस प्रकार (सोचते और करते हुए) राम ने नगर को पितृवत् पालन किया है ॥ ९ ॥ और बाज़ार में से जाता हुआ वह (सूत) झरोखों में स्थित, राम के

शोक से संतप्त स्त्रियों की पुकार भी सुनता भया ॥१०॥ सुमन्त्र राजमार्ग के मध्य में से मुख ढांपकर जहां राजा दशरथ था। उसी घर को गया ॥११॥ वह जल्दी रथ से राजमहल में प्रवेश कर बहुत मनुष्यों से भरी हुई, सात डेवढ़ियें लंघ गया ॥१२॥ आठवीं डेवढ़ी में प्रवेश करके उस ने धवलगृह में राजा को दीन आतुर पुत्र के शोक से मुरझाया हुआ देखा ॥ १३ ॥ बैठे हुए राजा के पास जाकर अभिवादन करके सुमन्त्र ने राम का वचन यथोक्त निवेदन किया ॥ १४ ॥ राजा उसको चुपचाप सुनकर राम के शोक से पीड़ित हुआ, मन के अत्यन्त डुलजाने से मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा॥१५॥राजा के मूर्छित हो भूमि प गिर पड़ने पर सारा अन्तःपुर दुःखी हो भुजा उठाकर रोने लगा

मूल—सुमित्रया तु सहिता कौसल्या पतितं पतिम्। उत्थापयामास तदा वचनं चेदमब्रवीत् ॥१७॥ इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्करकारिणः। वनवासादनुप्राप्तं कस्मान्न प्रतिभाषसे ॥१८॥ देव यस्या भयाद्रामं नानुपृच्छसि सारथिम्। नेह तिष्ठति कैकेयी विश्रब्धं प्रतिभाष्यताम् ॥१९॥ सा तथोक्त्वा महाराजं कौसल्या शोकलालसा। धरण्यां निपपाताशु बाष्पविप्लुतभाषिणी ॥२०॥

अर्थ—सुमित्रा सहित कौसल्या गिरे हुए पति को उठाती भई और यह वचन बोली ॥ १७ ॥ हे महाभाग उस दुष्कर काम करने वाले का दूत वनवास से आया है, क्यों इस से बात नहीं करते हो ॥१८॥ हे देव ! जिसके भय से सारथि से राम की बात नहीं पूछते हो, वह कैकेयी यहां नहीं है, निःशंक इस से बात करो (शोक के वेग से ऐसा कहा है)॥१९॥शोक से

भरी हुई कौसल्या महाराज को ऐसा कह करके आंसुओं से गद्गद बोलती हुई पृथिवी पर गिर पड़ी ॥२०॥

सर्ग ५३ (व० ५८) राजा का राम का वृत्तान्त पूछना

मूल—प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः । तदाजुहाव तं सूतं रामवृत्तान्तकारणात् ॥१॥ राजा तु रजसा सूतं ध्वस्ताङ्गं समुपस्थितम् । अश्रुपूर्णमुखं दीनमुवाच परमार्तवत् ॥२॥ सुकुमार्या तपस्विन्या सुमन्त्र सह सीतया । राजपुत्रौ कथं पादैरवरुह्य रथाद्गतौ ॥ ३ ॥ किमुवाच वचो रामः किमुवाच च लक्ष्मणः । सुमन्त्र वनमासाद्य किमुवाच च मैथिली ॥४॥ इति सूतो नरेन्द्रेण चोदितः सज्जमानया । उवाच वाचा राजानं स बाष्पपरिबद्धया ५ अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन् । अञ्जलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥ ६ ॥ +सूत मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः । शिरसा वन्दनीयस्य वन्द्यौ पादौ महात्मनः ॥ ७ ॥+ सर्वमन्तःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात्त्वया । आरोग्यमविशेषेण यथार्हमभिवादनम् ॥८।+माता च मम कौसल्या कुशलं चाभिवादनम्। अप्रमादं च वक्तव्या ब्रूयाश्चैनामिदं वचः ॥९॥+धर्मनित्या यथाकालमग्न्यागारपरा भव । देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय

टीका—जब राजा को कुछ तसल्ली हुई मूर्छा से फिर स्मृति हुई तब उस ने राम का वृत्तान्त जानने के लिए सूत को बुलाया ॥१॥ धूल से लिबड़े हुए अङ्गोंवाले, आंसुओं से पूर्ण मुखवाले, दीन सूत से राजा अत्यन्त दुःखिया की तरह बोला ॥२॥ हे सुमन्त्र ! सुकुमारी बेचारी सीता समेत कैसे वह दोनों राजपुत्र रथ से उतर कर पैदल गए ॥३॥ हे सुमन्त्र बन में पहुंच कर रामने क्या कहा, लक्ष्मण ने क्या कहा और सीता ने क्या कहा

॥४॥ ऐसे जब राजा ने फिसलती हुई वाणी से सूत को प्रेरा, तो आंसुओं से रुकती हुई वाणी के साथ उसने राजा को उत्तर दिया ॥५॥ हे महाराज धर्म का पालन करते हुए रामने (आप की ओर) हाथ जोड़कर और सिर से प्रणाम करके मुझे कहा॥६॥ हे सूत मेरे वचन से जगत् विख्यात, वन्दन के योग्य महात्मा पिता के चरणों पर सिर से प्रणाम करना ॥७॥ फिर सारे अन्तःपुर को हे सूत! मेरे वचन से आरोग्य कहना और यथा योग्य बिना किसी भेद के अभिवादन करना ॥८॥ इस के पीछे माता कौसल्या को कुशल कहना और अभिवादन करना, धर्म में प्रमाद से भी चूक न हो, इस के लिए कहना, और यह वचन कहना ॥ ९ ॥ धर्मप्रधान हो और ठीक समय पर अग्निहोत्र परायण हो और हे देवि! देवतावत् राजा के पाओं को पूज १०

मूल—भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च। सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥११॥ लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो निःश्वसन्वाक्यमब्रवीत्। केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः ॥१२॥ असमीक्ष्य समारब्धं विरुद्धं बुद्धिलाघवात्। जनयिष्यति संक्रोशं राघवस्य विवासनम् ॥१३॥ जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी। अदृष्टपूर्वव्यसना नैव मां किंचिदब्रवीत् ॥१४॥ उद्वीक्ष्यमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता। मुमोच सहसा बाष्पं प्रयान्तमुपवीक्ष्य मा ॥१५॥ उभाभ्यां राजपुत्राभ्यामथ कृत्वाहमञ्जलिम्। प्रस्थितो रथमास्थाय तद्दुःखमुपधारयन् ॥१६॥

टीका—भरत को कुशल कहना और मेरे वचन से कहना, कि सारी माताओं में न्याय से बर्ताव रखना ॥११॥ लक्ष्मण तो क्रुद्ध हुआ आह भर कर यह वाक्य बोला, किस अपराध से यह राज

पुत्र निकाला गया है ॥१२॥ यह बिन सोचे विरुद्ध काम किया गया है, राम का निकालना निन्दा उत्पन्न कर देगा ॥१३॥ जानकी बेचारी तो हे महाराज ! जिस ने कभी दुःख नहीं देखा, लम्बा सांस भर कर मुझ से कुछ न बोली ॥१४॥ हां बन की ओर चलते हुए भर्ता को देख कर उस का मुख सूखने लगा और एकाएक आंसु बहने लग गये ॥१५॥ तब दोनों राजपुत्रों को हाथ जोड़ कर उन के वियोग के दुख को धारण करता हुआ मैं रथ पर चढ़ कर रवाना हुआ ॥१६॥

मूल–गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान्बहून् । आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ॥१७॥ प्रविशन्तमयोध्यायां न कश्चिदभिनन्दति । नरा राममपश्यन्तो निःश्वसन्ति मुहुर्मुहुः ॥

टीका–गुह के साथ वहां बहुत दिन रहा हूं, इस आशा से कि कदाचित् राम मुझे फिर बुलाले ॥१७॥ अयोध्या में प्रवेश करते हुए मुझे कोई अभिनन्दन नहीं करता है लोग राम को न देखते हुए बार २ लम्बे सांस भर रहे हैं ॥१८॥

मूल–निरानन्दा महाराज रामप्रव्राजनातुरा । कौसल्या पुत्रहीनेव अयोध्या प्रतिभाति मे ॥१९॥ सूतस्य वचनं श्रुत्वा वाचा परमदीनया । बाष्पोपहतया सूतमिदं वचनमब्रवीत् ॥२०॥ भवितव्यतया नूनमिदं वा व्यसनं महत् । कुलस्यास्य विनाशाय प्राप्तं सूत यदृच्छया ॥२१॥ अतो नु किं दुःखतरं योऽहमिक्ष्वाकुनन्दनम् । इमामवस्थामापन्नो नेह पश्यामि राघवम् २२ हा राम रामानुज हा हा वैदेहि तपस्विनि । न मां जानीत दुःखेन म्रियमाणमनाथवत् ॥२३॥ यस्मिन् बत निमग्नोऽहं कौसल्ये राघवं विना । दुस्तरो जीवता देवि मयायं शोकसागरः ॥२४॥

टीका—राम के निकालने से आतुर हुई यह सारी अयोध्या हे महाराज मुझे पुत्र से वियुक्त हुई कौसल्या के तुल्य आनन्द से शून्य प्रतीत होती है ॥ १९ ॥ सूत के वचन को सुन कर राजा आंसुओं से उपहत परमदीन वाणी से सूत को यह वचन बोला ॥ २० ॥ निःसन्देह होनी ही ऐसी थी, जो हे सूत इस कुल के नाश के लिये अचानक यह बड़ा व्यसन प्राप्त हुआ है २१ इस से बढ़ कर और दुःख क्या होगा, जो मैं इस अवस्था को प्राप्त हुआ इक्ष्वाकुनन्दन राम को नहीं देखता हूं ॥२२॥ हा राम, हा लक्ष्मण, हा २ बेचारी जानकी, तुम मुझे इस दुःख से अनाथ की तरह मरता हुआ नहीं जानते हो ॥२३॥ हे कौसल्या मैं राम के बिना जिस शोकसागर में डूबा हुआ हुं, उस से अब हे देवि ! जीते जी पार होना अशक्य है ॥२४॥

सर्ग ५४ (व० ६१, ६२) कौसल्या और दशरथ का विलाप

मूल—कौसल्या रुदती चार्ता भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ यद्यपि त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः । सानुक्रोशो वदान्यश्च प्रियवादी च राघवः ॥ २ ॥ यत्त्वयाऽकरुणं कर्म व्यपोह्य मम बान्धवाः । निरस्ताः परिधावन्ति सुखार्हाः कृपणा वने ॥ ३ ॥ गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मजः । तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते ॥४॥ तत्र त्वं मम नैवासि रामश्च वनमाहितः । न वनं गन्तुमिच्छामि सर्वथा हा हता त्वया ॥ ५ ॥

टीका—कौसल्या अति पीड़ित हुई, रोकर भर्त्ता से यह बोली ।१। यद्यपि तीनों लोकों में आप का यश फैला हुआ है, कि राघव बड़ा दयावान, बड़ा उदार, और प्रियवादी है ॥ २ ॥ पर राज्य से हटाकर आप से निकाले हुए मेरे बन्धु सुखों के योग्य बेचारे

अब वन में दौड़ रहे हैं, यह आपने दया का काम नहीं किया ॥ ३ ॥ स्त्री का आश्रय एक पति होता है, दूसरा पुत्र, तीसरे ज्ञाति चौथा कोई नहीं है ॥ ४ ॥ सो आप तो मेरे हुए नहीं, राम वन में निकाला गया, और मैं (आपको छोड़) जाना नहीं चाहती, सर्वथा शोक ! आपने मुझे मार डाला है ॥ ५ ॥

मूल—एवं तु क्रुद्धया राजा राममात्रा सशोकया । श्रावितः परुषं वाक्यं कौसल्यामाह दुःखितः ॥ ६ ॥ प्रसादये त्वां कौसल्ये रचितोऽयं मयाञ्जलिः । वत्सला चानृशंसा च त्वं हि नित्यं परेष्वपि ॥ ७ ॥ भर्त्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा । धर्मं विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम् ॥ ८ ॥ सा त्वं धर्मपरा नित्यं दृष्टलोकपरावरा । नार्हसे विप्रियं वक्तुं दुखितापि सुदुःखितम् ॥ ९ ॥ तद्वाक्यं करुणं राज्ञः श्रुत्वा दीनस्य भाषितम् । कौसल्या व्यसृजद्बाष्पं प्रणालीव नवोदकम् ॥ १० ॥

टीका—इस प्रकार शोक से भरी हुई क्रुद्ध हुई राममाता ने राजा को कठोर वाक्य सुनाया, तो वह दुःखित हुआ कौसल्या को कहने लगा ॥ ६ ॥ हे कौसल्या हाथ जोडकर तुझ से क्षमा मांगता हूं, तू सदा बेगानों पर दया रखनेवाली, और प्यार करने वाली है ॥ ७ ॥ भर्त्ता हे देवि ! चाहे निर्गुण हो, चाहे गुणवान् हो उन स्त्रियों का साक्षात् देवता होता है, जो धर्म को विचारती हैं ॥ ८ ॥ सो तू जोकि सदा धर्मपरायण रहनेवाली है, जिसने लोक में सब ऊंच नीच देखा है, तू दुःखी होकर भी मुझ दुःखिया को विप्रिय कहने योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ दीन हो राजा से कहे इस करुण वाक्य को सुनकर कौसल्या

के इसतरह आंसु बहने लगे जिसतरह प्रणाली से नया जल (बरसाती पानी) बहता है ॥ १० ॥

मूल–सा मूर्ध्नि बद्ध्वा रुदती राज्ञः पद्ममिवाञ्जलिम् । संभ्रमादब्रवीत्त्रस्ता त्वरमाणाक्षरं वचः ॥ ११ ॥ प्रसीद शिरसा याचे भूमौ निपतितास्मि ते । याचितास्मि हता देव क्षन्तव्याहं नहि त्वया ॥ १२ ॥ नैषा हि सा स्त्री भवति श्लाघनीयेन धीमता । उभयोर्लोकयोर्लोके पत्या या संप्रसाद्यते ॥ १३ ॥ जानामि धर्मं धर्मज्ञ त्वां जाने सत्यवादिनम् । पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम् ॥ १४ ॥ शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम् । शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः ॥ १५ ॥

टीका–वह रोती हुई पद्म की तरह दोनों हाथ माथे पर जोड़कर अतीव आदर से डरती हुई जल्दी २ वह वचन बोली ॥ ११ ॥ क्षमा करो, सिर झुका पृथिवी पर झुककर प्रार्थना करती हूं, हे देव ! आप के क्षमा मांगने से मैं मन्दभागिनी हुई हूं, आप मुझ से क्षमा मांगें, यह योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ वह स्त्री ही नहीं है, जिससे दोनों लोकों में श्लाघनीय बुद्धिमान् अपना पति लोक में क्षमा मांगता है ॥ १३ ॥ हे धर्मज्ञ ! मैं धर्म को जानती हूं, और जानती हूं, कि आप सत्यवादी हैं, किन्तु पुत्रशोक से पीडित हुई मैंने वह कुछ कह दिया है ॥ १४ ॥ शोक धैर्य को नष्ट कर देता है, शास्त्र को भुला देता है, सब कुछ नाश कर देता है, शोक के तुल्य शत्रु नहीं है ॥ १५ ॥

मूल–शक्यमापतितः सोढुं प्रहारो रिपुहस्ततः । सोढुमापतितः शोकः सुसूक्ष्मोऽपि न शक्यते ॥ १६ ॥ वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते । यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम ॥ १७ ॥

तं हि चिन्तयमानायाः शोकोऽयं हृदि वर्धते । नदीनामिव वेगेन समुद्रसलिलं महत् ॥ १८ ॥ एवं हि कथयन्त्यास्तु कौसल्यायाः शुभं वचः । मन्दरश्मिरभूत्सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥ १९ ॥ अथ प्रह्लादितो वाक्यैर्देव्या कौसल्यया नृपः । शोकेन च समाक्रान्तो निद्राया वशमेयिवान् ॥ २० ॥

टीका—शत्रु के हाथ से आया हुआ प्रहार सहारा जासकता है, पर शोक आया हुआ अति सूक्ष्म भी नहीं सहारा जासकता है ॥१६ राम को बनवास गए पांच रातें बीत चुकी हैं, जो शोक से दूर हुए हर्ष वाली को पांच वरसों के तुल्य बीती हैं ॥ १७ ॥ उसी का चिन्तन करते हुए मेरे हृदय में शोक बढ़ रहा है, जिस तरह नदियों के वेग से समुद्र का बडा जल ॥ १८ ॥ इस प्रकार कौसल्या के शुभ वचन कहते हुए सूर्य की किरणें मन्द हुईं और क्रमशः रातप्रवृत्त हुई ॥ १९ ॥ कौसल्या देवी से अपने वाक्यों से प्रसन्न किया हुआ और शोक से दबा हुआ उस समय राजा निद्रा के वश को प्राप्त हुआ ॥ २० ॥

सर्ग ५९ (व० ६३) श्रवण के मारने का स्मरण

मूल—प्रतिबुद्धो मुहूर्त्तेन शोकोपहतचेतनः । अथ राजा दशरथः स चिन्तामभ्यपद्यत ॥ १ ॥ स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम् । अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद्दुष्कृतं कृतम् ॥ २ ॥ स राजा पुत्र शोकार्तः स्मृत्वा दुष्कृतमात्मनः । कौसल्यां पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ॥ ३ ॥ यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाऽशुभम् । तदेव लभते भद्रे कर्त्ता कर्मजमात्मनः ॥४॥ तदिदं मेऽनुसंप्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम् । संमोहादिह बालेन यथा स्याद्भक्षितं विषम् ॥ ५ ॥

टीका—कुछ देर पीछे जागा हुआ शोक से नष्ट हुई चेतना वाला राजा दशरथ सोचने लगा ॥१॥ राम को वन निकाले हुए इस छटी रात को आधीरात के समय उस राजा दशरथ को अपना किया दुष्कर्म याद आया ॥२॥ पुत्र के शोक से पीड़ित वह राजा अपने दुष्कर्म को याद करके पुत्र शोक से पीड़ित कौसल्या से यह वचन बोला ॥३॥ हे कल्याणि जो शुभ वा अशुभ कर्म पुरुष करता है, हे भद्रे उस अपने कर्मफल को अवश्य ही पाता है ॥४॥ सो हे देवि ! यह मुझे अपना ही उत्पन्न किया हुआ दुःख प्राप्त हुआ है, अज्ञान से जैसे बालक ने विष खालिया हो ॥५॥

मूल—देव्यनूढा त्वमभवो युवराजो भवाम्यहम् । ततः प्रावृडनुप्राप्ता मदकामविवर्धिनी ॥६॥ उष्णमन्तर्दधे सद्यः स्निग्धा ददृशिरे घनाः । ततो जहृषिरे सर्वे भेकसारङ्गबर्हिणः ॥७॥ तस्मिन्नातिसुखे काले धनुष्मानिषुमान्रथी । व्यायामकृतसंकल्पः सरयूमन्वगान्नदीम् ॥८॥ निपाने महिषं रात्रौ गजं वाभ्यागतं मृगम् । अन्यद्वा श्वापदं किञ्चिज्जिघांसुरजितेन्द्रियः ॥९॥ अथान्धकारे त्वश्रौषं जले कुम्भस्य पूर्यतः । अचक्षुर्विषये घोषं वारणस्येव नर्दतः १० ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् । शब्दं प्रति गजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ॥११॥ तत्र वागुषसि व्यक्ता प्रादुरासीद्वनौकसः । हा हेति पततस्तोये बाणाद्व्यथितमर्मणः ॥१२॥

टीका—हे देवि ! तू अभी व्याही न थी, मैं युवराज था, तब मद और काम को बढाने वाली बरसात आई ॥६॥ गर्मी एकदम छिप गई, स्निग्ध मेघ दीखने लगे, तब मेंडक, पिपहिा, मोर सब प्रसन्न भए ॥७॥ उस अति सुखदायी काल में धनुषबाण

ले रथ पर चढ़ शिकार खेलने का संकल्प कर रात के समय जलाशय पर आए भैंसे वा हाथी वा मृग वा किसी और श्वापद (दरिन्दे) को मारने की इच्छावाला अजितेन्द्रिय मैं सरयू नदी के साथ २ गया ॥८,९॥ तब अन्धेरे में नेत्रों की की पहुंच से परे जल में भरे जाते हुए घड़े का शब्द मैंने सुना जैसे कि हाथी गर्ज रहा हो ॥१०॥ तब मैंने हाथी को पाने की इच्छा से नाग के तुल्य दीप्त बाण निकाल कर शब्द को लक्ष्य में रख कर फेंका ॥११॥ (जहां बाण गिरा) वहां बाण से दुःखित मर्मोंवाले पानी में गिरते हुए, वनवासी मनुष्य की ऐसी व्यक्त वाणी प्रकट हुई " हा ! हा !! " ॥१२॥

मूल—प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः । इषुणाभिहतःकेन कस्य वाऽपकृतं मया॥१३॥जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः। को बधेन ममार्थी स्यात्किंवास्यापकृतं मया ॥१४॥ नेमं तथानुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः । मातरं पितरं चोभावनुशोचामि मद्वधे ॥१५॥ तदेतन्मिथुनं वृद्धं चिरकालभृतं मया । मयि पञ्चत्वमापन्नेकां वृत्तिं वर्तयिष्यति ॥१६॥ वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेषुणा हतः । केन स्मनिहताः सर्वे सुबालेनाकृतात्मना ॥१७॥ तां गिरं करुणां श्रुत्वा मम धर्मानुकांक्षिणः । कराभ्यां सशरं चापं व्यथितस्यापतद्भुवि ॥१८॥ तं देशमहमागम्य दीनसत्त्वः सुदुर्मनाः । अपश्यमिषुणा तीरे सरय्वास्तापसं हतम् ॥१९॥

टीका—रात्रि के समय एकान्त नदी पर जल लेजाने के लिये आए हुये मुझ को किसने तीर से मार डाला है, किसका मैंने अपराध किया था ॥१३॥ (सिर पर) जटा भार को धारण किये हुए, (शरीर पर) वृक्षों की छाल और मृगान पहने

हुए हूं, ऐसे के बध मे कौन अर्थी है वा इस का मैंने क्या अपराध किया होगा ॥१४॥ मैं इस अपने जीवन के क्षय को शोक नहीं करता हूं, किन्तु मेरे वध में अपने माता और पिता पर शोक करता हूं ॥१५॥ वह वृद्ध जोड़ा जिस की मैंने चिरकाल तक सेवा की है, मेरे मरने पर वह किस तरह जिएगा ॥१६॥ बूढे माता पिता को और मुझे एक ही वाण से मारडाला, किस अजितेन्द्रिय बाल ने हम सब को मार डाला है" ॥ १७ ॥ उस करुण वाणी को सुनकर दुःखित हुए मुझे धर्माभिलाषी के हाथों से तीर समेत बाण गिरपड़ा ॥ १८ ॥ मैं उस जगह आया, और अत्यन्त दुर्मन दीनहृदय हुए मैंने सरयू के तीर पर एक तपस्वी हत हुआ देखा ॥ १९ ॥

मूल—अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम् । पांसुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम् ॥२०॥ स मामुद्वीक्ष्य नेत्राभ्यां त्रस्तमस्वस्थचेतनम् । इत्युवाच वचः क्रूरं दिधक्षन्निव तेजसा ॥२१॥ किं तवापकृतं राजन्वने निवसता मया । जिहीर्षुरम्भो गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया ॥२२॥ इयमेकपदी राजन्यतो मे पितुराश्रमः । तं प्रसादय गत्वा त्वं न त्वा संकुपितः शपेत् ॥२३॥ विशल्यं कुरु मां राजन्मर्म मे निशितः शरः । रुणद्धि मृदु सोत्सेधं तीरमम्बुरयो यथा ॥२४॥ ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम् । न द्विजातिरहं राजन्मा भूत्ते मनसो व्यथा ॥२५॥ शूद्रायामास्मि वैश्येन जातो नरवराधिप । इतीव वदतः कृच्छ्राद्बाणाभिहतमर्मणः ॥२६॥ तस्य त्वाताम्यमानस्य तं बाणमहमुद्धरम् । स मामुद्वीक्ष्य संत्रस्तो जहौ प्राणांस्तपोधनः ॥२६॥

टीका—जिसका जटाभार बिखरा हुआ है, पानी का घड़ा डुला हुआ है। धूल और लहू से जिसके अङ्ग लिबडे हुए है, शल्य से बींधा हुआ लेटा हुआ है ॥ २० ॥ वह मुझे अपने नेत्रों से डरा हुआ और अस्वस्थ चित्त देख करके तेज से मानों दग्ध करता हुआ यह क्रूर वचन बोला ॥ २१ ॥ हे राजन् बन में बसते हुए मैंने तेरा क्या अपराध किया था, जो माता पिता के लिये जल लेने आए को तूने मार डाला है ॥ २२ ॥ अस्तु अब यह पगडण्डी है, हे राजन् जिधर मेरे पिता का आश्रम है, अब जाकर उसको प्रसन्न कर, ऐसा न हो, कि वह कुपित हुआ तुझे शाप दे ॥ २३ ॥ और हे राजन् मेरे शल्य को निकाल तीक्षण तीर मेरे मर्म को पीड़ित कर रहा है, जिस तरह नदी का वेग शिथिल ऊंचे किनारे को ॥ २४ ॥ ब्रह्महत्या का संताप हृदय से दूर करदे, हे राजन् मैं ब्राह्मण नहीं, तेरे मन को (ब्रह्महत्या की) व्यथा मत हो ॥ २५ ॥ हे नरवरों के स्वामी मैं शूद्रा में से वैश्य से उत्पन्न हुआ हूं। इस प्रकार बड़े क्लेश से बोलते हुए, बाण से पीड़ित मर्मों वाले ॥ २६ ॥ मुरझाए हुए उस मुनिपुत्र का खींचकर वह बाण मैंने निकाला, और मेरी ओर देखकर भीत उस तपस्वी कुमार ने प्राण त्याग दिये ॥ २७ ॥

सर्ग ५६ (व० ६४) श्रवण के माता पिता का वृत्तान्त कहना

मूल—ततस्तं घटमादाय पूर्णं परमवारिणा। आश्रमं तमहं प्राप्य यथाख्यातपथं गतः ॥ १ ॥ तत्राहं दुर्बलावन्धौ वृद्धावपरिणायकौ अपश्यं तस्य पितरौ लूनपक्षाविवद्विजौ ॥ २ ॥ शोकोपहतचित्तश्च भयसंत्रस्तचेतनः। तच्चाश्रमपदं गत्वा भूयः शोकमहं गतः ॥३॥ पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्वाक्यमभाषत। किं चिरायसि मे पुत्र

पानीयं क्षिप्रमानय ॥ ४ ॥ यन्निमित्तमिदं तात सलिले क्रीडितं त्वया । उत्कण्ठिता ते मातेयं प्रविश क्षिप्रमाश्रमम् ॥ ५ ॥

टीका—तब मैं उस घड़े को लेकर उत्तम जल से भर कर बतलाए मार्ग से आश्रम को गया ॥ १ ॥ वहां मैंने दुर्बल अन्धे बूढ़े कोई सहारा न रखने वाले उसके माता पिता को देखा, जैसे कटे हुए पंखों वाले दो पंछी हों ॥ २ ॥ मेरा चित्त पहले ही शोक से पीड़ित था, भय से चेतना उड़ी हुई थी, किन्तु उस आश्रम-पद में पहुंचकर मैं और अधिक शोक को प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ मेरे पाओं की आहट सुन कर मुनि यह वाक्य बोला, मेरे बेटा! क्यों विलम्ब किया है, पानी शीघ्र ला ॥४॥ मेरे प्यारे ! जिससे तू जल में इतना काल खेलता रहा, इससे यह तेरी माता बड़ी उत्कण्ठित हुई है, जल्दी आश्रम में प्रवेश कर ॥ ५ ॥

मूल—त्वं गतिस्त्वगतीनां च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम् । समासक्तास्त्वयि प्राणाः कथं त्वं नाभिभाषसे ॥ ६ ॥ मनसः कर्म चेष्टाभिरभिसंस्तभ्य वाग्बलम् । आचचक्षे त्वहं तस्मै पुत्रव्यसनजं भयम् ॥ ७ ॥ क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः । सज्जनावमतं दुःखमिदं प्राप्तं स्वकर्मजम् ॥ ८ ॥ भगवंश्चापहस्तोऽहं सरयूतीरमागतः । जिघांसुः श्वापदं किंचिन्निपाने वाऽऽगतं गजम् ॥९॥ ततः श्रुतो मया शब्दो जले कुम्भस्य पूर्यतः । द्विपोऽयमिति मत्वायं बाणेनाभिहतो मया ॥ १० ॥

टीका—तू ही हम बेसहारों का सहारा है, तू नेत्रहीनों का नेत्र है, हमारे प्राण तुझ में बन्धे हुए हैं, क्यों तू उत्तर नहीं देता है ॥ ६ ॥ तब मन के शोक को बाहर की चेष्टाओं से थाम कर बाणी के बल का आश्रय करके मैंने उस मुनि को उस के पुत्र की विपत्ति से

उत्पन्न हुआ भय बतलाया॥७॥(मैंने कहा) मैं क्षत्रिय हूं दशरथ, मैं महात्माजी का पुत्र नहीं हूं। आज मैंने सज्जनों से निन्दित यह पाप अपने कर्म से प्राप्त किया है ॥ ८ ॥ कि हे भगवन्! मैं धनुष हाथ में लेकर चश्मे पर आए किसी हिंस्र पशु वा हाथी को मारने की इच्छा से सरयू के किनारे पर आया ॥ ९ ॥ वहां मैंने जल से भरे जाते हुए घड़े का शब्द सुना और हाथी जानकर मैंने उसे बाण से मार डाला ॥ १० ॥

मूल-गत्वा तस्यास्ततस्तीरमपश्यमिषुणा हृदि। विनिर्भिन्नं गत-प्राणं शयानं भुवि तापसम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्यैव वचनादुपेत्य परितप्यतः। स मया सहसा बाण उद्धृतो मर्मतस्तदा ॥ १२ ॥ स चोद्धृतेन बाणेन सहसा स्वर्गमास्थितः। भगवन्तावुभौ शोच-न्नन्धाविति विलप्य च ॥ १३ ॥ आज्ञानाद्भवतः पुत्रः सहसाभि-हतो मया। शेषमेवं गते यत्स्यात्तत्प्रसीदतु मे मुनिः॥ १४ ॥ स बाष्पपूर्णवदनो निःश्वसञ्शोकमूर्छितः। मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलि मुपस्थितम् ॥ १५ ॥

टीका-तब उसके किनारे पर जाकर मैंने तीर से बींधे हुए भूमि पर लेटे हुए मरते हुए एक तपस्वी को देखा ॥ ११ ॥ तब उसी दुःखिया के कहने से उस के पास जाकर वह बाण मैंने जल्दी उसके मर्म से निकाला ॥ १२ ॥ हे भगवन्तो! वह बाण के निकालने से आप दोनों नेत्रहीनों का शोक करता हुआ विलाप करता हुआ स्वर्ग को चला गया ॥ १३ ॥ अज्ञान से मैंने सहसा आपके पुत्र को मार डाला है, ऐसी दशा में अब जो कुछ करना हो, उसके लिये मुनि मुझपर अनुग्रह करें ॥१४॥ सुनतेही उस के मुख पर आंसु बरसने लगे, उसने लम्बा सांस भरा और

शोक से मूर्छित होगया, फिर वह महातेजस्वी हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए मुझ से बोला ॥ १५ ॥

मूल—यद्येतदशुभं कर्म न स्म मे कथयेः स्वयम् । फलेन्मूर्धा स्म ते राजन्सद्यः शतसहस्रधा ॥ १६ ॥ सप्तधा तु भवेन्मूर्धा मुनौ तपसि तिष्ठति । ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रं तादृशे ब्रह्मवादिनि ॥ १७ ॥ अज्ञानाद्धि कृतं यस्मादिदं ते तेन जीवसे ॥ १८ ॥ नय नौ नृप तं देशमिति मां चाभ्यभाषत । अद्य तं द्रष्टुमिच्छावः पुत्रं पश्चिमदर्शनं ॥ १९ ॥

टीका—यदि यह अशुभ कर्म तू मुझे आप आकर न कह देता तो हे राजन् तेरा सिर सैकड़ों सहस्रों टुकड़े होकर गिर पड़ता ॥ १६ ॥ तप में स्थित ऐसे ब्रह्मवादी मुनिपर यदि तूने जानकर शस्त्र छोड़ा होता, तो तेरा सिर सात टुकड़े होकर गिर पड़ता ॥ १७ ॥ जिस लिये तूने यह अज्ञान से किया है, इसी लिये तू जीता है ॥ १८॥ और फिर उसने मुझे कहा, हे राजन् मुझे उस जगह लेचल, आज हम उस अन्तिम दर्शन वाले पुत्र को देखना चाहते हैं ॥ १९ ॥

सर्ग ५७ (व० ६१) राजा का मृत्यु

मूल—अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ अस्पर्शयमहं पुत्रं तं मुनिं सह भार्यया ॥ १ ॥ तौ पुत्रमात्मनः स्पृष्ट्वा तमासाद्य तपस्विनौ । निपेततुः शरीरेऽस्य पिता चैनमुवाच ह ॥ २ ॥ नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे । किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किंकुपितो ह्यसि ॥ ३ ॥ नन्वहं ते प्रियः पुत्र मातरं पश्य धार्मिक । किं च नालिङ्गसे पुत्र सुकुमारं वचो वद ॥४॥

टीका—तब मैंने उन दोनों अत्यन्त दुःखियों को वहां लेजाकर भार्या के साथ उस मुनि का स्पर्श करवाया ॥१॥ वह दोनों तपस्वी अपने पुत्र को स्पर्श करके उस को पाकर उस के शरीर पर गिर पड़े और पिता उस को बोला ॥२॥ हे वत्स मुझे तू आज अभिवादन नहीं करता है और न ही बात करता है, क्यों तू भूमि पर लेट रहा है, क्यों तू कुपित हुआ है ॥३॥ हे पुत्र मैं तेरा प्यारा हूं, हे धार्मिक अपनी माता को देख, हे पुत्र तू क्यों मुझे आलिंगन नहीं करता है, हे पुत्र सुकुमार वचन बोल ॥४॥

मूल—कस्य वाऽपररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।। अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥५॥+को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः । श्लाघयिष्यत्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ॥६॥ कन्दमूलफलं हृत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम् । भोजयिष्यत्यकर्मण्यमपरिग्रहमनायकम् ॥ ७ ॥ उभावपि च शोकार्तावनाथौ कृपणौ वने । क्षिप्रमेवं गमिष्यावस्त्वया हीनौ यमक्षयम् ॥८॥

टीका—अब पिछली रात को किस पढ़ते हुए का मधुर शास्त्र वा विशेष से और*(वेदादि) सुनूंगा कौन मुझे स्नान करके

* यहां "और" से वेद ही अभिप्रेत होसक्ता है, क्योंकि शास्त्र से बढ़ कर वेद का सुनना होसक्ता है, जैसाकि यहीं "विशेषतः" कहा है। यह बात कि "यह शूद्रा में से उत्पन्न हुआ था, इस लिए वेद पढना इस का बन नहीं सका" इस लिए ठीक नहीं कि यह पुराने उदार हृदय आर्यों का मन्तव्य नहीं था, जैसाकि यहां ही इस में अगले श्लोक में उस का सन्ध्योपासन और अग्निहोत्र करना भी लिखा है और इस में पूर्व सर्ग के श्लोक १७ में उस को स्पष्ट ब्रह्मवादी अर्थात् वेदवक्ता कहा है। यह स्पष्ट है। इस में कोई खींचतान नहीं। वस्तुतः वैदिक समय में वेद से सीधा शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार सब स्त्री पुरुष का था संकोच पीछे हुआ

सन्ध्या को उपास और अग्निहोत्र करके पास बैठकर, पुत्र के शोक और भय से पीड़ित मुझ को मलमल कर स्नान कराएगा ॥६॥ कोई काम न करने वाले कुछ पास न रखने वाले मुझ अनाथ को कौन अब कन्द मूल फल लाकर प्यारे अतिथि की तरह भोजन कराएगा ॥७॥ दोनों ही हम शोक से पीड़ित अनाथ दीन हुए जल्दी ही यम के घर को जाएंगे ॥८॥

मूल—यां हि शूरा गतिं यान्ति संग्रामेष्वनिवर्तिनः । हतास्त्वभिमुखाः पुत्र गतिं तां परमां व्रज ॥९॥ यां गतिं सगरः शैब्यो दिलीपो जनमेजयः । नहुषो धुन्धुमारश्च प्राप्तास्तां गच्छ पुत्रक ॥१०॥ या गतिः सर्वभूतानां स्वाध्यायात्तपसश्च या । भूमिदस्याहिताग्नेश्च एक पत्नीव्रतस्य च ॥११॥ गोसहस्रप्रदातॄणां गुरुसेवाभृतामपि । देहन्यासकृतां या च तां गतिं गच्छ पुत्रक ॥१२॥

टीका—संग्रामों में न लौटने वाले सामने लड़कर मरे हुए शूरवीर जिस गति को प्राप्त होते हैं, हे पुत्र उस उत्तम गति को प्राप्त हो ॥ ९ ॥ जिस गति को सगर शैब्य दिलीप जनमेजय

है। संकोच में भी पहले पहल शूद्र अधिकारी न था, पर शूद्रों में से उत्पन्न हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का पुत्र अधिकारी था, जैसा कि शूद्रा में से उत्पन्न हुआ इलूष ऋषि का पुत्र कवष वेद मंत्रों का द्रष्टा ऋषि होचुका है (देखो ऐतरेय ब्राह्मण २।३।१ में उस की कथा) ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन कर्ता महिदास एक शूद्रा भार्या के पेट से ब्राह्मण का पुत्र था, ऐसा ही यहां भी शूद्रा पुत्र का सन्ध्योपासनादि एक साधारण बात की तरह कह दिया है, कोई इस को आश्चर्य नहीं माना। अतएव तिलककारने जो ब्रह्मवादी से ब्रह्मवादी के सम, अन्यत्=और, से पुराण अभिप्राय लिया है और सन्ध्योपासन तंत्र मार्ग से और अग्निहोत्र खाली नमस्कार मंत्र से कहा है, यह उस की स्पष्ट खींच बालमीकिके से आशय स्पष्ट विरुद्ध है

नहुष और धुन्धुमार प्राप्त हुए हैं, उस गति को हे पुत्र प्राप्त हो ॥ १० ॥ जोगति सब भूतों की है, जो गति स्वाध्याय से मिलती है, जो भूमि दान करने वाले की, आहिताग्नि की और एक पत्नीव्रत वाले की ॥ ११ ॥ सहस्र गौ देने वालों की, और देहत्याग करने वालों की है, हे पुत्रक उस गति को प्राप्त हो

मूल-एवं स कृपणं तत्र पर्यदेवयतासकृत् । तथोक्त्वा कर्तुमुदकं प्रवृत्तः सह भार्यया ॥१३॥ स कृत्वाथोदकं तूर्णं तापसः सह भार्यया । मामुवाच महातेजाः कृताञ्जलि मुपस्थितम् ॥१४॥ अद्यैव जहि मां राजन्मरणे नास्ति मे व्यथा । यः शरेणैकपुत्रं मांत्वमकार्षीरपुत्रकम् ॥१५॥ पुत्रव्यसनजं दुःखं यदेतन्मम सांप्र-तम् । एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन्कालं करिष्यसि ॥१६॥

टीका-इस प्रकार वह वहां बार २ दीन रुदन करता भया, वैसा कह कर भार्या के साथ उदककर्म करने लगा ॥ १३ ॥ वह तपस्वी महातेजस्वी भार्या के साथ उदककर्म करके हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए मुझ से बोला ॥१४॥ इसी समय मुझे भी मार डाल। हे राजन् मरने में मुझे पीडा नहीं, जिसने तीर से मेरे एकले पुत्रसे मुझे पुत्रहीन बना दिया है ॥१५॥ जैसा अब यह मुझे पुत्र के व्यसन से दुःख हुआ है, इसी प्रकार तूभी हे राजन् पुत्र के शोक से काल करेगा ॥ १६ ॥

मूल-एवं शापं मयि न्यस्य विलप्य करुणं बहु । चितामारोप्य देहं तन्मिथुनं स्वर्गमभ्ययात् ॥१७॥ तदेतच्चिन्तयानेन स्मृतं पापं मया स्वयम् । तदा बाल्यात्कृतं देवि शब्दवेध्यनुकर्षिणा ॥१८॥ तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः । अपथ्यैः सह संभुक्ते व्याधिरन्नरसे यथा ॥१९॥ तस्मान्मामागतं भद्रे तस्योदारस्य तद्वचः । यदहं पुत्रशोकेन संत्यजिष्यामि जीवितम् ॥२०॥

टीका–इस प्रकार मेरे ऊपर शाप छोड़कर और बहुत करुण विलाप करके, वह जोड़ा अपने देह को चिता पर चढाकर स्वर्ग को चला गया ॥ १७ ॥ सो यह सोचते हुए मुझे अपना पाप याद आया है, जो उस समय हे देवि ! शब्दवेधी बाण को खींचने वाले मैंने बालकपन से किया था ॥ १८ ॥ उस कर्म का हे देवि ! यह फल उपस्थित हुआ है, जैसे अपथ्य वस्तुओं के साथ खाए अन्नरससे रोग उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥ इस लिये हे भद्रे अब उस उदार पुरुष का वह वचन मेरे पास आया है, जो मैं आज पुत्र के शोक से जीवन को त्यागूंगा ॥ २० ॥

मूल–+न तन्मे सदृशं देवि यन्मया राघवे कृतम् । सदृशं तत्तु तस्यैव यदनेन कृतं मयि ॥ २१ ॥ सुगन्धि मम रामस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति ये मुखम् । निवृत्तवनवासं तमयोध्यायां पुनरागतम् २२ वेदये नच संयुक्ताञ्शब्दस्पर्शरसानहम् । चित्तनाशाद्विपद्यन्ते-सर्वाण्येवेन्द्रियाणिमे ॥२३॥ अयमात्मभवःशोको मामनाथमचेतनम् । संमाधयति वेगेन यथा कूलं नदीरयः ॥२४॥

टीका–हे देवि ! यह मेरे सदृश नहीं था, जो मैंने राम से बर्ताव किया है, हां वह उसके ही सदृश है, जो उसने मेरे साथ बर्ताव किया है ॥ २१ ॥ वह लोग धन्य होंगे, जो मेरे राम के सुगन्धित मुख को देखेंगे, जब वह वनवास से निवृत्त होकर फिर अयोध्या में आएगा ॥ २२ ॥ अब मैं अपने इन्द्रियों से संयुक्त हुए शब्द स्पर्श और रसों को नहीं जानता हूं, चित्त के नाश से मेरे इन्द्रिय नष्ट हो रहे हैं ॥ २३ ॥ यह अपने अन्दर से उत्पन्न हुआ शोक मुझ अनाथ और अचेतन को वेग से नाश कर रहा है, जैसे नदी का वेग किनारे को ॥ २४ ॥

मूल–हा राघव महाबाहो हा ममायासनाशन । हा पितृप्रिय मे

नाथ हा ममासि गतः सुत ॥२५॥ हा कौसल्ये न पश्यामि हा सुमित्रे तपस्विनि । हा नृशंसे ममामित्रे कैकेयि कुलपांसिनि २६ इति मातुश्च रामस्य सुमित्रायाश्च संनिधौ । राजा दशरथः शोचञ्जीवितान्तमुपागमत् ॥२७॥ तथा तु दीनः कथयन्नराधिपः प्रियस्य पुत्रस्य विवासनातुरः । गतेऽर्धरात्रे भृशदुःखपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शनः ॥२८॥

टीका—हा राघव महाबाहो, हा मेरे क्लेशों के मिटाने वाले ! हा पिता के प्यारे मेरे नाथ हा मेरे पुत्र तू कहां चला गया है ॥२५ हा कौसल्ये ! मैं तुझे देखता नहीं हूं, हा सुमित्रे बेचारी, हा कैकेयि ! मेरी शत्रु कुलकलङ्किनि ॥ २६ ॥ इस प्रकार राम की माता के और सुमित्रा के पास राजा दशरथ शोक करता २ जीवित के अन्त को प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ प्यारे पुत्र के निकालने से आतुर हुआ वैसे दीन बातें कहता हुआ उदारदृष्टि राजा अत्यन्त दुःख से पीड़ित हुआ आधी रात के बीत जाने पर प्राणों को त्यागता भया ॥ २८ ॥

सर्ग ५८ (व० ६५, ६६) कौसल्या का विलाप

मूल—कौसल्या च सुमित्रा च दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च पार्थिवम् । हा भर्तेति परिक्रुश्य पेततुर्धरणीतले ॥ १ ॥ ततः सर्वा नरेन्द्रस्य कैकेयीप्रमुखाः स्त्रियः । रुदत्यः शोकसंतप्ता निपेतुर्गतचेतनाः ॥ २ ॥ ताभिः स बलवान्नादः क्रोशन्तीभिरनुद्रुतः । येन स्फीतीकृतो भूयस्तद्गृहं समनादयत् ॥ ३ ॥ सद्योनिपतितानन्दं दीनं विक्लवदर्शनम् । बभूव नरदेवस्य सद्म दिष्टान्तमीयुषः ॥ ४ ॥ तमग्निमिव संशान्तमम्बुहीनमिवार्णवम् । गतप्रभमिवादित्यं स्वर्गस्थं प्रेक्ष्य भूमिपम् ॥ ५ ॥

टीका—कौसल्या और सुमित्रा राजा को देखकर और स्पर्श कर

हा भर्तः ! पुकारती हुई पृथिवी तल पर गिर पड़ीं ॥१॥ उस से पीछे (आई) कैकयी आदि राजा की स्त्रियें (कैकेयी और उस की दासियें) रोती हुई शोक से संतप्त हुई बेहोश हो पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥ २ ॥ वह बलवान् (पहला) नाद उन (पीछे आई) पुकारती हुई स्त्रियों के नाद से मिलकर अधिक बढ़ा हुआ उस मन्दिर को भर देता भया ॥३॥ कालधर्म को प्राप्त हुए राजा का मन्दिर तत्क्षण आनन्द से शून्य दीन और विक्लव दर्शनवाला होगया ।४। बुझी हुई अग्नि की तरह, जलहीन हुए समुद्र की तरह, नष्ट हुई प्रभावाले सूर्य की तरह, स्वर्गवासी उस राजा को देखकर ॥५॥

मूल—कौसल्या बाष्पपूर्णाक्षी विविधंशोककर्शिता । उपगृह्य शिरो राज्ञः कैकेयीं प्रत्यभाषत ॥ ६ ॥ सकामा भव कैकेयि भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् । त्यक्त्वा राजानमेकाग्रा नृशंसे दुष्टचारिणि ॥७ विहाय मां गतो रामो भर्ता च स्वर्गतो मम । विजने सार्थहीनेव नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ८ ॥ भर्तारं तु परित्यज्य का स्त्री दैवतमात्मनः । इच्छेज्जीवितुमन्यत्र कैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः ॥ ९ ॥ न लुब्धो बुद्ध्यते दोषान्किंपाकमिव भक्षयन् । कुब्जानिमित्तं कैकेय्या राघवाणां कुलं हतम् ॥ १० ॥ स मामनाथां विधवां नाद्य जानाति धार्मिकः । रामः कमलपत्राक्षो जीवन्नाशमितो गतः ।११।

टीका—कौसल्या आंसुओं से पूर्ण मुखवाली अनेक प्रकार शोक से दुर्बल हुई राजा के सिर को पकड़कर कैकयी से बोली ॥६॥ तेरी कामना पूर्ण हो हे कैकयी ! हे दुर्जन दुष्टचारिणी राजा को त्यागकर अब एक चित्त हुई निष्कण्टक राज्य को भोग ॥७॥ मुझे छोड़कर राम चला गया है, और मेरा भर्ता स्वर्ग को चला गया है, बिखड़े मार्ग में साथ से बिछुड़ी हुई की तरह मैं अब जीना नहीं चाहती ॥८॥ धर्म को जिसने त्याग दिया है,

उस कैकेयी के सिवाय कौन स्त्री अपना भर्ता जो कि अपना देवता है, उसको त्यागकर जीना चाहेगी ॥ ९ ॥ लोभी किंपाक (विष भेद) को भक्षण करते हुए की तरह दोषों को नहीं देखता, कुब्जा के निमित्त कैकेयी ने राघवों का कुल नाश कर दिया ॥ १० ॥ वह कमलनेत्र धार्मिक राम आज मुझे अनाथा विधवा नहीं जानता है, वह यहां से जीता ही नाश हो गया ॥११॥

मूल—तां ततः संपरिष्वज्य विलपन्तीं तपस्विनीम् । व्यपनिन्युः सुदुःखार्तां कौसल्यां व्यावहारिकाः ॥ १२ ॥ तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम् । राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम् ॥ १३ ॥ न तु संकालनं राज्ञो विना पुत्रेण मन्त्रिणः । सर्वज्ञा कर्तुमीयुस्ते ततो रक्षन्ति भूमिपम् ॥ १४ ॥ निशा नक्षत्रहीनेव स्त्रीव भर्तृविवर्जिता । पुरी नाराजतायोध्या हीना राज्ञा महात्मना ॥ १५ ॥

टीका—(भर्त्ता को) आलिंगन करके इस प्रकार विलाप करती हुई, दुःख से अत्यन्त पीड़ित हुई उस तपस्विनी कौसल्या को घर में अधिकार रखनेवाले (उससे छुड़ाकर) अलग लेगये ॥१२॥ तब मन्त्री जन तेल के कड़ाहे में राजा को रखकर अनन्तर कर्तव्य (वसिष्ठादि की) आज्ञानुसार करते भए ॥ १३ ॥ सारे व्यवहार के जाननेवाले मन्त्रियों ने बिना पुत्र के राजा को निकालना नहीं चाहा, इस लिये राजा की रक्षा की ॥ १४ ॥ महात्मा राजा से हीन हुई वह अयोध्यापुरी नक्षत्र हीन रात की तरह भर्त्ताहीन नारी की तरह न सोहती भई ॥ १५ ॥

सर्ग ५९ (व० ६७) अराजकता के दोषवर्णन

मूल—व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः । समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः ॥१॥ मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च क-

श्यपः। कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः ॥ २ ॥ एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्। वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम् ॥३॥इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम्। अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात् ॥४॥ नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः । अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा ॥५॥ नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते। नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥६॥ अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके। इदमत्याहितं चान्यत्कुतः सत्यमराजके ॥ ७ ॥

टीका—रात बीतकर सूर्य के उदय होने पर राजदर्बारी सब ब्राह्मण इकट्ठे हुए ॥१॥ मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि ॥२॥ यह ब्राह्मण मन्त्रियों के सहित राजपुरोहित वसिष्ठ को अभिमुख करके बोले ॥३॥ इक्ष्वाकुओं में से बहुत जल्दी ही कोई राजा बनाना चाहिये, न हो कि बिना राजा के हमारा देश विनाश को प्राप्त हो ॥४॥ अराजक (बिना राजा के) देश में बिजली की माला वाला बड़ा गर्जता हुआ मेघ दिव्य जल से पृथिवी पर नहीं बरसता है ॥५॥ अराजक देश में बीज की मुट्ठी (खेती में) नहीं बिखेरी जाती है, न अराजक देश में पिता के पुत्र और पति के भार्या बस में रहती है ॥६॥ अराजक में धन नहीं, भार्या भी नहीं, यह और बड़ा उपद्रव है, कि अराजक में सचाई कहां ॥ ७ ॥

मूल—नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां नराः। उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाःपुण्यगृहाणि च ॥८॥ नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्वनः। ब्राह्मणा वसुसम्पूर्णा विसृजन्त्याप्तदक्षिणाः ॥९॥ नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः। उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः ॥१०॥ नाराजके जनपदे तूद्यानानि समागताः। सायाह्ने क्रीडितुं यान्ति

कुमार्यो हेमभूषिताः ॥११॥ नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः। शेरते विवृतद्वारा कृषिगोरक्षजीविनः ॥१२॥ नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः। गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः॥१३॥

टीका—अराजक देश में लोग सभाएं नहीं बनवाते हैं, न रमणीय गृह, न पुण्यगृह ॥ ८ ॥ अराजक देश में यज्वा ब्राह्मण महायज्ञों में धन से पूर्ण पूरी दक्षिणाएं नहीं देते हैं (ऐसे यज्ञ नहीं कर सकते हैं) ॥ ९॥ अराजक देश में प्रसन्न हुए नट नर्तकों वाले मेले और देश के बढ़ानेवाले समाज नहीं बढ़ते हैं ॥१०॥ अराजक देश में सुवर्ण से भूषित कुमारियें सायंकाल को मिलकर बगीचों में खेलने नहीं जाती हैं ॥ ११ ॥ अराजक देश में धनवान् सुरक्षित नहीं होते, और खेती और गोरक्षा से जीविका करने वाले द्वार खोलकर नहीं सोते हैं ॥१२॥ अराजक देश में सौदागर बहुत वस्तुओं को लेकर कुशल से मार्ग में नहीं जाते हैं ॥१३॥

मूल—नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी । भावयन्नात्मनात्मानं यत्रसायंगृहो मुनिः ॥१४॥ यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम्। अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥ १५ ॥

टीका—अराजक देश में अकेला विचरने वाला आत्मा से आत्मा का चिन्तन करता हुआ जहां रात हुई वहीं घर वाला मुनि नहीं विचरता है ॥ १४ ॥ जैसे नदियें बिना जल के हों, जैसे बन बिना घास के हों, वा जैसे गौएं बिना गोपाल के हों, वैसे देश बिना राजा के होता है ॥ १५ ॥

मूल—नाराजकेजनपदे स्वकं भवति कस्यचित् । मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्॥१६॥यथा दृष्टिःशरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते। तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः ॥१७॥ राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्। राजा माता पिता चैव राजा हितकरो

नृणाम् ॥१८॥ अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किञ्चन । राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाधुनी ॥ १९ ॥

टीका—अराजक देश में किसी की कोई मलकीयत नहीं होती, मछलियों की तरह लोग सदा एक दूसरे को खाजाते हैं ॥१६॥ जैसे दृष्टि शरीर के (हित साधन में और अहित के निवारण में) सदा प्रवृत्त होती है, वैसे राजा देश के सत्य और धर्म का प्रभव है ॥१७॥ राजा सचाई है और धर्म है, राजा कुलवानों का कुल है, राजा माता और पिता है, राजा मनुष्यों का हितकारी है, ॥१८॥ अहो यह सब अन्धकारमय होजाए, कुछ पता ही न लगे, यदि लोक में भले वा बुरे का विवेक करनेवाला राजा न हो ॥ १९ ॥

सर्ग ६० (व० ६८) भरत को लाने के लिये दूतों का भेजना

मूल—तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठः प्रत्युवाच ह । मित्रामात्यजनान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदं वचः ॥ १ ॥ यदसौ मातुलकुले दत्तराज्यः परं सुखी । भरतो वसति सह भ्रात्रा शत्रुघ्नेन मुदान्वितः ॥ २ ॥ तच्छीघ्रं जवना दूता गच्छन्तु त्वरितं हयैः । आनेतुं भ्रातरौ वीरौ किं समीक्षामहे वयम् ॥३॥ गच्छन्त्विति ततः सर्वे वसिष्ठं वाक्यमब्रुवन् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ एहि सिद्धार्थ विजय जयन्ताशोकनन्दन । श्रूयतामितिकर्त्तव्यं सर्वानेव ब्रवीमि वः ॥ ५ ॥

टीका—उनके इस वचन को सुन कर वसिष्ठ ने मित्रों मंत्रियों और उन ब्राह्मणों को यह बचन कहा ॥१॥ कि जिसको राज्य दिया गया है, वह भरत खुशी से भरा हुआ भाई शत्रुघ्न के साथ मामा के घर बसता है ॥२॥ अतएव तेज़ दूत घोड़ों से जल्दी वहां जाएं, उन दोनों वीर भाईयों को लाने के लिए, हम क्या विचारते हैं

(अर्थात् यह विचार तो निश्चित होचुका हुआ है ढील क्या है) ॥३॥ तब वह सभी यह वाक्य बोले, कि हां जाएं, उनके इस वचन को सुन कर वसिष्ठ बोला ॥ ४ ॥ हे सिद्धार्थ, विजय, जयन्त और अशोकनंदन तुम सब को कहता हूं, अपना इति कर्तव्य सुनो ॥५॥

मूल—पुरं राजगृहं गत्वा शीघ्रं शीघ्रजवैर्हयैः । त्यक्तशोकैरिदं वाच्यः शासनाद्भरतो मम ॥६॥ पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः । त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥ ७ ॥ मा चास्मै प्रोषितं रामं मा चास्मै पितरं मृतम् । भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामितः क्षयम् ॥८॥ कौशेयानि च वस्त्राणि भूषणानि वराणि च । क्षिप्रमादाय राज्ञश्च भरतस्य च गच्छत ॥ ९ ॥ ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनन्तरम् । वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूता संत्वरितं ययुः ॥ १० ॥

टीका—तेज चलने वाले घोड़ों पर जल्दी राजगृह पुर में जाकर शोक को त्यागकर मेरे वचन से भरत को यह कहना ॥ ६ ॥ पुरोहित और सारे मन्त्री तुझे कुशल कहते हैं, तेरे साथ जरूरी काम है, जल्दी चल ॥ ७ ॥ मत इसको आपने राम का निकाला जाना, मत पिता का मरना और मत इससे राघवों का नाश बतलाना ॥८॥ रेशमी वस्त्र और उत्तम भूषण केकयराज और भरत के लिये लेकर जल्दी जाओ ॥ ९ ॥ इसके पीछे प्रस्थान सम्बन्धी सारी तय्यारी करके वसिष्ठ से आज्ञा दिये हुए दूत जल्दी चले गए ॥ १० ॥

मूल—न्यन्तेनापरतालस्य प्रलम्बस्योत्तरं प्रति । निषेवमाणास्ते जग्मुर्नदीं मध्येन मालिनीम् ॥११॥ ते हास्तिनपुरे गङ्गां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखा ययुः । पञ्चालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम् ॥१२॥ सरांसि च सुफुल्लानि नदीश्च विमलोदकाः । निरीक्षमाणा जग्मु-

स्ते दूताः कार्यवशाद्द्रुतम् ॥१३॥ ते प्रसन्नोदकां दिव्यां नाना-
विहगसेविताम् । उपातिजग्मुर्वेगेन शरदण्डां जलाकुलाम् ॥१४॥
अभिकाले ततः प्राप्य तेजोभिभवनाच्च्युताः । पितृपैतामहीं पुण्यां
तेरुरिक्षुमतीं नदीम् ॥१५॥

टीका—अपरताल (पर्वत) के पश्चिम से प्रलम्ब (पर्वत) के उत्तर भाग में उनके मध्य में बहती हुई मालिनी नदी का सेवन करते हुए गए ॥ ११ ॥ वह हास्तिनपुर में गंगा से पार हो पश्चिममुख हुए पञ्चाल देश में पहुंचे, कुरुजंगल के मध्य से ॥ १२ ॥ फूले हुए सरोवरों और निर्मल जलवाली नदियों को देखते हुए वह दूत कार्यवश से जल्दी गये ॥ १३ ॥ वह निर्मल जलवाली अनेक पक्षियों से सेवित जल से भरी हुई दिव्य शरदण्डा नदी के पार जल्दी होगये ॥ १४ ॥ तब अभिकाल ग्राम में पहुंच, फिर तेजोऽभिभवन ग्राम से निकल कर (इक्ष्वाकुओं की) पिता पितामह सम्बन्धी पवित्र इक्षुमती नदी से पार हुए ॥ १५ ॥

मूल—अवेक्ष्याञ्जलिपानांश्च ब्राह्मणान्वेदपारगान् । ययुर्मध्येन
बाह्लीकान्सुदामानं च पर्वतम्॥१६॥विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां
चापि शाल्मलीम् । नदीर्वापीस्तटाकानि पल्वलानि सरांसि च
॥१७॥ पश्यन्तो विविधांश्चापि सिंहान्व्याघ्रान्मृगान्द्विपान् । ययुः
पथातिमहता शासनं भर्तुरीप्सवः ॥ १८ ॥ ते श्रान्तवाहना दूता
विकृष्टेन सता पथा । गिरिव्रजं पुरवरं शीघ्रमासेदुरञ्जसा ॥१९॥

टीका—बाह्लीक के मध्य से वेद के पारंगत अञ्जलिपान * ब्राह्मणों को देखकर सुदामा पर्वत पर गये १६ ॥ (सुदामा पर्वत पर) विष्णुपाद को देखते हुए, विपाशा और शाल्मली और

---

* अञ्जलिपान=अञ्जलि से पानी पीने वाले, अपने पास जलपात्र भी न रखने वाले । यह इस देश में प्रचारक ब्राह्मण थे ।

दूसरी नदियों, बावड़ी, तालाब, जौहड़ सरोवरों को ॥ १७ ॥ और अनेक शेर, बाघ, मृग और हाथियों को देखते हुए स्वामी (वसिष्ठ) की आज्ञा को पूरा करते हुए लम्बे मार्ग से गये ॥ १८ ॥ वह दूत थके हुए घोड़ों वाले दूर श्रेष्ठ मार्ग में से पुरवर गिरिव्रज † में शीघ्र पहुंचे ॥ १९ ॥

सर्ग ६१ (व० ७०) दूतों का पहुंचना और भरत का चलना

मूल–समागम्य च राज्ञा ते राजपुत्रेण चार्चिताः । राज्ञः पादौ गृहीत्वा च तमूचुर्भरतं वचः ॥ १ ॥ पुरोहितस्त्वां कुशलं प्राह सर्वे च मन्त्रिणः । त्वरमाणश्च निर्याहि कृत्यमात्ययिकं त्वया ॥ २ ॥ इमानि च महार्हाणि वस्त्राण्याभरणानि च । प्रतिगृह्य विशालाक्ष मातुलस्य च दापय ॥ ३ ॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं स्वनुरक्तः सुहृज्जने । दूतानुवाच भरतः कामैः संप्रतिपूज्य तान् ॥ ४ ॥ कच्चित्स कुशली राजा पिता दशरथो मम । कच्चिदारोग्यता रामे लक्ष्मणे च महात्मनि ॥ ५ ॥

टीका–राजा (केकय) से और राजपुत्र (युधाजित) से मिलकर उनसे आदर दिये हुए दूत राजा के पाओं पकड़कर भरत को यह वचन बोले ॥ १ ॥ पुरोहित और सारे मन्त्रियों ने आपको कुशल कहा है, आप से जरूरी काम है, जल्दी चलें ॥ २ ॥ और यह बहुमूल्य वस्त्र और भूषण लेकर हे विशालनेत्र ! मामा को दें ॥ ३ ॥ वह सारी वस्तु लेकर अपने सुहृदजनों में प्रेमवाला भरत अभिमत वस्तुओं से उनको पूजकर यह बोला ॥ ४ ॥ क्या मेरा पिता राजा दशरथ कुशल से है और राम और महात्मा लक्ष्मण अरोग हैं ॥ ५ ॥

मूल–आर्या च धर्मनिरता धर्मज्ञा धर्मवादिनी अरोगा चापि । कौ-

† गिरिव्रज राजगृह का दूसरा नाम है ।

शल्या माता रामस्य धीमतः ॥ ६ ॥ कच्चित्सुमित्रा धर्मज्ञा
जननी लक्ष्मणस्य या । शत्रुघ्नस्य च वीरस्य अरोगा चापि मध्य-
मा ॥ ७ ॥ अरोगा चापि मे माता कैकेयी किमुवाच ह ॥ ८ ॥
एवमुक्तास्तु ते दूता भरतेन महात्मना । ऊचः संप्रश्रितं वाक्य-
मिदं तं भरतं तदा ॥ ९ ॥ कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमि-
च्छसि । श्रीश्च त्वां वृणुते पद्मा युज्यतां चापि ते रथः ॥ १० ॥

टीका—धर्म में प्रेमवाली, धर्म के जानने वाली, धर्म ही कहने वाली बुद्धिमान् राम की माता आर्या कौसल्या अरोग है ॥६ ॥ धर्म के जाननेवाली सुमित्रा जो लक्ष्मण की और वीर शत्रुघ्न की माता है, वह अरोग है ॥ ७ ॥ और मेरी माता कैकेयी अरोग है और उसने क्या कहा है ॥ ८ ॥ महात्मा भरत से ऐसे कहे हुए वह दूत भरत से यह नम्र वाक्य बोले ॥ ९ ॥ हे नरव्याघ्र वह सब कुशल से हैं, जिनका आप कुशल चाहते हैं, पद्मों की शोभा आपके चेहरे पर है, अपना रथ जोड़िए (इसी उत्साह से अभी चलना चाहिये) ॥ १० ॥

मूल—भरतश्चापि तान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत । आपृच्छेऽहं महाराजं
दूताः संत्वरयन्ति माम् ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वा तु तान्दूतान्भरतः
पार्थिवात्मजः । दूतैः संचोदितो वाक्यं मातामहमुवाच ह ॥१२ ॥
राजन्पितुर्गमिष्यामि सकाशं दूतचोदितः । पुनरप्यहमेष्यामि यदा
मे त्वं स्मरिष्यसि ॥ १३ ॥ भरतेनैवमुक्तस्तु नृपो मातामहस्तदा ।
तमुवाच शुभं वाक्यं शिरस्याघ्राय राघवम्॥१४॥गच्छ तातानुजाने
त्वां कैकेयी सुप्रजास्त्वया । मातरं कुशलं ब्रूयाः पितरं च परंतप ॥

टीका—ऐसा कहने पर भरत ने उन दूतों को कहा "मैं महाराज से आज्ञा लेता हूं, कि दूत मुझे जल्दी चलने को कहते हैं" ॥ ११ ॥ उन दूतों को ऐसा कहकर राजपुत्र भरत दूतों से प्रेरा हुआ

मातामह से यह बोला ॥१२॥ हे राजन्! मैं पिता के पास जाऊंगा, दूत मुझे प्रेरणा करते हैं, फिर जब आप स्मरण करेंगे, फिर आऊंगा ॥१३॥ जब भरत ने ऐसा कहा, तब उसका नाना राजा उस राघव को सिर पर चूम कर यह शुभ वाक्य बोला ॥१४॥ जाओ तात ! तुम्हें अनुज्ञा है, केकयी तुझसे उत्तम सन्तान वाली है। हे परंतप ! माता को और पिता को कुशल कहना ॥१५॥

मूल--पुरोहितं च कुशलं ये चान्ये द्विजसत्तमाः। तौ च तात महेष्वासौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १६ ॥ तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान्कम्बलान्यजिनानि च । सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् ॥ १७ ॥ अन्तःपुरेऽतिसंवृद्धान्व्याघ्रवीर्यबलोपमान् । दंष्ट्रायुक्तान्महाकायाञ्शुनश्चोपायनं ददौ ॥ १८ ॥ रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च। सत्कृत्य केकयीपुत्रं केकयो धनमादिशत्॥१९ तदामात्यानभिप्रेतान् विश्वास्यांश्च गुणान्वितान् । ददावश्वपतिः शीघ्रं भरतायानुयायिनः ॥ २० ॥ ऐरावतानैन्द्रशिरान्नागान् वै प्रियदर्शनान् । खराञ्शीघ्रान्सुसंयुक्तान्मातुलोऽस्मै धनं ददौ॥२१॥ स मातामहमापृच्छ्य मातुलं च युधाजितम् । रथमारुह्य भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ॥ २२ ॥

टीका-पुरोहित और जो दूसरे उत्तमब्राह्मण हैं, उनको और महा धनुर्धारी राम लक्ष्मण को कुशल कहना ॥ १६ ॥ भरत को राजा केकय ने उत्तम हाथी, विचित्र कंबल और मृगान और धन सत्कारपूर्वक दिया ॥ १७ ॥ और अन्तःपुर में पले हुए, बाघ के बल के तुल्य बलवाले, बड़ी २ दाढ़ों वाले, बड़े शरीर वाले कुत्ते भेंट दिये ॥ १८ ॥ दो हजार मुहरें और सोलह सौ घोड़ा यह धन सत्कारपूर्वक केकयी पुत्र को दिया ॥ १९ ॥ तबअश्वपति ने भरत के साथ जाने के लिये अपने

अभिमत, विश्वास पात्र, गुणों वाले मन्त्री दिये ॥ २० ।, और मामा ने इनको इरावत और इन्द्रशिर पर्वतों के सुन्दर हाथी, और तेज चलने वाली खच्चरें दीं ॥ २१ ॥ नाना से और मामा युधाजित से आज्ञा लेकर भरत शत्रुघ्न सहित रथ पर चढ़कर चला गया ॥ २२ ॥

सर्ग ६२ (व० ७१) भरत की यात्रा

मूल—स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान् । ततः सुदामां द्युतिमान्संतीर्यावेक्ष्य तां नदीम् ॥१॥ ह्रादिनीं दूरपारां च प्रत्यक्स्रोतस्तरंगिणीम् । शतद्रुमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः ॥२॥ ऐलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान् । शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आग्नेयं शल्यकर्षणम् ॥ ३ ॥ सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम् । अभ्यगात्स महाशैलान्वनं चैत्ररथं प्रति ॥४॥

टीका—वह वीर्यवान् राजगृह से निकल कर सुदामा नदी को देखकर और उससे पार होकर ॥१॥ दूर किनारे वाली पश्चिम को बहती हुई ह्रादिनी नदी से पार होकर वह श्रीमान् इक्ष्वाकुनन्दन शतद्रु से पार हुआ ॥२॥ ऐलधान ग्राम में नदी से पार हो, अपर पर्वत (देश) में पहुंच कर शिला और आकुर्वती नदी से पार हो आग्नेय और शल्यकर्षण दो ग्रामों के मध्य में ॥३॥ बहती हुई शिलवहा नदी को देखता हुआ वह सच्ची प्रतिज्ञा वाला शुद्ध होकर ऊंचे पर्वतों को लांघकर चैत्र रथ बनको गया

मूल—सरस्वतीं च गङ्गां च युग्मेन प्रतिपद्य च । उत्तरान्वीरमत्स्यानां भारुण्डं प्राविशद्वनम्॥५॥ वेगिनीं च कुलिङ्गाख्यां ह्रादिनीं पर्वतावृताम् । यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा ॥ ६ ॥ राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम् । भद्रो भद्रेण यानेन मारुतो

खामिवात्यगात् ॥७॥ भागीरथीं दुष्प्रतरां सोऽशुधाने महानदीम्। उपायाद्राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे॥ ८ ॥

टीका—सरस्वती और गंगा (यह कोई और सरस्वती गंगा हैं) दोनों के संगम को पाकर वीरमत्स्यों के उत्तर में भारुण्ड वन में प्रविष्ट हुआ ॥५॥ वेगवाली, गर्जवाली, पर्वतों से घिरी हुई कुलिङ्गा नदी से पार हो, यमुना नदी पर पहुंचकर सेना को विश्राम देता भया ॥६॥ फिर वह नेक उस महावन से—जिस में कि मनुष्य कभी २ प्रवेश करते हैं, आकाश से वायु की तरह उत्तम रथ से पार हुआ ॥७॥ वह राघव अंशुधान ग्राममें महानदी गङ्गा से पार उतरना कठिन जान विख्यात पुर प्राग्वट में जल्दी चला गया ॥ ८ ॥

मूल—स गङ्गां प्राग्वटे तीर्त्वा समायात्कुटिकोष्ठिकाम् । सबलस्तां स तीर्त्वाथ समगाद्धर्मवर्धनम् ॥९॥ तोरणं दक्षिणार्धेन जम्बूप्रस्थं समागमत् । वरूथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः ॥१०॥ तत्र रम्ये वने वासं कृत्वासौ प्राङ्मुखो ययौ । उद्यानमुज्जिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः ॥११॥ स तांस्तु प्रियकान्प्राप्य शीघ्राना-स्थाय वाजिनः । अनुज्ञाप्याथ भरतो वाहिनीं त्वरितो ययौ ॥१२

टीका—वह प्राग्वटमें गङ्गा से पार होकर कुटिकोष्ठिका नदी पर पहुंचा और सेना समेत उस से पार होकर धर्मवर्धन ग्राम में आया ॥९॥फिर तोरणग्राम के दक्षिण की ओर से जम्बूप्रस्थ में आया, फिर सुहावने वरूथ ग्राम में गया॥१०॥ वहां रमणीय बन में वास करके पूर्वाभिमुख हुआ उज्जिहाना नगरी के बाग को गया, जिस में प्रियक नामी वृक्ष हैं ॥११॥ वह उन प्रियकों को प्राप्त होकर भरत तेज घोड़ों पर सवार हो सेना को पीछे धीरे २ आने की आज्ञा देकर आप जल्दी चला गया (उज्जिहाना से

आगे अपना देश आगया था, इसलिये कोई भय न था)।१२।

मूल–वासं कृत्वा सर्वतीर्थे तीर्त्वा चोत्तरगां नदीम्। अन्या नदीश्च विविधैः पार्वतीयैस्तुरंगमैः ॥१३॥ अयोध्यां मनुना राज्ञा निर्मितां स ददर्श ह। तां पुरीं पुरुषव्याघ्रः सप्तरात्रोषितः पथि ॥ १४ ॥ अयोध्यामग्रतो दृष्ट्वा सारथिं चेदमब्रवीत्। एषा नातिप्रतीता मे पुण्योद्याना यशस्विनी ॥ १५ ॥ अयोध्यायां पुरा शब्दः श्रूयते तुमुलो महान्। समन्तान्नरनारीणां तमद्य न शृणोम्यहम् ॥१६॥

टीका–सर्वतीर्थ ग्राम में वास करके उत्तरगा नदी तथा और भी बहुतसी नदियों और पर्वतों से घोड़ों द्वारा पार उतर कर॥१३॥ राजा मनु से निर्माण की अयोध्या नगरी को देखता भया, जो मार्ग में सात रात बिता चुका है ॥ १४ ॥ अयोध्या को सामने देख कर सारथि से यह बोला, यह पवित्र बगीचोंवाली यशवाली पुरी आज बहुत प्रसन्न नहीं है ॥ १५ ॥ अयोध्या में चारों ओर नर नारियों का जो तुमल शब्द सुनाई देता था, वह आज नहीं सुनता हूं ॥ १६ ॥

मूल–उद्यानानि हि सायाह्ने क्रीडित्वोपरतैर्नरैः। ... यानैर्दृश्यन्ते न गजैर्न च वाजिभिः। निर्यान्तो वाभियान्तो वा नरमुख्या यथा पुरा ॥ १७॥ सर्वथा कुशलं सूत दुर्लभं मम बन्धुषु। तथा ह्यमति संमोहे हृदयं सीदतीव मे ॥ १८ ॥ विषण्णः श्रान्तहृदयस्त्रस्तः संलुलितेन्द्रियः। भरतः प्रविवेशाशु पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥१९॥ द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तवाहनः। द्वाःस्थैरुत्थाय विजयं पृष्टस्तैः सहितो ययौ ॥२०॥ तां शून्यशृङ्गाटकवेश्मरथ्यां रजोरुणद्वारकवाटयन्त्राम्। दृष्ट्वा पुरीमिन्द्रपुरीप्रकाशां दुःखेन संपूर्णतरो बभूव ॥२१॥ बभूव पश्यन्मनसोऽप्रियाणि यान्यन्यदा नास्य पुरे बभूवुः। अवाक्शिरा दीनमना न हृष्टः पितुर्महात्मा प्रविवेश वेश्म ॥२२॥

टीका—न आज यानों हाथियों और घोड़ों से आते जाते हुए नरवर दीखते हैं, जैसे हुआ करते थे ॥ १७ ॥ सर्वथा हे सूत मेरे बन्धुओं में कुशल दुर्लभ है, जैसा कि बिना मूर्छा के मेरा हृदय मानों गिर रहा है ॥ १८ ॥ उदास खिन्नचित्त, भीत, मुरझाए इन्द्रियोंवाला भरत इक्ष्वाकुओं से पालित पुरी में प्रविष्ट हुआ ॥ १९ ॥ वह थके हुए घोड़ों वाला वैजयन्त द्वार से प्रविष्ट हुआ, द्वारपालों ने खड़े होकर विजय पूछा, और फिर उनके साथ आगे गया ॥ २० ॥ इन्द्रपुरी के सदृश उस पुरी के आज चौरस्ते मन्दिर और गलियें शून्य देख कर दरवाजों के किवाड़ और यन्त्र धूल से धूसर देखकर दुःख से और भी भर गया॥२१॥ मन की यह अप्रिय बातें, जो और समय इस के पुर में कभी नहीं हुई थीं, इन को देखता हुआ वह महात्मा सिर नीचे किये दीन अप्रसन्न हुआ पिता के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ ॥ २२ ॥

सर्ग ६३ (व० ७२) घर में माता के मुख से पिता की मृत्यु सुनना

मूल—अपश्यंस्तु ततस्तत्र पितरं पितुरालये। जगाम भरतो द्रष्टुं मातरं मातुरालये ॥१॥अनुप्राप्तं तु तं दृष्ट्वा कैकयी प्रोषितंसुतम् उत्पपात तदा हृष्टा त्यक्त्वा सौवर्णमासनम् ॥२॥ समाविश्यैव धर्मात्मा स्वगृहं श्रीविवर्जितम्। भरतः प्रेक्ष्य जग्राह जनन्याश्चरणौ शुभौ ॥३॥ तं मूर्ध्नि समुपाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनम्। अङ्के भरतमारोप्य प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥४॥ अद्य ते कतिचिद्रात्र्यश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः। अपि नाध्वश्रमः शीघ्रं रथेनापततस्तव ५

टीका—वहां पिता के घर में पिता को न देख कर माता के घर माता के दर्शन को गया ॥ १ ॥ उस अपने पुत्र को प्रवास से आया देख कर तब वह प्रसन्न हुई सोने के आसन से उठ खड़ी हुई ॥२॥ वह धर्मात्मा भरत श्रीविहीन अपने घर में प्रविष्ट होते

ही माता के शुभ चरणों को ग्रहण करता भया ॥३॥ उस यशस्वी को माथे पर चूम कर और आलिङ्गन करके गोद में बिठलाकर पूछने लगी ॥४॥ आज तुझे नाना के घर से निकले को कितनी रातें हुई हैं, रथ से जल्दी आते हुए तुझ को मार्ग में थकावट तो नहीं हुई

मूल-आर्यकस्ते सुकुशली युधाजिन्मातुलस्तव। प्रवासाच्च सुखं पुत्र सर्वं मे वक्तुमर्हसि ॥६॥ एवं पृष्टस्तु कैकेय्या प्रियं पार्थिवनन्दनः। आचष्ट भरतः सर्वं मात्रे राजीवलोचनः ॥७॥ अद्य मे सप्तमी रात्रिश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः। अम्बायाः कुशली तातो युधाजिन्मातुलश्च मे ॥८॥ यन्मे धनं च रत्नं च ददौ राजा परंतपः। परिश्रान्तं पथ्यभवत्ततोऽहं पूर्वमागतः ॥९॥ राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः। यदहं प्रष्टुमिच्छामि तदम्बावक्तुमर्हति १०

टीका-तेरा नाना और युधाजित मामा अच्छे कुशल वाले हैं, प्रवास से जो सुख हुआ हो, हे पुत्र वह सब मुझे कहने योग्य हो ॥६॥ इस प्रकार कैकयी से पूछा हुआ वह कमलनेत्र राजपुत्र भरत माता को सब कुछ कहता भया ॥७॥ आज मुझे नाना के घर से निकले सातवीं रात है, अम्बा का पिता और मेरा मामा युधाजित कुशली हैं ॥८॥ जो कुछ मुझे धन और रत्न उस परन्तप राजा ने दिया है, वह अभी थकावट के हेतु मार्ग में है, मैं उस से पहले आगया हूं ॥९॥ राज्य का संदेश लेजाने वाले दूतों से जल्दी कराया हुआ मैं आया हूं, जो कुछ मैं पूछना चाहता हूं, उस के बतलाने की अम्बा कृपा करें १०

मूल-राजा भवति भूयिष्ठमिहाम्बाया निवेशने। तमहं नाद्य पश्यामि द्रष्टुमिच्छन्निहागतः ॥११॥ पितुर्ग्रहीष्ये पादौ च तं ममाख्याहि पृच्छतः। आहोस्विदम्बाज्येष्ठायाः कौसल्याया निवेशने ॥१२॥ तं प्रत्युवाच कैकेयी प्रियवद्घोरमप्रियम्। अजा

नन्तं प्रजानन्ती राज्यलोभेन मोहिता ॥१३॥ या गतिः सर्व-
भूतानां तां गतिं ते पिता गतः । राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः
सतां गतिः ॥१४॥ तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं धर्माभिजनवाञ्छुचिः ।
पपात सहसा भूमौ पितृशोकबलार्दितः ॥१५॥ बाष्पमुत्सृज्य कण्ठेन
स्वात्मना परिपीड़ितः । जननीं प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृतः ॥१६॥

टीका—राजा बहुधा यहां अम्बा के घर में हुआ करते हैं, उन को मैंने अभी नहीं देखा है, देखने की इच्छा से यहां आया हूं ॥११॥ मैं पिता जी के चरण ग्रहण करूंगा, उन का मुझे पता दीजिए, क्या वह बड़ी माता कौसल्या के महल में हैं ॥१२॥ राज्य के लोभ से मोहित हुई कैकयी न जानते हुए उस के प्रति भयंकर अप्रिय वाक्य प्रिय की तरह जानती हुई बोली ॥१३॥ जो अन्तिमगति सब भूतों की है, उस गति को महा तेजस्वी यज्ञशील सत्पुरुषों का आश्रय तेरा पिता प्राप्त हुआ है ॥१४॥ धार्मिक वंश वाला पवित्र भरत यह सुन कर पितृशोक के वेग से पीड़ित हुआ सहसा भूमि पर गिर पड़ा ।१५। कण्ठ स्वर के साथ आंसु छोड़ कर अपने मन से पीड़ित हुआ बहुत शोकों से युक्त हुआ माता से यह बोला ॥१६॥

सर्ग ६४ (व० ७२) माता से राम का वनगमन सुनना

मूल—अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते । इत्यहं कृत-
संकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम् ॥१॥ तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं
मनोमम । पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥२॥ अम्ब
केनात्यगाद्राजा व्याधिना मय्यनागते । धन्या रामादयः सर्वे यैः
पिता संस्कृतः स्वयम् ॥३॥ न नूनं मां महाराजः प्राप्तं जानाति
कीर्तिमान् । उपजिघ्रेत्तु मां मूर्ध्नि तातः संनाम्य सत्वरम् ॥४॥ क्व
स पाणिः सुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः । यो हि मां रजसा

ध्वस्तमभीक्ष्णं परिमार्जति ॥५॥+यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य-दासोऽस्मि संमतः। तस्य मा शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः६

टीका—राजाजी राम को तिलक देंगे और यज्ञ करेंगे, यह मन में धार प्रसन्न हुआ मैं इस यात्रा में चला था ॥ १ ॥ यह मेरा सोचा हुआ उलटा होगया है, मेरा मन टुकड़े २ होरहा है, जो मैं सदा प्रिय हित में रत हुए पिता को नहीं देखता हूं ॥ २ ॥ हे अम्ब! किस रोग से मेरे पहुंचने से पहिले ही राजा बीत गये, रामादि सब धन्य हैं, जिन्होंने अपने हाथों से पिता का संस्कार किया ॥ ३ ॥ निःसन्देह कीर्तिमान् महाराज मुझे आया हुआ नहीं जानते हैं, नहीं तो बड़ी जल्दी झुकाकर मुझे सिर पर चूमते ॥ ४ ॥ कहां वह शुभ कर्मोंवाले तात का सुख स्पर्श हाथ, जो मुझे धूल से लिबड़े हुए को बार २ पोंछे ॥ ५ ॥ जो मेरा पितृ-तुल्य बन्धु है, जिसका मैं माना हुआ दास हूं, उस शुभ कर्मों वाले राम का मुझे जल्दी पता दीजिये ॥ ६ ॥

मूल—+पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः। तस्य पादौ ग्रहीष्यामि सहीदानीं गतिर्मम ॥७॥ धर्मविद्धर्मशीलश्च महाभागो दृढव्रतः। आर्ये किमब्रवीद्राजा पिता मे सत्यविक्रमः ॥८॥ पश्चिमं साधुसंदेशमिच्छामि श्रोतुमात्मनः। इति पृष्टा यथातत्त्वं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥९॥ रामेति राजा विलपन्हा सीते लक्ष्मणेति च। स महात्मा परं लोकं गतो मतिमतां वरः ॥१०॥ इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिता तव। कालधर्मं परिक्षिप्तः पाशैरिव महागजः ॥११॥ सिद्धार्थास्तु नरा राममागतं सह सीतया। लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥१२॥

टीका—धर्म को पहचानते हुए आर्य का बड़ा भाई सचमुच पिता ही होता है, सो मैं उसके चरण पकड़ूंगा, वही अब मेरा आश्रय

है ॥ ७ ॥ और धर्मज्ञ, धर्मशील, सच्चे पराक्रम वाले दृढ़व्रत मेरे पिता राजा ने हे आर्ये ! क्या कहा ॥ ८ ॥ अपने लिये उस अन्तिम पवित्र सन्देश को सुनना चाहता हूं, ऐसा पूछने पर कैकेयी ठीक २ वाक्य बोली ॥ ९ ॥ "हा राम हा सीता हा लक्ष्मण इसप्रकार विलाप करता हुआ वह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ महात्मा (तेरा पिता) परलोक को गया (कोई सन्देश नहीं कहा) ॥ १० ॥ फांसों से बन्धे हुए महागज की तरह कालधर्म को प्राप्त हुआ तेरा पिता यह अन्तिम वचन बोला ॥ ११ ॥ कि कृतकृत्य होंगे वह लोक, जो सीता के सहित राम को और महाबाहु लक्ष्मण को फिर आया हुआ देखेंगे ॥ १२ ॥

मूल—तच्छ्रुत्वा विषसादैव द्वितीयाप्रियशंसनात् । विषण्णवदनोभूत्वा भूयः पप्रच्छ मातरम् ॥ १३ ॥ क चेदानीं स धर्मात्मा कौसल्यानन्दवर्धनः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च समं गतः ॥१४ ॥ तथा पृष्टा यथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे । मातास्य युगपद्वाक्यं विप्रियं प्रियशंकया ॥ १५ ॥ स हि राजसुतः पुत्र चीरवासा महावनम् । दण्डकान्सह वैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्रशङ्कया । स्वस्य वंशस्य महात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥१७॥+ कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित् । कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसतः ॥ १८ ॥

टीका—यह दूसरा अप्रिय सुन कर उसका मन अत्यन्त डिगगया, चेहरा मुरझा गया और फिर माता से बोला ॥ १३ ॥ कहां अब वह धर्मात्मा कौसल्या का आनन्दवर्धन भाई लक्ष्मण के और सीता के साथ गया है ॥ १४ ॥ ऐसा पूछने पर उसकी माता असली बात उस को प्रिय के भ्रम से विप्रिय कहने लगी ॥१५॥ हे पुत्र वह राजपुत्र चीर पहिन सीता और लक्ष्मण के साथ

दण्डक महावन को गया है ॥ १६ ॥ यह सुनकर भाई के चरित्र की शङ्का से भीत हुआ भरत अपने वंश के माहात्म्य (वंश में असदाचार के न आने के माहात्म्य) से पूछने लगा ॥१७॥ क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन तो नहीं छीना है, वा क्या उसने किसी निरपराध धनी वा दरिद्र को तो नहीं मारडाला ॥१८॥

मूल—+कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रोऽभिमन्यते। कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्रूणहेव विवासितः ॥ १९ ॥ एवमुक्ता तु कैकेयी भरतेन महात्मना। उवाच वचनं हृष्टा वृथापण्डितमानिनी ॥२० ॥+न ब्राह्मणधनं किंचिद्धृतं रामेण कस्यचित्। कश्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ॥ २१ ॥+ न रामः परदारान्स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति ॥ २२ ॥ मया तु पुत्र श्रुत्वैव रामस्येहाभिषेचनम्। याचितस्ते पिता राज्यं रामस्य च विवासनम्॥ २३॥ स स्ववृत्तिं समास्थाय पिता ते तत्तथाकरोत्। रामस्तु सहसौमित्रिः प्रेषितः सह सीतया ॥ २४ ॥ त्वया त्विदानीं धर्मज्ञ राजत्वमवलम्ब्यताम्। त्वत्कृते हि मया सर्वमिदमेवंविधं कृतम् ॥२५ ॥ मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक। त्वदधीना हि नगरी राज्यं चैतदनामयम् ॥ २६ ॥

टीका—अथवा क्या राम ने परनारी की धर्षणा तो नहीं की, क्यों वह दण्डक वन में गर्भहत्यारे की तरह निकाला गया है। १९। महात्मा भरत से ऐसे कही हुई अपने आपको पण्डिता मानने वाली मूढ़ कैकेयी प्रसन्न होकर यह वचन बोली ॥ २० ॥ राम ने किसी ब्राह्मण का कोई धन नहीं छीना है, न ही उसने कोई निरपराधी धनी वा निर्धन मारा है ॥ २१ ॥ और परनारी को तो राम नेत्रों से भी नहीं देखता है ॥ २२ ॥ किन्तु मैंने हे पुत्र राम का अभिषेक सुनकर तेरे पिता से (तेरे लिये) राजा होना और राम का निकालाजाना मांग लिया ॥ २३ ॥ सो तेरे

पिता ने अपने धर्म को आश्रय कर वह वैसा कर दिया, राम को सीता के साथ और लक्ष्मण के साथ भेज दिया ॥ २४ ॥ परन्तु अब तुझे हे धर्मज्ञ राज्य को सहारा देना चाहिए, तेरे अर्थ ही मैंने यह सब इस प्रकार का किया है ॥ २५ ॥ मत शोक और मत सन्ताप कर, हे पुत्रक ! धैर्य धर, तेरे अधीन ही यह नगरी है और तेरे अधीन ही यह निरुपद्रव राज्य है ॥२६॥

सर्ग ६५ (व० ७३) भरत का विलाप

मूल—श्रुत्वा तु पितरं वृत्तं भ्रातरौ च विवासितौ । भरतो दुःख संतप्त इदं वचनमब्रवीत् ॥१॥ किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः । विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ॥२॥ दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः । राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ॥३॥ त्वां प्राप्य हि पिता मेऽद्य सत्यसंधो महा-यशाः । तीव्रदुःखाभिसंतप्तो वृत्तो दशरथो नृपः ॥ ४ ॥

टीका—पिता का मरना और भाइयों का निकालजाना सुनकर भरत दुःख से संतप्त हुआ यह वचन बोला ॥ १ ॥ मुझ मन्दभाग्य को यहां राज्य से क्या कार्य है,जो शोक में पड़ा हूं, पिता से और पितृ-तुल्य भाई से विहीन हुआ हूं ॥ २ ॥ मेरे दुःख पर तूने दुःख उत्पन्न किया, व्रण पर मानों नमक छिड़का, राजा को मृत्युवश करके और राम को तपस्वी बनाकर ॥३॥ तुझे पाकर अब मेरा पिता महायशस्वी सच्ची प्रतिज्ञा वाला राजा दशरथ तीव्र दुःख से संतप्त होकर मरा है ॥ ४ ॥

मूल—कौसल्या च सुमित्रा च पुत्रशोकाभिपीड़िते । दुष्करं यदि जीवेतां प्राप्य त्वां जननीं मम ॥ ५ ॥ नन्वार्योऽपि च धर्मात्मा त्वयि वृत्तिमनुत्तमाम् । वर्तते गुरुवृत्तिज्ञो यथा मातरि वर्तते ॥६॥ तथा ज्येष्ठा हि मे माता कौसल्या दीर्घदर्शिनी । त्वयि धर्मं समा-

स्थाय भगिन्यामिव वर्तते ॥७॥ तस्याः पुत्रं महात्मानं चीरवल्कलवाससम् । प्रस्थाप्य वनवासाय कथं पापे न शोचसे ॥ ८ ॥

टीका—तुझ मेरी जननी को पाकर यदि कौसल्या और सुमित्रा पुत्रशोक से पीडित हुई जीती रहें, यह बड़ा दुष्कर है ॥५॥ तुझ से भी तो वह गुरुओं में बर्ताव के जानने वाला आर्य (राम) उत्तम वर्ताव करता था जैसा अपनी माता से ॥ ६ ॥ और वैसे ही मेरी जेठी माता दीर्घदर्शिनी कौसल्या धर्म का आश्रय कर तुझ से बहिन की तरह वर्तती थी ॥७॥ उसके पुत्र महात्मा को चीर और बकल के वस्त्र पहना कर वनवास के लिये भेजकर हे पापे तुझे किस तरह शोक नहीं होता है ॥ ८ ॥

मूल—अपापदर्शिनं शूरं कृतात्मानं यशस्विनम् । प्रव्राज्य चीरवसनं किं नु पश्यसि कारणम् ॥ ९ ॥ लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा । तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वया नीतो महानयम् ॥१०॥ अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन्रामलक्ष्मणौ । केन शक्तिप्रभावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे ॥११॥ अथवा मे भवेच्छक्तिर्योगैर्बुद्धिबलेन वा । सकामां न करिष्यामि त्वामहं पुत्रगर्धिनीम् ॥१२॥

टीका—जिसके सामने कभी बुराई नहीं आई, ऐसे यशस्वी जितेन्द्रिय शूरवीर को चीर वस्त्रों से निकाल कर तू क्या लाभ देखती है ॥९॥ मैं जानता हूं, तुझ लोभन ने, जैसा मैं राम के लिये हूं, नहीं समझा, जिससे कि तू ने राज्य के अर्थ यह बड़ा अनर्थ कर दिया है ॥१०॥ मैं पुरुष श्रेष्ठ राम और लक्ष्मण को न देखता हुआ किस शक्तिबल से राज्य की रक्षा कर सक्ता हूं ॥११॥ अथवा उपायों से और बुद्धिबल से मेरी शक्ति हो भी, तौ भी तुझ पुत्र की लालसा वाली (न कि धर्म के देखने वाली) को मैं पूर्ण कामना वाली नहीं करूंगा (अन्यथा मैं भी लोक में दूषित होजाउं) ॥

मूल—+न मे विकाङ्क्षा जायेत त्यक्तुं त्वां पापनिश्चयाम्। यदि रामस्य नावेक्षा त्वयि स्यान्मातृवत्सदा ॥ १३ ॥ उत्पन्ना तु कथं बुद्धिस्तवेयं पापदर्शिनी । साधुचारित्रविभ्रष्टे पूर्वेषां नो विगर्हिता ॥१४॥ अस्मिन्कुले हि सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते । अपरे भ्रातरस्तस्मिन्प्रवर्तन्ते समाहिताः ॥१५ ॥ सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राजाभिषिच्यते । राज्ञामेतत्समं तत्स्यादिक्ष्वाकूणां विशेषतः॥१६।

टीका—तुझ पाप निश्चय वाली को त्यागने की मेरी अनिच्छा न हो, यदि राम की मातृवत् दृष्टि तुझ में सदा न हो ॥ १३ ॥ हे साधु-चरित्र से गिरी हुई तुझ यह पापको देखने वाली बुद्धि कैसे उत्पन्न हुई, जो हमारे बड़ों से निन्दित है ॥१४॥ इस कुल में सब से बड़ा राज्य में अभिषिक्त किया जाता है,दूसरे भाई उसके साथ सावधान होकर रहते हैं॥१६॥सदा राजपुत्रों में बड़े को राज्याभिषेक होता है, यह बात सब राजाओं की बराबर है,इक्ष्वाकुओं की विशेष करके है॥

मूल—तेषां धर्मैकरक्षाणां कुलचारित्रशोभिनाम् । अद्य चारित्रशौटीर्यं त्वां प्राप्य विनिवर्तितम् ॥१७॥ तत्रापि सुमहाभागा जनेन्द्राः कुलपूर्वकाः । बुद्धिमोहः कथमयं संभूतस्त्वयि गर्हितः॥१८॥ न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये । यया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरंमम॥१९॥ एष त्विदानीमेवाहमप्रियार्थं तवानघे। निवर्तयिष्यामि वनाद्भ्रातरं स्वजनप्रियम् ॥ २० ॥+निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः । दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना

टीका—केवल धर्म की रक्षा करने वाले, कुल के चरित्र से शोभा वाले उन (इक्ष्वाकुओं) का अब चरित्र का अभिमान तुझे पाकर टूट गया है॥१७॥ तेरे भी कुल के बड़े २ भाग्यशाली राजे हुए हैं, फिर तुझे यह निन्दित बुद्धिमोह कैसे उत्पन्न हुआ १८॥ तेरी कामना को हे पापनिश्चयवाली मैं नहीं करूंगा,

जिसने मेरे जीवन का अन्त करने वाली विपत्ति आरम्भ की है ॥१९॥ अभी यह मैं, अपने जनों के प्यारे, अपने निरपराध भाई को बन से लौटा लाऊंगा ॥२०॥ राम को लौटाकर उस चमकते हुए तेज वाले का सुखी मन से दास होकर रहूंगा ।२१।

सर्ग ६६ (व० ७४) अधिक विलाप

मूल–तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा । रोषेण महताविष्टः पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥१॥ किं नु तेऽदूषयद्रामो राजा वा भृशधार्मिकः । ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ ॥२॥ त्वत्कृते मे पिता वृत्तो रामश्चारण्यमाश्रितः । अयशो जीवलोके च त्वयाऽहं प्रतिपादितः ॥३॥ कौसल्यां धर्मसंयुक्तां वियुक्तां पापनिश्चये । कृत्वा कं प्राप्स्यसे ह्यद्य लोकं निरयगामिनी ॥४॥ एकपुत्रा च साध्वी च विवत्सेयं त्वया कृता । तस्मात्त्वं सततं दुःखं प्रेत्य चेह च लप्स्यसे ॥५॥+ अहं त्वपचितिं भ्रातुः पितुश्च सकलामिमाम् । वर्धनं यशसश्चापि करिष्यामि न संशयः ॥६॥

टीका–भरत माता को इस तरह निंद कर बड़े रोष से भरा हुआ फिर भी यह वचन बोला ॥१॥ रामने और सदा धार्मिक राजा ने तेरा क्या बिगाडा था, जिन का मृत्यु और निकालना तेरे अर्थ एक साथ आए ॥२॥ तेरे अर्थ मेरा पिता मरा, राम बन में निकाला गया, तूने जीवलोक में मुझे बड़ा अपयश दिलाया है ।३। हे पापनिश्चय वाली! तू धर्म वाली कौसल्या को (पुत्र से) वियुक्त करके किस लोक को प्राप्त होगी, तू अब नरकगामिनी होगी ॥४॥ एक पुत्र वाली पतिव्रता को तूने बिना पुत्र के कर दिया है, इस लिये तू इस लोक में भी और मर कर भी निरन्तर दुःख को प्राप्त होगी ॥५॥ मैं तो भाई और पिता की पूरी पूजा करूंगा और उन के यश को बढाऊंगा, इस में संशय नहीं ॥६॥

मूल—आनाय्य च महाबाहुं कोशलेन्द्रं महाबलम्। स्वयमेव प्रवेक्ष्यामि वनं मुनिनिषेवितम्॥७॥नत्वहं पापसंकल्पे पापे पापं त्वया कृतम्। शक्तोधारयितुं पौरैरश्रुकण्ठैर्निरीक्षितः ॥ ८ ॥ इति नाग इवारण्ये तोमराङ्कुशतोदितः। पपात भुवि संक्रुद्धो निःश्वसन्निव पन्नगः ॥

टीका—कोशल के मालिक महाबाहु महाबली को यहां लाकर स्वयमेव मुनियों से सेवित बन में प्रवेश करूंगा ॥७॥ हे पापे पाप संकल्प वाली तुझ से किये पाप को मैं उठा नहीं सक्ता, जब कि पुर के लोग आंसुओं से भरे कण्ठों से मेरी ओर देखें ॥८॥ इस प्रकार जंगल में तोमर और अंकस से पीडित हाथी की तरह पीडित हुआ क्रुद्ध हुए नाग की तरह सांस लेता हुआ भरत पृथिवी पर गिर पड़ा ॥९॥

सर्ग ६७ (व० ७५) कौसल्या के सन्मुख भरत की शपथें

मूल—दीर्घकालात्समुत्थाय संज्ञां लब्ध्वा स वीर्यवान्। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां दीनामुद्वीक्ष्य मातरम् ॥ १ ॥ सोऽमात्यमध्ये भरतो जननीमभ्यकुत्सयत्। राज्यं न कामये जातु मन्त्रये नापि मातरम् ॥२॥ अभिषेकं न जानामि योऽभूद्राज्ञा समीक्षितः । विप्रकृष्टे ह्यहं देशे शत्रुघ्नसहितोऽभवम् ॥३॥वनवासं न जानामि रामस्याहं महात्मनः। विवासनं च सौमित्रेः सीतायाश्च यथाभवत् ॥ ४ ॥ तथैव क्रोशतस्तस्य भरतस्य महात्मनः। कौसल्या शब्दमाज्ञाय सुमित्रां चेदमब्रवीत् ॥५॥ आगतः क्रूरकार्यायाः कैकेय्या भरतः सुतः। तमहं द्रष्टुमिच्छामि भरतं दीर्घदर्शिनम् ॥ ६ ॥

टीका—दीर्घ काल के पीछे उठकर होश में आकर आंसु भरे नेत्रों से दीना माता की ओर देखकर, वह शक्तिमान् ॥ १ ॥ भरत मन्त्रियों के मध्य में माता की निन्दा करता भया, मैंने राज्य की कभी कामना नहीं की, इस में माता से मेरी सम्मति नहीं है ॥२॥

मैं उस अभिषेक को नहीं जानता हूं, जो राजा ने निश्चय किया था, मैं शत्रुघ्न समेत दूर देश में था ॥३॥ मैं महात्मा राम के, लक्ष्मण के और सीता के वनवास को नहीं जानता हूं, जैसे हुआ है ॥ ४ ॥ महात्मा भरत के इस प्रकार पुकारते हुए कौसल्या उसके शब्द को, सुनकर सुमित्रा से यह बोली ॥५॥ क्रूर कर्म वाली कैकेयी का पुत्र भरत आया है, मैं उस दीर्घदर्शी भरत को देखना चाहती हूं ॥६॥

मूल—एवमुक्त्वा सुमित्रां तां विवर्णवदना कृशा । प्रतस्थे भरतो यत्र वेपमाना विचेतना ॥७॥ स तु राजात्मजश्चापि शत्रुघ्नसहितस्तदा । प्रतस्थे भरतो येन कौसल्याया निवेशनम् ॥ ८ ॥ ततः शत्रुघ्नभरतौ कौसल्यां प्रेक्ष्य दुःखितौ । पर्यष्वजेतां दुःखार्तां पतितां नष्टचेतनाम् ॥ ९ ॥ रुदन्तौ रुदती दुःखात्समेत्यार्या मनस्विनी । भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ॥१०॥ + इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्। संप्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा ॥११॥+प्रस्थाप्य चीरवसनं पुत्रं मे वनवासिनम् । कैकेयी कं गुणं तत्र पश्यति क्रूरदर्शिनी ॥ १२ ॥

टीका—सुमित्रा को ऐसा कहकर मुरझाए मुख वाली दुर्बल कांपती हुई चेतना से शून्य हुई वह भरत की तर्फ रवाना हुई ॥ ७ ॥ उधर वह राजपुत्र भरत भी शत्रुघ्न के सहित कौसल्या के घर आया ॥८॥ तब भरत और शत्रुघ्न कौसल्या को देख कर दुःखित हुए दुःख से पीड़ित हो बेहोश गिरी माता के गले लगे ॥९॥ दुःख से रोती हुई वह मनस्विनी आर्या रोते हुओं को गले लगाकर अत्यन्त दुःखित हो भरत से यह बोली ॥१०॥ यह तुझ राज्य कामना वाले को अकण्टक राज्य प्राप्त हुआ है, शोक जो कैकेयी ने क्रूर कर्म से शीघ्र प्राप्त किया है ॥ ११ ॥ मेरे पुत्र को चीर पहना बन में बसने के लिये निकालकर क्रूर देखने वाली कैकेयी इस में क्या गुण देखती है ॥ १२ ॥

मूल—+क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमर्हति हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः ॥१३॥+अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम् । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये येन राघवः ॥१४॥ + कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुमर्हसि । यत्रासौ पुरुषव्याघ्रस्तप्यते मे सुतस्ततः ॥१५॥ इदं हि तव विस्तीर्णं धनधान्यसमाचितम् । हस्त्यश्वरथसंपूर्णं राज्यं निर्यातितं तया ॥१६॥ एवं विलपमानां तां प्राञ्जलिर्भरतस्तदा । कौसल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम् ॥ १७ ॥

टीका—जल्दी कैकयी मुझे भी वहां भेजने की कृपा करे, जहां सुनहरी नाभि वाला बड़े यश वाला मेरा पुत्र है ॥ १३ ॥ अथवा आपही सुमित्रा के साथ अग्निहोत्र को साथ लेकर सुख से वहां जाऊंगी, जहां राघव है ॥१४॥ भले ही तूही मुझे वहां लेचल जहां वह पुरुषश्रेष्ठ मेरा पुत्र तप तप रहा है ॥१५॥ धनधान्य से भरा हुआ, हाथी घोड़े रथों से पूर्ण, विस्तीर्ण राज्य उस (कैकेयी) ने तेरे लिए शोध दिया है ॥१६॥ इस प्रकार बहुत शोकों से घिरी हुई विलपती हुई उस कौसल्या को भरत हाथ जोड़कर यह उत्तर देता है

मूल—आर्ये कस्मादजानन्तं गर्हसे मामकल्मषम् । विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे ॥१८॥ कृतशास्त्रानुगा बुद्धिर्मा भूत्तस्य कदाचन । सत्यसन्धः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥१९॥ प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रतिमेहतु । हन्तु पादेन गां सुप्तां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२०॥ कारयित्वा महत्कर्म भर्त्ता भृत्यमनर्थकम् । अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः

टीका—हे आर्ये तू क्यों बेखबर मुझ निरपराध को निंदती है तू राम में स्थित मेरी विपुल प्रीति को जानती है ॥१८॥ सच्ची प्रतिज्ञावाले सत्पुरुषों में श्रेष्ठ आर्य(बड़ाभाई)जिसकी सम्मतिमें गया है उस की

बुद्धि कभी भी सीखे हुए शास्त्र के अनुसार न हो (इस से बढ़कर कोई अनर्थ है नहीं, इस लिए यह परम सौगन्द है, शेष इसी का विस्तार है)॥१९॥वह पापियों की नौकरी करे,सूर्य की ओर मुखकरके प्रस्राव करे, सोई हुई गौ को पाओं से हनन करे,जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥२०॥ जो स्वामी नौकर से बड़ा कर्म करवाकर उसको फल न देवे, जो पाप उसको होता है,वह उसको हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥२१॥

मूल—परिपालयमानस्य राज्ञो भूतानि पुत्रवत् । ततस्तु द्रुह्यतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२२॥ बलिषड्भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः । अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥२३॥ हस्त्यश्वरथसंबाधे युद्धे शस्त्रसमाकुले । मा स्म कार्षीत्सतां धर्मं यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२४॥ विश्वासात्कथितं किंचित्परिवादं मिथः क्वचित् । विवृणोतु स दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२५॥ अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तश्चनिरपत्रपः । लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥२६॥ पुत्रैर्दासैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः । स एको मृष्टमश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः

टीका—पुत्र की तरह लोगों का पालन करते हुए राजा से द्रोह करने वालों को जो पाप होता है, वह उस को हो, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥२२॥ छटा भाग कर (मुआमला) लेकर प्रजा की रक्षा न करते हुए राजा को जो पाप होता है वह उस को हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है॥२३॥ हाथी घोड़े रथों की भीड़ वाले शस्त्रों से व्याप्त युद्ध में वह पुरुष सत् पुरुषों का धर्म (सन्मुख लड़ना) न करे, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥२४॥ एकान्त कहीं विश्वास से कही बात को वह दुष्टात्मा प्रकट करे,जिस की आर्य अनुमति में गया है॥२५॥ स्वयं

किसी पर उपकार न करने वाला, दूसरे के किये को न जानेन वाला सज्जनों से त्यागा हुआ निर्लज्ज लोक में घृणा दृष्टि से देखा गया हो, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥२६॥ अपने घर में पुत्रों से दासों से और दूसरे पोष्यजनों से घिरा हुआ वह अकेला स्वादु अन्न को खाए, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥२७॥

मूल—अप्राप्य सदृशान्दारानन्नपत्यः प्रमीयताम् । अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ २८ ॥ राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते । भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥२९ संग्रामे समुपोढे च शत्रुपक्षभयङ्करे । पलायमानो बध्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ३० ॥ कपालपाणिः पृथिवीमटतां चीरसंवृतः । भिक्षमाणो यथोन्मत्तो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३१ ॥ मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः । कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३२॥ मास्य धर्मे मनो भूयादधर्मं स निषेवताम् । अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥ ३३ ॥ उभे संध्ये शयानस्य यत्पापं परिकल्प्यते । तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः॥

टीका—सदृश स्त्री को पाकर निःसन्तान मरे और विना धर्म कार्य (अग्निहोत्रादि) किये मरे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥२८॥ राजा स्त्री बालक वृद्ध के वध में जो पाप कहा जाता है और पोष्य वर्ग के त्याग में जो पाप है, उस पाप को वह प्राप्त हो॥२९॥शत्रुपक्ष से भयङ्कर संग्राम के प्राप्त होने पर भागता हुआ वह मरे जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३०॥ हाथ में खपर ले चीर पहन मांगता हुआ उन्मत्त की तरह पृथिवी पर घूमे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३१॥ मद्य में स्त्रियों में और जुए में सदा आसक्त हो, काम क्रोध के दबाव में रहे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३२॥ उस का मन धर्म में न हो, वह

अपात्र में दान देने वाला हो, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥३३॥ दोनों सन्ध्याओं में सोने वाले को जो पाप होता है वह उस को हो जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥३४॥

मूल—यदाग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे । मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम् ॥३५॥ देवतानां पितॄणां च मातापित्रोस्तथैव च । मा स्म कार्षीत्स शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३६॥ सतां लोकात्सतां कीर्त्याः सज्जुष्टात्कर्मणस्तथा । भ्रश्यतु क्षिप्रमद्यैव यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥३७॥ बहुभृत्यो दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः । समायात्सततं क्लेशं यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥३८॥ आशामाशंसमानानां दीनानामूर्ध्वचक्षुषाम् । अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥३९॥ मायया रमतां नित्यंपुरुषःपिशुनोऽशुचिः।राज्ञोभीतस्त्वधर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४०॥ विप्रलुप्तप्रजातस्यदुष्कृतं ब्राह्मणस्य यत् । तदेतत्प्रतिपद्येत यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४१॥ब्राह्मणायोद्यतां पूजां विहन्तु कलुषेन्द्रियः । बालवत्सां च गां दोग्धु यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥४२॥ धर्मदारान्परित्यज्य परदारान्निषेवताम् । त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४३॥ पानीयदूषके पापं तथैव विषदायके । यत्तदेकः स लभतां यस्यार्योऽनुमते गतः ४४

टीका—जो पाप आग लगाने वाले को, और जो गुरुस्त्रीगामी को होता है, और जो मित्रद्रोह में पाप है, उस पाप को वह प्राप्त हो ॥३५॥ देवताओं की पितरों की और माता पिता की वह मत सेवा करे, जिस की आर्य अनुमति में गया है ॥३६॥ सत्पुरुषों के लोक से, सत्पुरुषों की कीर्त्ति से, और सत्पुरुषों से सेवित कर्म से वह भ्रष्ट हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३७॥ बहुत भरणीय जनोंवाला होकर दरिद्र और ज्वर रोग से युक्त हुआ निरन्तर क्लेश को प्राप्त हो, जिसकी आर्य अनुमति में

गया है ॥ ३८ ॥ आशा रखते हुए दीन हो ऊपर नेत्र उठाए अर्थियों की आशा को वह व्यर्थ करे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥३९॥ दुर्जन अशुचि राजा से भीत हुआ वह अधर्मात्मा पुरुष सदा छल से विचरे, जिसकी आर्य अनुमति में गया है॥४०॥बिगड़ी हुई सन्तानवाले ब्राह्मण को जो पाप होता है, उसको वह प्राप्त हो,जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥४१॥ ब्राह्मण के लिए तय्यार की पूजा को वह मलीन इन्द्रियों वाला हनन करे, और जो पाप कि बाल बछड़े वाली गौ के (सारा दूध) दोहलेने वाले को होता है (वह उसको हो) जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥४२॥ धर्मपत्नी को त्यागकर परस्त्री का सेवन करे, और सदा धर्म से प्रेम छोड़े हुए हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥४३॥ पानी को बिगाड़ने वाले और विष देनेवाले को जो पाप होता है, उसको वह अकेला प्राप्त हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥ ४४ ॥

मूल—तृषार्तं सति पानीये विप्रलम्भेन योजयन्। यत्पापं लभते तत्स्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ॥४५॥ एवमाश्वासयन्नेव दुःखार्तोऽनुपपात ह। विहीनां पतिपुत्राभ्यां कौसल्यां पार्थिवात्मजः ॥४६॥ तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम्। भरतं शोकसंतप्तं कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥ मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते। शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणात्सि मे ॥४८॥ दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्षणः। वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि॥४९॥ इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम्। परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ॥५०॥ लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रनष्टबुद्धेः पतितस्य भूमौ। मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः ॥५१॥

टीका—पानी के होते हुए तृषा से आतुर को धोखा देनेवाले को जो पाप होता है वह उसको हो, जिसकी आर्य अनुमति में गया है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार तसल्ली देता हुआ वह राजपुत्र दुःख से पीड़ित हुआ पति पुत्रसे हीन कौसल्या के सामने गिर पड़ा॥४६ तब बड़ी कठिन सौगन्दों से शपथ करते हुए शोक से तपे हुए अचेतन हुए भरत को कौसल्या यह वाक्य बोली ॥४७॥ हे पुत्र मुझे और अधिक दुःख होता है, क्योंकि ऐसी सौगन्दें खाता हुआ तू मेरे प्राणों को पीडा देता है॥४८॥भाग्य से शुभ लक्षणों वाला तेरा अन्तःकरण धर्म से विचल नहीं हुआ, हे वत्स सच्ची प्रतिज्ञावाला तू सत्पुरुषों के लोकों को प्राप्त होगा ॥ ४९ ॥ यह कहकर भाई के प्यारे महाबाहु भरतको कण्ठ लगाकर अत्यन्त दुःखित हुई रोती भई ॥ ५० ॥ इसप्रकार अत्यन्त विलाप करते हुए नष्ट बुद्धि वाले विचेतन हो भूमि पर गिरे हुए, बार २ दीर्घ सांस लेते हुए भरत को वह रात शोक से बीती ॥५१॥

सर्ग ६८ (ब० ७६) दशरथ का दाह संस्कार

मूल—तमेवं शोक संतप्तं भरतं कैकयीसुतम् । उवाच वदतां श्रेष्ठो वसिष्ठःश्रेष्ठवागृषिः ॥१॥ अलं शोकेन भद्रं ते राजपुत्र महायशः । प्राप्तकालं नरपतेःकुरु संयानमुत्तमम् ॥२ ॥ वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा भरतो धरणीं गतः।प्रेतकृत्यानि सर्वाणि कारयामास धर्मवित्॥ ३॥ उद्धृत्य तैलसंसेकात्स तु भूमौ निवेशितम् । आपीतवर्णवदनं प्रसुप्तमिव भूमिपम् ॥४॥संवेश्य शयने चाग्र्ये नानारत्नपरिष्कृते। ततो दशरथं पुत्रो विललाप सुदुःखितः ॥५॥क्व यास्यसे महाराज हित्वेमं दुःखितं जनम् । हीनं पुरुषसिंहेन रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥६॥ योगक्षेमं तु तेऽव्यग्रं कोऽस्मिन्कल्पयिता पुरे। त्वयि प्रयाते स्वस्तात रामेच वनमाश्रिते॥७॥एवं विलपमानं तं भरतं दीनमानसम् । अब्रवीद्वचनं

भूयो वसिष्ठस्तु महामुनिः ॥८॥ प्रेतकार्याणि यान्यस्य कर्तव्यानि विशांपतेः । तान्यव्यग्रं महाबाहो क्रियतामविचारितम् ॥९॥

टीका—(प्रातःकाल) इस प्रकार शोक से तपे हुए कैकेयीसुत भरत को बोलनेवालों में श्रेष्ठ श्रेष्ठ वाणी वाला ऋषि वसिष्ठ बोला ॥१॥बस है शोक से, तेरा भला हो हे राजपुत्र महायशस्वी,अब इस समय राजा का उत्तम संयान (बाहर निकालना) कर ॥२॥ वसिष्ठ के वचन को सुनकर भरत पृथिवी पर गिरा,और वह धर्मवित् सारे प्रेत कर्मों को करवाता भया ॥३॥तैल के कड़ाहे से निकालकर भूमि पर रखे हुए कुछ२ पीले रङ्ग के मुखवाले, मानों गहरी नींद सोये हुए राजा॥४॥दशरथ को नाना रत्नों से सजी हुई उत्तम शय्या पर लिटाकर अत्यन्त दुःखित हुआ पुत्र विलाप करता भया॥५॥हे महाराज शुभ कर्मोंवाले पुरुषवर राम से हीन इस दुःखित जन को छोड़कर कहां जाएंगे॥६॥हे महाराज तेरे इस पुर में प्रजाओं का योगक्षेम कौन उठाएगा,आप स्वर्ग को चले गये हैं राम वन में हैं॥७॥इस प्रकार विलपते हुए दीन मन वाले भरत को महामुनि वसिष्ठ फिर यह वचन बोला॥८॥राजा के जो प्रेत कार्य करने योग्य हैं,इनको सावधान होकर हे महाबाहो बिन विचारे कर ॥९॥

मूल—तथेति भरतो वाक्यं वसिष्ठस्याभिपूज्य तत् । ऋत्विक्पुरोहिताचार्यांस्त्वरयामास सर्वशः ॥ १० ॥ शिबिकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम् । बाष्पकण्ठा विमनसस्तमूचुः परिचारकाः ॥११॥ हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च । प्रकिरन्तो जना मार्गे नृपतेरग्रतो ययुः ॥१२॥ चन्दनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा । देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयन्ति तथापरे ॥१३॥ गन्धानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम् । तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः

॥१४॥तदा हुताशनं दत्वा जेपुस्तस्य तमृत्विजः। जगुश्च ते यथा-
शास्त्रं तत्र सामानि सामगाः ॥१५॥शिविकाभिश्च यानैश्च यथार्हं
तस्य योषितः। नगरान्निर्ययुस्तत्र वृद्धैः परिवृतास्तथा ॥ १६ ॥
प्रसव्यं चापि तं चक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितं नृपम्। स्त्रियश्च शोकसं-
तप्ताः कौसल्याप्रमुखास्तदा॥१७॥ ततो रुदन्त्यो विवशा विलप्य
च पुनः पुनः। यानेभ्यः सरयूतीरमवतेरुर्नृपाङ्गनाः ॥१८॥कृत्वो
दकं ते भरतेन सार्धं नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च। पुरं प्रविश्या-
श्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयन्त दुःखम् ॥ १९ ॥

टीका—'तथास्तु' इसप्रकार भरत वसिष्ठ के वाक्य को पूजकर ऋत्विज् पुरोहित और आचार्य को जल्दी करवाता भया॥१०॥ तब गतचेतन राजा को पालकी में चढ़ाकर रुके कण्ठोंवाले परिचारक (सेवक) खिन्न मन हुए उसको उठाकर लेचले॥११॥सोना चांदी और अनेक प्रकार के वस्त्र मार्गमें राजा के आगे बिखेरते हुए उसे लेगए॥१२॥चन्दन, अगर, गुग्गल, पद्मक, और देवदार लाकर चितापर रखते भये॥१३॥और अनेक प्रकारके सुगन्धित पदार्थ रखते भये, वहां ऋत्विज जाकर राजा को चिता के मध्य में रखवाते भए॥१४॥वहां अग्नि को देकर उसके ऋत्विज् (पैतृमेधिक मन्त्रों का) जप करते भए, और सामगानेवाले शास्त्रानुसार साम गाते भए॥१५॥यथायोग्य पालकियों में और यानों में उसकी स्त्रियें वृद्धों से घिरी हुइ बाहर निकलीं॥१६॥जिसने अग्निचयन किया है, उस राजा के गिर्द ऋत्विज् अप्रदक्षिण घूमते भए, तथा शोक से संतप्त हुई कौसल्या आदि स्त्रियें घूमती भई॥१७॥ तब रोती हुई बेबस फिर २ विलाप करके राजस्त्रियें यानों से सरयू के तीर उतरीं ॥१८॥ राजस्त्रियें और मन्त्री पुरोहित भरत के साथ उदक कर्म करके आंसुओं से भरे नेत्रों वाले वह पुर में प्रवेश करके भूमि पर दश दिन शोक मिटाते भए

सर्ग ६९ (व० ७७) अस्थि और भस्म का उठाना

मूल–ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मजः। द्वादशेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥१॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम्। वास्तिकं बहु शुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा ॥२॥ ततः प्रभातसमये दिवसे च त्रयोदशे। विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्छितः ॥ ३ ॥ शब्दापिहितकण्ठश्च शोधनार्थमुपागतः। चितामूले पितुर्वाक्यमिदमाह सुदुःखितः ॥४॥ तात यस्मिन्निसृष्टोऽहं त्वया भ्रातरि राघवे। तस्मिन्वनं प्रव्रजिते शून्ये त्यक्तोऽस्म्यहं त्वया ॥५॥ यस्या गतिरनाथायाः पुत्रः प्रव्राजितो वनम्। तामम्बां तात कौशल्यां त्यक्त्वा त्वं क्व गतो नृप ॥६॥ शत्रुघ्नश्चापि भरतं दृष्ट्वा शोकपरिप्लुतम्। विसंज्ञो न्यपतद्भूमौ भूमिपालमनुस्मरन् ॥७॥ उन्मत्त इव निश्चित्तो विललाप सुदुःखितः। स्मृत्वा पितुर्गुणाङ्गानि तानि तानि तदा तदा ॥८॥ तयोर्विलपितं श्रुत्वा व्यसनं चाप्यवेक्ष्यतत्। भृशमार्ततरा भूयः सर्व एवा नुगामिनः

टीका–तब दस दिन बीत जाने पर (ग्यारहवें दिन) शौच करके वह राजपुत्र बारहवें दिन श्राद्ध कर्म कराता भया।१। ब्राह्मणों को धन रत्न पुष्कल अन्न बकरियों का समूह बहुत सी चांदी और बहुत सी गौएं देता भया।२। तब तेरहवें दिन प्रभात के समय (भूमि) संशोधन*के लिये आया, महाबाहु भरत शोक से मूर्छित हुआ शब्द से

---

* संशोधन से तात्पर्य्य भस्म उठाने का है, यह अस्थिसंचयन का ही अवशेष (बाकी बचा) कर्म है। यहां भूमि संशोधन अर्थात् भस्म उठाना दाह से तेरहवें दिन कहा है, आज कल अस्थि संचयन और भस्मोद्धार दोनों चौथे दिन होते हैं। रामायण के समय जो भस्मोद्धार का तेरहवें दिन प्रचार था, यह नहीं कहा जासक्ता, कि वह सब ब्राह्मण क्षत्रियों में था, वा निरा क्षत्रियों में वा केवल इक्ष्वाकुओं में ही था ॥

रुके हुए कण्ठवाला पिता की चिता के पास बैठ विलाप करता भया और अतीव दुःखित हुआ यह बोला । ३,४। हे तात ! मुझे जिस को सौंपा था, उस भाई राघव को वन भेजकर मुझे आपने शून्य में त्याग दिया है । ५ । हे तात ! जिस अनाथा का आश्रय पुत्र वन को आपने निकाला, उस माता कौसल्या को छोड़कर आप कहां चले गये हैं ।६। शत्रुघ्न भी भरत को शोक से घिरा हुआ देखकर राजा को स्मरण करता हुआ अचेतन हो भूमि पर गिर पड़ा ।७। उन्मत्त की तरह चित्त से शून्य हुआ, पिता के उन २ गुण समूहों को स्मरण करके अत्यन्त दुःखित हुआ विलाप करता भया । ८ ।

मूल—ततः प्रकृतिमान्वैद्यः पितुरेषां पुरोहितः । वसिष्ठो भरतंवाक्य-मुत्थाप्य तमुवाच ह ॥ १० ॥ त्रयोदशोऽयं दिवसः पितुर्वृत्तस्य ते विभो । सावशेषास्थिनिचये किमिह त्वं विलम्बसे ॥ ११ ॥ त्रीणि द्वन्द्वानि भूतेषु प्रवृत्तान्यविशेषतः । तेषु चापरिहार्येषु नैवं भवितुमर्हसि ॥१२॥सुमन्त्रश्चापि शत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्य च । श्रावयामास तत्त्वज्ञः सर्वभूतभवाभवौ ॥१३॥ उत्थितौ तौ नर-व्याघ्रौ प्रकाशेते यशस्विनौ । वर्षातपपरिग्लानौ पृथगिन्द्रध्वजा-विव ॥१४॥अश्रूणि परिमृद्नन्तौ रक्ताक्षौ दीनभाषिणौ । अमात्या-स्त्वरयन्ति स्म तनयौ चापराः क्रियाः ॥१५॥

टीका—इनके विलाप को सुनकर और इस व्यसन को देखकर सारे ही साथी फिर अतीव पीड़ित हुए ।९। तब प्रकृति में स्थित (जिस में शोक का कोई विकार नहीं हुआ), सर्वज्ञ, इनके पिता का पुरो-हित वसिष्ठ भरत को उठाकर यह वाक्य बोला ।१०। हे विभो ! तेरे पिता को दाह किये आज यह तेरहवां दिन है, अस्थिसञ्चयन का कर्म अभी सावशेष है, सो क्यों विलम्ब करते हो । ११ । तीन द्वन्द्व (सुख दुःख, हानि लाभ, जन्म मरण) सब जीवों में

एक जैसे प्रवृत्त होते हैं, यह अटल है, इनमें तुझे ऐसा (व्याकुल) नहीं होना चाहिये। १२। सुमन्त्र भी शत्रुघ्न को उठाकर और शोक दूर करके सब जीवों की उत्पत्ति विनाश सुनाता भया।१३। उठे हुए वह दोनों यशस्वी नरश्रेष्ठ वर्षा और धूप से मलिन हुई अलग २ दो इन्द्रध्वजों की तरह प्रतीत होते थे।१४। तब आंसु पोंछते हुए लाल नेत्रोंवाले दीन बोलने वाले उन दोनों पुत्रों से दूसरे मन्त्रीजन कर्म(भूमि शोधनादि) जल्दी करवाते भए।१५

सर्ग ७० (ब० ७९) भरत का राम को लौटाने का निश्चय

मूल—ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे। समेत्य राजकर्त्तारो भरतं वाक्यमब्रुवन् ॥१॥ गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः। रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥२॥ त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायशाः॥३॥ आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव। प्रतीक्षते त्वां स्वजनः श्रेणयश्च नृपात्मज ॥४॥ आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा सर्वं प्रदक्षिणम्। भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः ॥५॥ ज्येष्ठस्य राजता नित्यमुचिता हि कुलस्य नः। नैवं भवन्तो मां वक्तुमर्हन्ति कुशला जनाः ॥६॥ रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः। अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पञ्च च ॥७॥ युज्यतां महती सेना चतुरङ्गमहाबला। आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ॥८॥ आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम्। पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति ॥ ९ ॥

टीका—तब चौदहवें दिन प्रभात के समय सब राजदर्बारी मिलकर भरत से यह वाक्य बोले ॥१॥ दशरथ जो हमारा गुरुतर गुरु था, वह जेठे पुत्र राम को और महाबली लक्ष्मण को भेजकर स्वर्ग को चला गया॥२॥ अब तू हे महायशस्वी राजपुत्र हमारा राजा हो॥३॥ हे राजपुत्र राघव ! तेरे अपने जन (महामन्त्री आदि) और पुर के

लोग अभिषेक की सामग्री लेकर आपकी प्रतीक्षा में हैं ॥४॥ अभिषेक के बर्तनों को प्रदक्षिणा करके व्रतधारी भरत उन सब लोगों को यह उत्तर देता भया॥५॥हमारे कुल में सदा से बड़े भाई का राजा होना उचित रहा है, सो आप सब जानकार होकर मुझे ऐसा कहने योग्य नहीं है॥६॥हमारा बड़ा भाई राम ही पृथिवी का पति होगा,मैं (राम का प्रतिनिधि होकर) चौदह बरस वन में रहूंगा॥७॥चार अङ्गों (रथ, हाथी, घोड़े, पैदलों) वाली बड़ी सेना को तय्यार करो, मैं बड़े भाई राम को बन से लाऊंगा ॥८॥ यह जो अभिषेक के लिये सब कुछ सजा हुआ है, इसको आगे करके राम के हेतु बन को जाऊंगा॥९॥

मूल—तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषिच्य पुरस्कृतम्। आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात्॥१०॥ क्रियतां तु शिल्पिभिः पन्थाः समानि विषमाणि च। रक्षिणश्चानुसंयान्तु पथि दुर्गविचारकाः ॥ ११ ॥ एवं संभाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम्। प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् ॥१२॥ एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरुपतिष्ठताम्। यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि ॥१३॥ अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजाः प्रभाषितं संश्रवणं निशम्य च। प्रहर्षजास्तं प्रति बाष्पबिन्दवो निपेतुरार्याननेत्रसंभवाः ॥ १४ ॥

टीका—वहीं उस नरश्रेष्ठ का अभिषेक करके आदर पूर्वक उसे यहां लाऊंगा, जिसतरह यज्ञशाला से (पूज्य) अग्नि को लाया करते हैं१० शिल्पी रस्ते बनावें, ऊंचे नीचे स्थानों को सम करें, बिखड़े स्थानों के जानकार रक्षक बनकर साथ चलें॥११॥राम के हेतु इस प्रकार कहते हुए उस राजपुत्र को सब लोग शोभावाला उत्तम वाक्य बोले ।१२। इसप्रकार कहते हुए आपको पद्मा श्री प्राप्त हो, जो आप बड़े राजपुत्र को पृथिवी देना चाहते हैं॥१३॥रामके लाने की प्रतिज्ञा के विषय में राजपुत्र से कह उस वचन को सुनकर उसके लिये परम हर्ष से उत्पन्न हुई आंसुओं की बूंदें सब आर्यजनों के नेत्रों से मुखों पर गिरीं

सर्ग ७९ (व० ८०) मार्ग का बनाना

मूल—अथ भूमिप्रदेशज्ञाः सूत्रकर्मविशारदाः । स्वकर्माभिरताःशूराः खनका यन्त्रकास्तथा ॥१॥ कर्मान्तिकाः स्थपतयः पुरुषा यन्त्रकोविदाः । तथा वर्धकयश्चैव मार्गिणो वृक्षतक्षकाः॥२॥ सूपकारासुधाकारा वंशचर्मकृतस्तथा। समर्था ये च द्रष्टारः पुरतश्च प्रतस्थिरे॥३॥ ते स्वभारं समास्थाय वर्त्मकर्मणि कोविदाः ।करणैर्विविधोपेतैः पुरस्तात्संप्रतस्थिरे।४।लता वल्लीश्च गुल्मांश्च स्थाणूनश्मन एव चाजनास्तं चक्रिरे मार्गं छिन्दन्तो विविधान्द्रुमान् ।५। बबन्धुर्बन्धनीयांश्च क्षोद्यान्संचुक्षुदुस्तथा । बिभिदुर्भेदनीयांश्च तांस्तान्देशान्नरास्तदा ॥६॥

टीका—तब भूमि के प्रदेशों के जानने वाले सूत्र कर्म(मापने बनाने)में चतुर खोदने वाले शूरवीर,यन्त्र बनाने वाले॥१॥मजदूर इञ्जीनियर यन्त्रों में पण्डित,बढई, मार्ग बनाने वाले,वृक्षों के काटने वाले ॥२॥ रसोईका काम करने वाले,चूना बनाने वाले,बांस और चमडे का काम करनेवाले,और जो समर्थ देखनेवाले हैं वह सब आगे चले॥३॥मार्ग के काम में निपुण वह सारे अनेक प्रकार के साधन लेकर अपने २ समूह में मिलकर आगे रवानाहुए॥४॥लताओं बेलों स्थाणुओं पत्थरों और विविध वृक्षों को काट२कर मार्ग बनाते भए॥५॥बांधने योग्य देशों में पुल बांध दिये,पीसने योग्यों को पीस डाला,और (जल निकलने के लिए) फोड़ने योग्यों को फोड़ डाला ॥ ६ ॥

मूल—निर्जलेषु च देशेषु खानयामासुरुत्तमान् । उदपानान्बहुविधान् वेदिकापरिमण्डितान् । ७ । ससुधाकुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः । मत्तोद्घुष्टद्विजगणः पताकाभिरलंकृतः।८।चन्दनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः। बह्वशोभत सेनायाः पन्थाः सुरपथोपमः । ९ । आज्ञाप्याथ यथाज्ञप्ति युक्तास्तेऽधिकृता नराः । रमणीयेषु देशेषु बहुस्वादुफलेषु च ।१०। यो निवेशस्त्वभिप्रेतो भरतस्य महात्मनः ।

भूयस्तं शोभयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम् ।११।सचन्द्रतारागणमण्डितं यथा नभः क्षपायाममलं विराजते । नरेन्द्रमार्गः स तदा व्यराजत क्रमेण रम्यः शुभशिल्पिनिर्मितः ॥१२ ॥

टीका-निर्जल देशोंमें वेदियों से शोभायमान अनेकप्रकार के उत्तम जलाशय (कुआं बावड़ी आदि) खुदवा दिये ॥७॥ सेना का मार्ग, जिसमें ठहरने के स्थानों पर चूने गज फर्श बन्ध गए हैं,नाना पुष्पों से शोभित मत्त पक्षियों की गूञ्जवाला, झण्डियों से शोभायमान॥८ चन्दन के जल से छिडका हुआ नाना पुष्पों से सुशोभित सेनाका मार्ग देवपथ के तुल्य बहुत शोभावाला हुआ ॥९॥ (मार्ग बनाने के अनन्तर छावनियों के) अधिकारी आज्ञानुसार दूसरों को आज्ञा देकर बहुत स्वादु फलोंवाले रमणीय देशों में ॥१०॥ भरत को जैसे छावनियें अभिमत थीं, वैसे ही उनको शोभाओं से भूषण के तुल्य सजाते भए ॥११॥ जैसे रात्रि में चन्द्र और तारागण से भूषित निर्मल आकाश शोभा पाता है, वैसे वह शुभ शिल्पियों से बनाया हुआ सुहावना राजमार्ग शोभायमान हुआ ॥१२॥

सर्ग ७२ (व० ८३, ८४) भरत की यात्रा शृङ्गवेर तक

मूल-ततःसमुत्थितःकल्यमास्थाय स्यन्दनोत्तमम् । प्रययौभरतःशीघ्रं रामदर्शनकाम्यया॥१॥अग्रतःप्रययुस्तस्य सर्वे मन्त्रिपुरोहिताः॥२॥ कैकेयी च सुमित्रा च कौसल्या च यशस्विनी । रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ॥३॥ प्रयाताश्चार्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् । तस्यैव च कथाश्चित्राःकुर्वाणा हृष्टमानसाः ॥४॥ ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुञ्जरैः । समासेदुस्ततो गङ्गां शृङ्गवेरपुरं प्रति ॥ ५ ॥ यत्र रामसखा वीरो गुहो ज्ञातिगणैर्वृतः । निवसत्यप्रमादेन देशं तं परिपालयन् ॥६॥ उपेत्य तीरं गङ्गायाश्चक्रवाकैरलंकृतम् । व्यवतिष्ठत सा सेना भरतस्यानुयायिनी ॥७ ॥ ततोनिविष्टां ध्वजिनीं गङ्गा

मन्वाश्रितां नदीम् । निषादराजो दृष्ट्वैव ज्ञातीन्सपरितोऽब्रवीत्॥८॥
भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम । तस्यार्थकामाः संनद्धा
गङ्गानूपेऽत्र तिष्ठत ॥९॥ नावां शतानां पञ्चानां कैवर्तानां शतं शतम्
संनद्धानां तथा यूनां तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत् ॥ १० ॥

टीका—तब भरत प्रातःकाल उठकर उत्तम रथ पर सवारहो राम
के दर्शन की कामना से शीघ्र गया ॥१॥ उस के आगे सब मन्त्री
और पुरोहित गण् ॥२॥ कैकेयी सुमित्रा और यशस्विनी कौसल्या
राम को लाने के लिए प्रसन्न हुई चमकते हुए यान से गईं ॥३॥
लक्ष्मण सहित राम के दर्शन के लिए आर्यसमुदाय प्रसन्न मन
हुए उसी की विचित्र कथाएं कहते हुए गए ॥४॥वहरथ यान घोड़े
और हाथियों से दूर मार्ग जाकर श्रृङ्गवेरपुर में गंगा पर पहुंचे ५
जहां रामका सखा वीर गुह अपने भाइयों से युक्त हुआ सावधानता
से उस देशका पालन करता हुआ निवास करता है ॥६॥ चकवों
से शोभित गंगा के किनारे को पाकर भरत की अनुयायिनी वह
सेना मर्यादा से स्थिर होगई ॥७॥ तब गंगा नदी के साथ छावनी
डाल कर पड़ी सेना को देख कर भीलों का राजा (गुह) अपने
ज्ञातियों से बोला ॥८॥ (तुम जानते हो) दाशरथि राम मेरा स्वामी
है और सखा है, उसके हित के लिए तुम तय्यार होकर गंगा के
बेले में यहां छिपे रहो ॥९॥ पांचसौ नौकाओं में सौ सौ जवान
भील (शस्त्र अस्त्र से) तय्यार होकर ठहरें, यह उन को प्रेरा ॥१०॥

मूल—यदि तुष्टस्तु भरतो रामस्येह भविष्यति । इयं स्वस्तिमती सेना
गङ्गामद्य तरिष्यति ॥११॥ इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च
अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः ॥१२॥ तमायान्तं तु संप्रेक्ष्य
सूतपुत्रः प्रतापवान् । भरतायाचचक्षेऽथ समयज्ञो विनीतवत् ॥१३॥
एष ज्ञातिसहस्रेण स्थपतिः परिवारितः । कुशलो दण्डकारण्ये वृद्धो

भ्रातुश्च ते सखा ॥१४॥ तस्मात्पश्यतु काकुत्स्थ त्वां निषादाधिपो
गुहः । असंशयं विजानीते यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥१५॥ एतत्तु वचनं
श्रुत्वा सुमन्त्राद्भरतः शुभम्। उवाच वचनं शीघ्रं गुहःपश्यतु मामिति
॥१६॥ लब्ध्वानुज्ञां संप्रहृष्टो ज्ञातिभिः परिवारितः । आगम्य
भरतं प्रह्वो गुहो वचनमब्रवीत् ॥१७॥ निष्कुटश्चैव देशोऽयं वञ्चि-
ताश्चापि ते वयम् । निवेदयाम ते सर्वे स्वके दाशगृहे वस ॥१८॥
आशंसे स्वाशिता सेना वत्स्यत्येनां विभावरीम् । अर्चितो विविधैः
कामैः श्वः ससैन्यो गमिष्यसि ॥ १९ ॥

टीका—यदि भरत राम के विषय में शुद्ध हृदय होगा, तो यह सेना कल्याण से गङ्गाके पार उतर जाएगी (नहीं तो नौकाओंमें स्थितहो कर जलयुद्ध से इनको यहीं मारेंगे, यह आशय है)॥११॥ यह कह कर वह भीलों का अधिपति गुह मत्स्यमांस और शहद की भेंट लेकर भरत की ओर गया ॥१२॥ उसको आता देख कर अवसर के पहचानने वाले प्रतापी सूत ने विनय पूर्वक भरत से कहा ॥१३॥ यह बहुत से भाइयों से घिरा हुआ भीलों का पति, दण्डक वनकी खबर रखने वाला, वृद्ध तेरे भाई का सखा है ॥१४॥ इस लिए हे राघव यह भीलों का अधिपति गुह आपका दर्शन पाए,निसंदेह यह जानता है, जहां राम और लक्ष्मण हैं ॥१५॥ सुमन्त्र से इस वचन को सुनकर भरत शुभ वचन बोला, शीघ्र मुझे गुह देखे।१६। आज्ञा पाकर प्रसन्न हुआ ज्ञातियों से घिरा हुआ गुह आकर झुक करके भरत से वचन बोला ॥१७॥ यह देश घर के बगीचे की तरह है, (आपके चुपचाप आने से आप की सेवा से) हम वञ्चित हुए हैं, यह सब आपकी भेंट है, अपने दासगृह में निवास कीजिए ॥१८॥ यह प्रार्थना है कि भोजन करके आज रात आपकी सेना यहीं रहे अनेक कामनाओं से पूजे हुए आप कल सेना समेत जाएंगे

सर्ग ७३ (व० ८५) भरत और गुह की बात चीत

मूल-एवमुक्तस्तु भरतो निषादाधिपतिं गुहम् । प्रत्युवाच महाप्राज्ञो वाक्यं हेत्वर्थसंहितम् ॥१॥ ऊर्जितः खलु ते कामः कृतो मम गुरोः सखे । यो मे त्वमीदृशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि ।२। इत्युक्त्वा स महातेजा गुहं वचनमुत्तमम् । अब्रवीद्भरतः श्रीमान्पन्थानं दर्शयन्पुनः ॥३॥कतरेण गमिष्यामि भरद्वाजाश्रमं पथा । गहनोऽयं भृशं देशो गंगानूपो दुरत्ययः ॥४॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः । अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा गुहो गहनगोचरः ।५। दाशास्त्वानुगमिष्यन्ति देशज्ञाः सुसमाहिताः । अहं चानुगमिष्यामि राजपुत्र महाबल ।६।

टीका-ऐसे कहा हुआ महाप्राज्ञ भरत भीलों के अधिपति गुह को युक्तियुक्त वचन बोला ॥ १ ॥ हे मेरे गुरु (बड़े भाई) के मित्र तू जो इतनी बड़ी सेना को पूजना चाहता है, इसी से तूने अपनी उदार कामना को पूरा किया है (तेरे प्रेम से हम पूजित हुए हैं)।२। वह महातेजस्वी श्रीमान् भरत गुह को यह उत्तम वचन कह कर फिर आगे जाने वाले मार्ग की ओर अंगुलि करके यह बोला ।३। किस मार्ग से भरद्वाज के आश्रम को जाना होगा, गंगा का काछा यह देश अत्यन्त घना है पार होना कठिन है ।४। बुद्धिमान् राजपुत्र के इस वचन को सुन कर बन का जान्कार गुह हाथ जोड़ कर बोला ।५। देश के जानने वाले भील सावधान हो आप के साथ चलेंगे, और मैं हे महाबली राजपुत्र के साथ चलूंगा । ६ ।

मूल-कच्चिन्न दुष्टो व्रजासि रामस्याक्लिष्टकर्मणः । इयं ते महती सेना शङ्कां जनयतीव मे ७ तमेवमभिभाषन्तमाकाश इव निर्मलः । भरतः श्लक्ष्णया वाचा गुहं वचनमब्रवीत्॥८॥+मा भूत्स कालो यत्कष्टं न मां शङ्कितुमर्हसि । राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो मतः।९। तं निवर्तयितुं यामि काकुत्स्थं वनवासिनम् । बुद्धिरन्या न मे कार्या

गुह सत्यं ब्रवीमि ते ।१०। स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम्।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं भरतं प्रति हर्षितः ॥११॥ धन्यस्त्वं न त्वयातुल्यं
पश्यामि जगतीतले । अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वंत्यक्तुमिहेच्छसि १२
शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति । यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं
प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥१३॥ एवं संभाषमाणस्य गुहस्य भरतं
तदा । बभौ नष्टप्रभः सूर्यो रजनी चाभ्यवर्तत ॥१४॥

टीका—किन्तु आप शुभ कर्मों वाले रामकी ओर किसी दोष से तो नहीं जारहे, यह आपकी बड़ी सेना मुझे शंकासी उत्पन्न करती है । ७। ऐसा कहते हुए उस गुह को आकाश की तरह निर्मल भरत स्पष्ट वाणी से यह वचन बोला ।८। हा कष्ट वह समय मत हो, मुझे आप शंका की दृष्टि से देखनें योग्य नहीं है,वह राघव मेरा ज्येष्ठ भ्राता मेरे पितृतुल्य है।९। उस बनवासी राम को लौटाने के लिये जाता हूं, हे गुह तुझे मेरे विषय में और बुद्धि नहीं करनी चाहिये, तुझे सत्य कहता हूं ।१०। भरत के कथन को सुन कर प्रसन्नवदन हुआ वह हर्षित हो भरत से फिर वाक्य बोला ।११। आप धन्य हैं, आप के तुल्य मैं पृथिवी पर नहीं देखता हूं, जो बिना प्रयत्न से मिले राज्यको त्यागना चाहते हैं ।१२। लोक में आपकी कीर्ति सदा घूमती रहेगी, जो आप क्लेश में पड़े राम को फिर लाना चाहते हैं ।१३। भरत को गुह के ऐसा कहते हुए सूर्य अस्त हुआ और रात्रि प्रवृत्त हुई।१४

सर्ग ७४ (व० ८६) भरत के आगे लक्ष्मण के भ्रातृ प्रेम का वर्णन

मूल—आचचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः । भरतायाप्रमेयाय
गुहो गहनगोचरः ॥१॥ तं जाग्रतं गुणैर्युक्तं वरचापेषुधारिणम् ।
भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यन्तमहं लक्ष्मणमब्रुवम् ॥२॥इयं तात सुखा शय्या
त्वदर्थमुपकल्पिता । प्रत्याश्वसिहि शेष्वास्यां सुखं राघवनन्दन॥३॥
उचितोऽयं जनः सर्वो दुःखानां त्वं सुखोचितः। धर्मात्मंस्तस्य गुप्त्यर्थं

जागरिष्यामहे वयम्॥४॥नहि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन। अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः ॥५॥ सोऽहं प्रियसखं रामं शयानं सह सीतया। रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वैः स्वैर्ज्ञातिभिः सह ॥६॥ नहि मेऽविदितं किंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतः सदा। चतुरङ्गं ह्यपि बलं प्रसहेम वयं युधि ॥ ७ ॥ एवमस्माभिरुक्तेन लक्ष्मणेन महात्मना। अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥ ८ ॥

टीका—अब वन के जानेन वाले गुह ने उदार भरत को महात्मा लक्ष्मण का सद्भाव बतलाया ॥१॥ वह गुणवान् लक्ष्मण जब भाई की रक्षा के लिये उत्तम धनुषबाण धारण किये जाग रहा था, तो मैंने उसे कहा ॥ २ ॥ हे तात यह आराम की शय्या, आपके लिये तय्यार है, हे राघवनन्दन आप तसल्ली कीजिये और इस पर लेट जाइये ॥३॥ यह जन (मैं)दुःखों का अभ्यास किये हुए है,आप सुख के योग्य हैं, हे धर्मात्मन् इसकी (रामकी) रक्षा के लिए हम जागेंगे ॥४॥ राम से बढ़कर मुझे कोई पृथिवी में प्यारा नहीं है, इसी की कृपा से मैं इस लोक में बहुत बड़े यश की आशा रखता हूं ॥ ५ ॥ सोमैं सीतासमेत सोए हुए अपने प्यारे सखाराम की धनुष हाथ मेंले कर अपने सारे ज्ञातियों के साथ रक्षा करूंगा॥६॥इस वनमें विचरते हुए मुझे कुछ अविदित नहीं है,हम चतुरंग सेना को युद्ध में जीत लेंगे ॥७॥ इस प्रकार हमारे कहने पर लक्ष्मण महात्मा ने धर्म पर ही दृष्टि रखते हुए ने हम सब को तसल्ली दी ॥ ८ ॥

मूल—कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया। शक्या निद्रा मया लब्धुं जीविताने सुखानि वा ॥९॥ यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि। तं पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह सीतया॥१०॥ महता तपसा लब्धो विविधैश्च परिश्रमैः। एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः॥११॥ अस्मिन्प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति। विधवा

मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥१२॥ परिदेवयमानस्य तस्यैवं हि महात्मनः। तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी सात्यवर्तत॥१३॥प्रभाते विमले सूर्ये कारयित्वा जटा उभौ।अस्मिन्भागीरथीतीरे सुखंसंतारितौमया

टीका—कैसे दशरथ के पुत्र रामके सीता सहित भूमि पर लेटे हुए,मैं नींद वा जीना वा सुख ले सक्ता हूं ॥९॥ जिसको देवता दैत्य युद्ध में नहीं सहार सक्ते हैं, उसको देख हे गुह सीता समेत तृणों पर लेटा हुआ है ॥१०॥ बड़े तप से अनेक परिश्रमों से दशरथ को यह एक ही पुत्र अपने सदृश लक्षणों वाला मिला है ॥११॥ इसके निकालने पर राजा देर तक जीता नहीं रहेगा, निःसंदेह पृथिवी जल्दी ही विधवा होजाएगी ॥ १२ ॥ उस राजपुत्र को इत्यादिक शोक की बातें कहते हुए खड़े ही वह रात बीती ॥ १३ ॥ सवेरे निर्मल सूर्य में उन दोनों भाइयों ने जटा बनाई, और मैंने उनको आराम से पार उतार दिया ॥ १४ ॥

सर्ग ७१ (व० ८७) भरत का शोक और रामशय्या का दर्शन

मूल—गुहस्य वचनं श्रुत्वा भरतो भृशमप्रियम्। ध्यानं जगाम तत्रैव यत्र तच्छ्रुतमप्रियम् ॥१॥ प्रत्याश्वस्य मुहूर्तं तु कालं परमदुर्मनाः। ससाद सहसा तोत्रैर्हृदि विद्ध इव द्विपः ॥ २ ॥ भरतं मूर्छितं दृष्ट्वा विवर्णवदनो गुहः। बभूव व्यथितस्तत्र भूमिकम्पे यथा द्रुमः ॥३॥ तदवस्थं तु भरतं शत्रुघ्नोऽनन्तरास्थितः। परिष्वज्य रुरोदोच्चैर्विसंज्ञः शोककर्शितः ॥४ ॥ ततः सर्वाःसमापेतुर्मातरो भरतस्य ताः। उपवासकृशा दीना भर्तृव्यसनकर्शिताः ॥ ५॥ ताश्च तं पतितं भूमौ रुदत्यः पर्यवारयन्। कौसल्या त्वनुसृत्यैनं दुर्मनाः परिषस्वजे॥६ ॥ वत्सला स्वं यथा वत्समुपगुह्य तपस्विनी। परिपप्रच्छ भरतं रुदती शोकलालसा ॥ ७ ॥ त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते। वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः ॥८॥ कच्चिन्न लक्ष्मणे पुत्र

श्रुतं ते किंचिदप्रियम्। पुत्रे वा ह्येकपुत्रायाः सहभार्ये वनं गते ॥९॥ स मुहूर्तं समाश्वस्य रुदन्नेव महायशाः। कौसल्यां परिसान्त्व्येदं गुहं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ भ्राता मे क्वावसद्रात्रिं क्व सीता क्व च लक्ष्मणः। अस्वपच्छयने कस्मिन्किं भुक्त्वा गुह शंस मे ॥११॥

टीका—गुह से अतीव अप्रिय वचन को सुनकर भरत वहीं गोता खागया जहां यह अप्रिय सुना था ॥१॥ अत्यन्त दुर्मन हुआ थोड़ी देर लम्बा सांस भर के अंकस से हृदय में बींधे हुए हाथी की तरह सहसा घबरा गया ॥२॥ भरत को मूर्छित देख गुह के चेहरे का रंग फीका होगया, और वह इस तरह कांपा, जैसे भूकम्प में वृक्ष कांपता है ॥३॥ भरत को इस अवस्था में देखकर पास स्थित शत्रुघ्न शोक से दुर्बल हुआ अचेतनसा हुआ गले लगाकर ऊंचे २ रोने लगा ॥४॥ तब वह सारी भरत की माताएं वहां आ इकट्ठी हुईं जो उपवास से दुर्बल हैं, दीन हैं, और पति की मृत्युसे दुर्बल हुई हैं ॥५॥ रोती हुई वह भूमि पर गिरे हुए के चारों ओर होगई, कौसल्या तो अतीव दुर्मन हुई इसको गले लगाती भई ॥६॥ प्यार से भरी हुई अपने जाए की तरह गले लगाकर वह बेचारी शोक से दुर्बल हुई रोती हुई भरत से पूछने लगी ॥७॥ हे पुत्र राम के भाई सहित वन को चले जाने पर तुझे देखकर जीती हूं, राजा दशरथ के मरने पर तू ही एक अब हमारा नाथ है ॥८॥ क्या हे पुत्र कुछ लक्ष्मण के विषय में तो अप्रिय नहीं सुना, वा मुझ इकलौते बेटे वाली के बेटे के विषय में जो भार्या सहित वन को गया है ॥ ९ ॥ थोड़ी देर लम्बे सांस भरकर रोता हुआ वह महायशस्वी कौशल्या को तसल्ली देकर गुह से यह वचन बोला ॥१०॥ मेरा भाई रात कहां रहा, कहां सीता और कहां लक्ष्मण, क्या खाकर किस शय्या पर सोया, हे गुह ! मुझे बतला ॥११॥

मूल—सोऽब्रवीद्भरतं हृष्टो निषादाधिपतिर्गुहः। यद्विधं प्रतिपेदे च रामे प्रियहितेऽतिथौ॥१२॥ अन्नमुच्चावचं भक्ष्याः फलानि विविधानिच। रामायाभ्यवहारार्थं बहुशोपहृतं मया॥१३॥ तत्सर्वं प्रत्यनुज्ञासीद्रामः सत्यपराक्रमः। न हि तत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥१४॥लक्ष्मणेन यदानीतं पीतं वारि महात्मना। औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया ॥१५॥ ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा। वाग्यतास्ते त्रयःसंध्यां समुपासन्त संहिताः ॥ १६ ॥ सौमित्रिस्तु ततः पश्चादकरोत्स्वास्तरं शुभम्। स्वयमानीय बर्हींषि क्षिप्रं राघवकारणात् ॥१७॥ तस्मिन्समाविशद्रामः स्वास्तरे सह सीतया। प्रक्षाल्य च तयोः पादौ व्यपाक्रामत्सलक्ष्मणः॥१८॥एतत्तदिंगुदीमूलमिदमेव च तत्तृणम्। अस्मिन्रामश्च सीता च रात्रिं तां शयितावुभौ ॥१९॥

टीका—(भरत के भी लक्ष्मण की तरह इस सच्चे प्रेम को देखकर) प्रसन्न हुआ वह भीलों का अधिपति गुह प्यारे अतिथि राम के विषय में जैसा व्यवहार किया था भरत को बतलाता भया ॥१२॥ कि अनेक प्रकार का अन्न भक्ष्य और विविध फल राम के भोजन के लिये मैं लाया ॥१३॥ सच्चे पराक्रम वाले राम ने वह सब अंगीकार करके वापिस दे दिया, क्षत्रधर्म (प्रतिज्ञा पालन) का स्मरण करते हुए उसने स्वीकार नहीं किया ॥१४॥ लक्ष्मण जब जल लाया तो वह उस महात्मा ने पीकर सीता समेत उपवास किया ॥१५॥ तब जलशेष से लक्ष्मण ने भी उपवास किया, फिर वह तीनों वाणी को रोककर मिलकर सन्ध्या उपासते भए ॥१६॥ तब पश्चात् लक्ष्मण ने राम के अर्थ स्वयं कुशा लाकर शुभ बिछाई बनाई ॥१७॥ उस सत्थर पर राम ने सीता के सहित आराम किया, और लक्ष्मण उनके पाओं पोंछकर दूर जा खड़ा हुआ ॥ १८ ॥ यह वह गोंदी का मूल है, और यह वह तृण है, इस पर राम और सीता दोनों उस रात को सोए थे ॥ १८ ॥

सर्ग ७६ (व० ८८) भरत का शोक

मूल—तच्छ्रुत्वा निपुणं सर्वं भरतः सह मन्त्रिभिः। इंगुदीमूलमागम्य रामशय्यामवेक्षत ॥ १ ॥ अब्रवीज्जननीः सर्वा इह तस्य महात्मनः। शर्वरी शयिता भूमाविदमस्य विमर्दितम् ॥२॥ अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरणसंचये। शायित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ॥ ३ ॥ न नूनं दैवतं किंचित्कालेन बलवत्तरम्। यत्र दाशरथी रामो भूमावेवमशेत सः॥४॥ यस्मिन्विदेहराजस्य सुता च प्रियदर्शना। दयिता शयिता भूमौ स्नुषा दशरथस्य च ॥५॥ हा हतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्सभार्यः कृते मम। ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् ॥६॥

टीका--यह सब सावधानी से सुनकर भरत मन्त्रियों के साथ गोंदी के नीचे आकर राम की शय्या को देखता भया ॥१॥ और सारी माताओं से बोला, यहां वह महात्मा भूमि पर सोया है, यह उसके अंगों से मर्दन किया हुआ स्थान है ॥२॥ गलीचों के ऊपर बिछे हुए उत्तम बिछौनों के समूहों पर सोकर के वह पुरुषश्रेष्ठ कैसे भूमितल पर सोता है ॥ ३ ॥ मैं जानता हूं, काल से बढ़कर कोई देवता नहीं है, जब कि दाशरथि राम इस तरह भूमिपर सोया॥४॥ और जब कि विदेह राज की सुता राजा दशरथ की प्यारी स्नुषा प्रियदर्शना सीता भूमि पर लेटी॥५॥हा मैं मन्दभाग्य हूं, बड़ा निर्दय हूं, जो मेरे लिये राघव सहित भार्या के इस तरह अनाथवत् सोया॥

मूल—धन्यः खलु महाभागो लक्ष्मणः शुभलक्षणः। भ्रातरं विषमे काले यो राममनुवर्तते ॥७॥ सिद्धार्था खलु वैदेही पतिं यानुगता वनम्। वयं संशयिताः सर्वे हीनास्तेन महात्मना ॥८॥ अकर्णधारा पृथिवी शून्येव प्रतिभाति मे। गते दशरथे स्वर्गं रामे चारण्यमाश्रिते ॥९॥+अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा। फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ॥ १० ॥+तस्याहमुत्तरं कालं

निवत्स्यामि सुखं वने। तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति ॥११॥+अभिषेक्ष्यन्ति काकुत्स्थमयोध्यायां द्विजातयः। अपि मे देवताः कुर्युरिमं सत्यं मनोरथम् ॥ १२

टीका—शुभ लक्षणों वाला महाभाग लक्ष्मण धन्य है जो विषम काल में भाई का साथ दे रहा है ॥७॥ वैदेही कृतकृत्या है, जो पति के पीछे बन को गई है, हम सब उन महात्मा से हीन हुए संशय में (दशरथ के स्वर्ग को चले जाने पर और राम के वन का आश्रय लेने पर) पड़े हैं ॥८॥ दशरथ के स्वर्ग को चले जाने और राम के बन का आश्रय लेने पर सारी पृथिवी बिना मल्लाह के बेड़ी की तरह मुझे प्रतीत होती है ॥९॥ आज से लेकर मैं सदा भूमि पर वा तिनकों पर ही सोऊंगा, नित्यप्रति फल मूल खाऊंगा, और जटा चीर धारण करूंगा ॥ १० ॥ अब उसका (वनवास का) अगला समय मैं बन में आनन्द से रहूंगा, जिससे कि वह आर्य का प्रतिज्ञा किया हुआ (वनवास) मिथ्या नहीं होगा ॥ ११ ॥ राम को अयोध्या में द्विजाति अभिषेक देंगे, ऐसा हो कि देवता मेरे इस मनोरथ को सत्य करें ॥१२॥

सर्ग ७७ (व० ८९) गङ्गा से पार उतरना

मूल—व्युष्य रात्रिं तु तत्रैव गङ्गाकूले स राघवः । काल्यमुत्थाय शत्रुघ्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥ शत्रुघ्नोत्तिष्ठ किं शेषे निषादाधिपतिं गुहम् । शीघ्रमानय भद्रं ते तारयिष्यति वाहिनीम् ॥२॥ जागर्मि नाहं स्वपिमि तथैवार्यं विचिन्तयन् । इत्येवमब्रवीद्भ्राता शत्रुघ्नो विप्रचोदितः ॥ ३ ॥ इति संवदतोरेवमन्योन्यं नरसिंहयोः । आगम्य प्राञ्जलिः काले गुहो वचनमब्रवीत् ॥४॥ कच्चित्सुखं नदीतीरेऽवात्सीः काकुत्स्थ शर्वरीम् । कच्चिच्च सहसैन्यस्य तव नित्यमनामयम् ॥

टीका—रात वहीं गङ्गा के किनारे वास करके वह राघव प्रातःकाल

उठकर शत्रुघ्न से यह वचन बोला ॥१॥ हे शत्रुघ्न उठो क्यों सो रहे हो, जाकर भीलाधिपति गुह को शीघ्र बुला लाओ, तेरा भला हो, वह सेना को पार लंघाए ॥२॥ भाई से प्रेरा हुआ शत्रुघ्न बोला मैं जागता ही हूं, उसी तरह भाई को चिन्तन करता हुआ सोया नहीं हूं ॥३॥ इसप्रकार उन वीर पुरुषों के बात चीत करते हुए ही समय पर आकर गुह हाथ जोड़ कर बोला ॥४॥ हे राघव नदी के किनारे पर रात आराम से सोए, सहित सेना के आप सर्वथा अरोग है

मूल—गुहस्य तत्तु वचनं श्रुत्वा स्नेहादुदीरितम् । रामस्यानुवशो वाक्यं भरतोऽपीदमब्रवीत् ॥६॥ सुखा नः शर्वरी धीमन्पूजिताश्चापि ते वयम् । गङ्गां तु नौभिर्बह्वीभिर्दाशाः सन्तारयन्तु नः ॥७॥ ततः स्वस्तिकविज्ञेयां पाण्डुकम्बलसंवृताम् । सनन्दिघोषां कल्याणीं गुहो नावमुपाहरत् ॥८॥ तामारुरोह भरतःशत्रुघ्नश्च महाबलः । कौसल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः ॥९॥ पताकिन्यस्तु ता नावः स्वयं दाशैरधिष्ठिताः । वहन्त्यो जनमारूढं तदा संपेतुराशुगाः ॥ १०॥ नावश्चारुरुहुस्त्वन्ये प्लवैस्तेरुस्तथापरे । अन्ये कुम्भघटैस्तेरुरन्ये तेरुश्च बाहुभिः ॥११॥ सा पुण्या ध्वजिनी गङ्गां दाशैः सन्तारिता स्वयम् । मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवन मुत्तमम् ॥ १२ ॥

टीका—स्नेह से कहे गुह के इस वाक्य को सुन कर राम के आधीन भरत भी यह वाक्य बोला ॥६॥ हे बुद्धिमान् रात हमें आराम से बीती, आपने हमारा बड़ा आदर किया है, किन्तु अब बहुत सी नौकाओं से मलाह हमें गङ्गा से पार उतारें ७ तब स्वस्तिक नामवाली श्वेत गलीचों से ढकी हुई उत्सव के बाजों से युक्त कल्याणी नौका को गुह (भरत के लिए) लाया ॥८॥ उस पर भरत और महाबली शत्रुघ्न, कौसल्या और सुमित्रा और जो दूसरी राजस्त्रियें हैं, वह आरूढ़ हुई ॥९॥झंडियोंवाली वह सब नौकाएं जिन पर मलाह बैठे

हैं,सवार हुए लोगों को लेजाने वाली इकट्ठी मिलकर तेजी के साथ चल पड़ीं ॥१०॥ कई तो नौकाओं पर सवार हुए,कई तुलाओं से तरगये,कई सुराहियों से तरे और कई भुजाओं से ही तर कर पार उतर गए ॥११॥ उस पवित्र सेना को भीलों ने गङ्गा पार उतारा, और चार घड़ी दिन चढ़े पीछे वह उत्तम प्रयाग वन को गई ।१२।

सर्ग ७८ (व० ९०) भरत का भरद्वाज के आश्रम में रात्रिवास

मूल—भरद्वाजाश्रमं गत्वा क्रोशादेव नरर्षभः। जनं सर्वमवस्थाप्य जगाम सह मन्त्रिभिः ॥१॥ ततःसंदर्शने तस्य भरद्वाजस्य राघवः । मन्त्रिण स्तानवस्थाप्य जगामानुपुरोहितम् ॥ २ ॥ वसिष्ठमथ दृष्ट्वैव भरद्वाजो महातपाः । संचचालासनात्तूर्णं शिष्यानर्घ्यमिति ब्रुवन् ॥३॥ समागम्य वसिष्ठेन भरतेनाभिवादितः। अबुध्यत महातेजाः सुतं दशरथस्यतम्॥४॥ताभ्यामर्घ्यं च पाद्यं च दत्वा पश्चात्फलानि च । आनुपूर्व्याच्च धर्मज्ञःपप्रच्छ कुशलं कुले॥५॥ अयोध्यायां बले कोशे मित्रेष्वपि च मन्त्रिषु। जानन्दशरथं वृत्तं न राजानमुदाहरत्॥६॥वसिष्ठो भरतश्चैनं पप्रच्छतुरनामयम् । शरीरेऽग्निषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥ ७ ॥ तथेति तु प्रतिज्ञाय भरद्वाजो महायशाः । भरतं प्रत्युवाचेदं राघवस्नेहबन्धनात् ॥८॥ किमिहागमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः । एतदाचक्ष्व सर्वं मे न हि मे शुध्यते मनः ॥ ९ ॥ एवमुक्तो भरद्वाजं भरतःप्रत्युवाचह । पर्यश्रुनयनो दुःखाद्वाचा संसृज्यमानया ॥१०॥

टीका—भरद्वाज के आश्रम को जाकर कोस परे से ही वह नरश्रेष्ठ सब लोगों को ठहराकर आप मन्त्रियों के साथ गया॥१॥तब भरद्वाज के दर्शन के अवसर पर उन मन्त्रियों को भी ठहराकर पुरोहित के पीछे २ गया॥ २ ॥ वसिष्ठ को देखते ही महातपस्वी भरद्वाज शिष्यों को अर्घ्य (लाओ) कहता हुआ आसन से जल्दी उठा॥३ वसिष्ठ से मिलने के पीछे भरतसे अभिवादन किया हुआ वह महा

तेजस्वी उसे दशरथसुत जानता भया ॥ ४ ॥ उन दोनों के लिये अर्घ्यपात्र और पीछे फल देकर वह मर्यादाको जानने वाला क्रम से (पहले ब्राह्मण को, पीछे क्षत्रिय को) कुछ में कुशल पूछता भया ॥५॥ अयोध्या में, सेना में, कोश में, मित्रों में और मन्त्रियों में (सब में कुशल पूछा) दशरथ का मरना जानता था, इसलिये राजा का नाम नहीं लिया॥६॥वसिष्ठ और भरत ने उसको शरीर में, अग्नियों में, शिष्यों में, वृक्षोंमें, और मृगपक्षियों में, कुशल पूछा ॥ ७॥ सब कुशल है, यह कहकर महायशस्वी भरद्वाज रामके स्नेह के बन्धन से भरत को यह बोला ॥८॥ राज्य का शासन करते हुए आपका यहां आने में क्या काम है यह सब मुझे कहो, मेरा मन शुद्ध नहीं होता है ॥९॥ ऐसे कहा हुआ भरत दुःख से फिसलती हुई बाणी से आंसुओं से भरे नेत्रों से भरद्वाज से बोला ॥१०॥

मूल—हतोऽस्मि यदि मामेवं भगवानपि मन्यते । मत्तो न दोषमाशङ्केर्मैवं मामनुशाधि हि ॥११॥ न चैतदिष्टं माता मे यदवोचन्मदन्तरे । नाहमेतेन तुष्टश्च न तद्वचनमाददे॥१२॥अहं तु तं नरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः । प्रतिनेतुमयोध्यायां पादौ चास्याभिवन्दितुम् ॥ १३ ॥ वसिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितो भगवांस्ततः । उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद्भरतं वचः ॥१४॥ त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्र युक्तं राघववंशजे । गुरुवृत्तिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ॥१५॥ जाने चैतन्मनस्थं ते दृढीकरणमस्त्विति । अपृच्छं त्वां तवात्यर्थं कीर्ति समभिवर्धयन्॥१६ जाने च रामं धर्मज्ञं ससीतं सहलक्ष्मणम् । अयं वसति ते भ्राता चित्रकूटे महागिरौ ॥१७॥श्वस्तु गन्तासि तं देशं वसाद्य सह मन्त्रिभिः । एतं मे कुरु सुप्राज्ञ कामं कामार्थकोविद ॥ १८ ॥

टीका—मैं बड़ा मन्द भाग्य हूं, यदि भगवान् भी मुझे ऐसा ही समझते हैं, मुझसे दोष की शङ्का नहीं है मुझे आप ऐसा न कहें॥११॥मुझे यह

इष्ट नहीं है,जो माता ने मेरे विषयमें किया है, मैं इससे प्रसन्न नहीं हुआ हूं,न उसके वचन को स्वीकार करता हूं ॥ १२ ॥ मैं तो उस नरश्रेष्ठ को प्रसन्न करनेके लिये,अयोध्यामें लौटा ले जानेके लिये और उसकी पाद वन्दना करनेके लिये आया हूं॥१३॥वासिष्ठ आदि ऋत्विजों से याचना किया हुआ भगवान् भरद्वाज प्रसन्नता से भरत को यह वचन बोला ॥ १४ ॥ तुझ राघववंश में उत्पन्न हुए में हे पुरुषश्रेष्ठ गुरु सेवा,अपनें आपको वसमें रखना,और भलों का अनुयायी होना युक्त ही है ॥१५॥ तेरे मन की इस वात को जानता हूं,तथा दृढ करने के लिये तेरी कीर्ति को अत्यन्त बढाते हुए मैंने तुझे पूछा है ॥ १६ ॥ और जानता हूं सीता और लक्ष्मण समेत धर्मज्ञ राम को,यह तेरा भाई महापर्वत चित्रकूट पर बसता है॥१७ कल उस जगह जाना,आज मन्त्रियों सहित यहां ही रहो,हे काम अर्थ के जानने वाले सुप्राज्ञ मेरी इस कामना को पूरा कर ॥१८॥

सर्ग ७२ (व० ९२) भरत का भरद्वाज से विदा होना

मूल–ततस्तां रजनीं व्युष्य भरतः सपरिच्छदः। कृतातिथ्योभरद्वाजं
कामादभिजगाम ह ॥१॥ तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा भरतोऽभिप्रणम्य च।
आश्रमादुप निष्क्रान्तमृषिमुत्तमतेजसम् ॥२॥ सुखोषितोऽस्मि भग-
वन्समग्रबलवाहनः। तर्पितः सर्वकामैश्च सामात्यो बलवान् त्वया ३
आमन्त्रयेऽहं भगवन्कामं त्वामृषिसत्तम। समीपं प्रस्थितं भ्रातुर्मैत्रेणे-
क्षस्व चक्षुषा ॥४॥ प्रयाणमिति च श्रुत्वा राजराजस्य योषितः।
हित्वा यानानि यानार्हा ब्राह्मणं पर्यवारयन् ॥५॥ तत्र पप्रच्छ भरतं
भरद्वाजो महामुनिः। विशेषं ज्ञातुमिच्छामि मातॄणां तव राघव ६
एवमुक्तस्तु भरतो भरद्वाजेन धार्मिकः। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वावाक्यं
वचनकोविदः ॥७॥ यामिमां भगवन्दीनां शोकानशनकर्शिताम्।
पितुर्हि महिषीं देवीं देवतामिव पश्यसि ॥८॥ एषा तं पुरुषव्याघ्रं
सिंहविक्रान्तगामिनम्। कौसल्या सुषुवे रामं धातारमदितिर्यथा ९

टीका—तब आतिथ्य सत्कारसे सत्कृत कियाहुआ भरत वहांपरिवार सहित रात रहकर (सवेरे रामके मिलने की) कामना से भरद्वाजके पासगया॥१॥हाथ जोड़ कर प्रणाम करके भरत आश्रमसे निकलते हुए उस उत्तम तेजवाले ऋषि से बोला ॥२॥ हे भगवन् ! समग्र सेना और वाहनों के साथ मैं सुखसे रहाहूं और हे भगवन्! आपनेमन्त्रियों समेत मुझे सारी कामनाओंसे बडा तृप्त किया है ॥३॥ हे भगवन् ऋषिसत्तम अब आपसे आज्ञा मांगता हूं, भाई के पास रवाना हुए मुझको मित्रकी दृष्टि से देख।४।चलना है यह सुनकर राजाधिराज की स्त्रियें यानोंको छोड़कर ब्राह्मण (भरद्वाज) की प्रदक्षिणाकरती भई ५ तब महामुनि भरद्वाजने भरतसे पूछा, हे राघव तेरी माताओं की विशेषता जानना चाहता हूं ६ भरद्वाजसे से ऐसा कहा हुआ वचन (सुन) पंडित धार्मिक भरत हाथ जोडकर बोला॥७॥हे भगवन्! यह जो आप दीन, शोक और अनाहार से दुर्बल मेरे पिताकी पटरानी देवताकी तरह देखते हैं ८ यह कौसल्या है जिस ने सिंहकी चाल वाले पुरुषश्रेष्ठरामको जन्म दिया है जैसे अदिति ने धाता को ॥९

मूल—अस्या वामभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः । इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा १० यस्या कृते नरव्याघ्रौ जीवनाशमितोगतौ । राजापुत्रविहीनश्च स्वर्गंदशरथो गतः ११ ममैतांमातरं विद्धि नृशंसां पापनिश्चयाम् । यतोमूलं हि पश्यामि व्यसनं महदात्मनः ॥१२॥ भरद्वाजो महर्षिस्तं ब्रुवन्तं भरतं तदा । प्रत्युवाच महाबुद्धिरिदं वचनमर्थवत् ॥१३॥ +न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया । रामप्रव्राजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति १४ +देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् । हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह॥१५॥ अभिवाद्य तु संसिद्धः कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् । आमन्त्र्य भरतः सैन्यं युज्यतामिति चाब्रवीत् ॥१६॥ गजकन्या

गजाश्चैव हेमकक्ष्याः पताकिनः। जीमूता इव घर्मान्ते सघोषाः संप्रतस्थिरे ॥१७॥ विविधान्यपि यानानि महान्ति च लघूनि च। प्रययुः सुमहार्हाणि पादैरपि पदातयः ॥१८॥

टीका—इस की बाईं भुजा के साथ लगी हुई जो दुर्मन हुई स्थित है, यह दुखार्ता सुमित्रा राजा की मध्यमा रानी है ॥१०॥ और जिस के लिए वह दोनों नरश्रेष्ठ यहां से जीवनाश को प्राप्त हुए हैं और राजा दशरथ पुत्रहीन हुआ स्वर्ग को गया है॥११॥उस इस क्रूर स्वभाववाली पाप निश्चय वाली को मेरी माता जानें, जिस मूल से मैं अपनी बडी विपद् देखता हूं ॥१२॥ भरत के ऐसा कहते हुए महा बुद्धि महर्षि भरद्वाज यह सार्थक वचन बोला ॥१३॥ "हे भरत कैकेयी को दोषदृष्टि से नहीं देखना, यह राम का वनवास अच्छे परिणाम वाला होगा ॥१४॥ राम के बनवास से शुद्धात्मा देवता दानव और ऋषियों का हित ही होगा" ॥१५॥ आशीर्वाद पाकर अभिवादन कर और प्रदक्षिणा करके भरत आज्ञा लेकर सेना से बोला तय्यार होजाओ ॥ १६ ॥ तब सोने के हौदोंवाले, और झण्डोंवाले हाथी हथिनियें बरसात में मेघों की तरह शब्द करते हुए चल पड़े ॥ १७ ॥ छोटे बड़े सब प्रकार के यान और बहुत बड़ों के योग्य यान चल पड़े और प्यादे पैदल ही चल पड़े॥१८॥

सर्ग ८० (व० ९३) भरत की चित्र कूट की यात्रा

मूल—तथा महत्या यायिन्या ध्वजिन्या वनवासिनः। अर्दिता यूथपा मत्ताः सयूथाः संप्रदुद्रुवुः ॥ १ ॥ स गत्वा दूरमध्वानं संपरिश्रान्तवाहनः। उवाच वचनं श्रीमान्वसिष्ठं मन्त्रिणां वरम् ॥ २ ॥ यादृशं लक्ष्यते रूपं यथा चैव मया श्रुतम्। व्यक्तं प्राप्ताःस्म तं देशं भरद्वाजो यमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयं गिरिश्चित्रकूटस्तथा मन्दाकिनी नदी। एतत् प्रकाशते दूरान्नीलमेघनिभं वनम् ॥४॥ मुञ्चन्ति कुसमान्येते नगाः पर्वतसानुषु। नीला इवातपापाये तोयं तोयधरा घनाः ॥५॥

टीका—इस चलती हुई बड़ी सेना से वनवासी यूथपति मत्त हाथी पीडित हुए यूथों के सहित भाग गये ॥१॥ दूर भाग जाकर थके हुए घोड़ोंवाला वह श्रीमान् मन्त्रिवर वसिष्ठ से वचन बोला ॥ २ ॥ जैसा यह रूप दीखता है,जैसा मैंने सुना है,निःसन्देह हम उस जगह आगये हैं,जो भरद्वाज ने वतलाई थी ॥ ३ ॥ यह चित्रकूट पर्वत है, यह मन्दाकिनी नदी है,यह दूर से नील मेघ तुल्य वन दीखता है ॥४॥यह वृक्ष पर्वत की चोटियों पर फूल बरसा रहे हैं, जैसे बरसात में नीले घने मेघ जल बरसाते हैं ॥ ५ ॥

मूल—अतिमात्रमयं देशो मनोज्ञःप्रतिभाति मे । तापसानां निवासो-ऽयं व्यक्तं स्वर्गपथोऽनघ ॥६॥ साधुसैन्याः प्रतिष्ठन्तां विचिन्वन्तु च काननम् । यथा तौ पुरुषव्याघ्रौ दृश्येते रामलक्ष्मणौ ॥७॥ भरतस्य वचःश्रुत्वा पुरुषाःशस्त्रपाणयः विविशुस्तद्वनं शूरा धूमाग्रं ददृशुस्ततः ॥८॥ ते समालोक्य धूमाग्रमूचुर्भरतमागताः । नामनुष्ये भवत्यग्निर्व्य-क्तमत्रैव राघवौ॥९॥अथ नात्र नरव्याघ्रौ राजपुत्रौ परंतपौ । अन्ये रामोपमाः सन्ति व्यक्तमत्र तपस्विनः ॥१०॥

टीका—यह अतीव सुंदर देश मुझे बड़ा प्यारा लगता है, तपस्वियों का यह निवास स्थान है हे निष्पाप निःसंदेह यह स्वर्ग का मार्ग है ॥६॥ अब सैनिक जन यथायोग्य इधर उधर रवाना हो,वन को ढूंढें, जिससे पुरुषश्रेष्ठ राम लक्ष्मण का पता लगाएं ॥७॥ भरतके वचन को सुनकर शस्त्रधारी शूरवीर उस वन में प्रविष्ट हो धूम की शिखा देखते भये॥ ८ ॥ वह देख आकर भरत से धूम की शिखा वतलाते भए और कहा बिना मनुष्य के अग्नि नहीं होती है,निःसन्देह यहां ही राघव है ॥ ९ ॥ और यदि वह परन्तप नरश्रेष्ठ राजपुत्र न भी होंगे तथापि रामतुल्य और तपस्वी यहां अवश्य होंगे ॥१०॥

सर्ग ८१ (व० ९४) राम का सीता को पर्वतीय दृश्य दिखलाना

मूल—दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौ गिरिवरप्रियः । वैदेह्याः प्रियमा

कांक्षन्स्वं च चित्तं विलोभयन् ॥ १ ॥ अथ दाशरथिश्चित्रं चित्रकू-
टमदर्शयत् । भार्याममरसंकाशः शचीमिव पुरन्दरः ॥ २ ॥ न रा-
ज्यभ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः । मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं
गिरिम् ॥३॥ पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम् । शिखरैः ख-
मिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥ पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छाया-
वद्भिर्मनोरमैः । एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः ॥ ५ ॥
गुहासमीरणो गन्धान्नानापुष्पभवान्बहून् । घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं
न प्रहर्षयेत् ॥६॥+यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते । लक्ष्म
णेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति ॥७॥+अनेन वनवासेन मम
प्राप्तं फलद्वयम् । पितुश्चानृण्यता धर्मे भरतस्य प्रियं तथा ॥ ८ ॥
इदमेवामृतं प्राहू राज्ञि राजर्षयः परे । वनवासं भवार्थाय प्रेत्य मे प्रपि
तामहाः ॥९॥ शिलाः शैलस्य शोभन्ते विशालाः शतशोऽभितः ।
बहुला बहुलैर्वर्णैर्नीलपीतासितारुणैः ॥ १० ॥

टीका—(इधर) बहुत दिन से उस पर्वत में रहता हुआ पर्वतों का प्यार करनेवाला देवतुल्य राम जानकी का प्रिय चाहता हुआ और अपने चित्तको बहलाता हुआ आश्चर्यमय चित्रकूटको अपनी पत्नी को दिखलाने लगा, जैसे इन्द्र शची को (दिखलाये) ॥१, २॥ हे भद्रे इस रमणीय पर्वत को देखकर न राज्य से गिरना, न सुहृदों से अलग होना, मेरे मन को पीड़ा देता है ॥३॥ देख इस पर्वत को हे भद्रे जो नाना पक्षिगणों से युक्त है, और धातोंवाली चोटियां जो मानों आकाश को वींधकर ऊंची निकली हुई हैं, उनसे सुशो-भित है ॥४॥ फूलोंवाले फलोंवाले और छायावाले इसप्रकार के मनोरम वृक्षों से भरा हुआ यह पर्वत शोभा को पुष्ट कर रहा है ॥५॥ गुफा (के द्वार से निकला) वायु नाना पुष्पों के गन्धों को लाकर घ्राणको तृप्त करता हुआ किस पुरुष को आनन्दित नहीं करदेता है ॥६

॥ हे अनिन्दिते यदि यहां तेरे साथ और लक्ष्मण के साथ अनेक बरस भी रहूं तो मुझे कभी शोक न दबाये ॥७॥ इस बनवास से मैंने दो फल प्राप्त किये हैं, एक तो पिता की अनृणता, दूसरा भरत का प्रिय (पिता का ऋण चुकाना और भरत का भला होना) ॥८॥ हे रानी यह बनवास ही है, जिसको मेरे पूर्वज राजऋषि अमर होना कहते गये हैं क्योंकि परलोक में परमेश्वर की प्राप्ति के लिये है ॥९॥ पर्वत के चारों ओर सैंकड़ों विशाल शिलाएं, नील पीले श्वेत, लाल अनेक प्रकार के रंगो से शोभा दे रही हैं ॥ १० ॥

मूल—निशि भान्त्यचलेन्द्रस्य हुताशनशिखा इव। ओषध्यः स्वप्रभालक्ष्म्या भ्राजमाना सहस्रशः ॥११॥ केचित्क्षयानिभा देशाः केचिदुद्यान संनिभाः। केचिदेक शिलाः भान्ति पर्वतस्यास्य भामिनि ॥१२॥ भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटः समुत्थितः। चित्रकूटस्य कूटोऽयं दृश्यते सर्वतः शुभः ॥१३॥

टीका—रात के समय इस पर्वत की बहुत सी ओषधियें अपनी प्रभा की शोभा से चमकती हुई अग्नि की शिखा की तरह प्रतीत होती हैं ॥११॥ हे भामिनि इस पर्वत के कई भाग घरों के तुल्य हैं, कई बगीचों के सदृश हैं, कई लम्बी२ एक शिला वाले हैं॥१२॥ चित्रकूट पृथिवी को मानों फोड़कर निकला हुआ प्रतीत होता है और चित्रकूट की यह चोटी (जिस पर हम हैं) सब ओर से शोभा वाली है १३

सर्ग ८२(व० ९५) सीता को नदी का दृश्य दिखलाना

मूल—अथ शैलाद्विनिष्क्रम्य मैथिलीं कोशलेश्वरः। अदर्शयच्छुभजलां रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् ॥१॥ विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम् कुसुमैरुपसंपन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम् ॥२॥ जटाजिनधराः काले वल्कलोत्तरवाससः। ऋषयस्त्ववगाहन्ते नदीं मन्दाकिनीं प्रिये ॥३॥ मारुतोद्धूतशिखरैः प्रनृत्त इव पर्वतः। पादपैः पुष्पपत्राढ्यै

मृजद्भिरभितो नदीम् ॥४॥ निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसंचयान् । पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे ॥५॥ पश्यैतद्वल्गु वचसो रथाङ्गह्वयना द्विजाः । अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः॥६॥ दर्शनं चित्रकूटस्य मन्दाकिन्याश्च शोभने। अधिकं पुरवासाच्च मन्ये तव च दर्शनात् ॥७॥ विधूतकल्मषैः सिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः । नित्यविक्षोभितजलां विगाहस्व मया सह ॥८॥

टीका—अब पर्वत से दृष्टि हटाकर वह कोशलाधिपति मैथिली को शुभ जल वाली सुहावनी मन्दाकिनी नदी का दृश्य दिखलाने लगा ॥१॥ हे मैथिलि ! विचित्र बरेतों (थलों) वाली हंस सारसों से सेवित, किनारों पर फूलों से सजी हुई सुहावनी मन्दाकिनी नदी को देख ॥२॥ हे प्रिये इस नदी में जटा और मृगान पहने हुए बकलों की चादरें ओढ़े हुए समय पर ऋषिजन स्नान करते हैं ॥३॥ वायु से हिलाई चोटियों वाले और नदी के दोनों ओर पुष्प और पत्र बिखेरते हुए वृक्षों से मानों यह नृत्य कर रहा है ॥४॥ हे तनु मध्यमे ! यह और फूलों के गुच्छे वायु से कंपाए हुए वार २ जल में डूबते हुए देख ॥५॥ देख यह मीठी ध्वनि वाले चकवे पक्षी हे कल्याणि सुन्दर आवाज़ें देते हुए बरेतों पर बैठे हैं ॥६॥ चित्रकूट का देखना, और मन्दाकिनी का देखना, और हे शोभने तेरा देखना पुर के वास से अधिक समझता हूं ॥ ७ ॥ इस नदी में जिसमें कि दूर हुए पापों वाले तप दान और शम से युक्त सिद्ध जन सदा स्नान करते हैं, मेरे साथ स्नान किया कर ॥८॥

मूल—त्वं पौरजनवद्व्यालानयोध्यामिव पर्वतम् । मन्यस्व वनिते नित्यं सरयूवदिमां नदीम्॥९॥लक्ष्मणश्चैव धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः । त्वं चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयती मम ॥ १० ॥ उपस्पृशं स्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः। नायोध्यायै न राज्याय स्पृहये च त्वया सह ॥११॥

टीका—तू हाथियों को पुर के लोगों की तरह मान, पर्वत को अयोध्या की तरह मान और हे वनिते इस नदी को सरयू की तरह मान ॥९॥ धर्मात्मा लक्ष्मण मेरे पास स्थित है और तू हे वैदिहि मेरी प्रीति को उत्पन्न करती हुई मेरे अनुकूल है ॥१०॥ सो मैं तेरे साथ तीनों सवनों में स्नान करता हुआ मधुमूल और फल खाता हुआ न अयोध्या की और न राज्य की इच्छा करता हूं ॥११॥

सर्ग ८३ (व० ९६) भरत की सेना देख कर लक्ष्मण का क्रोध

मूल—एतस्मिन्नन्तरे त्रस्ताः शब्देन महता ततः। अर्दिता यूथपा मत्ताः स्वयूथाद्दुद्रुवुर्दिशः ॥१॥ स तं सैन्यसमुद्भूतं शब्दं शुश्राव राघवः। तांश्च विप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ॥२॥ तांश्च विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा तं च श्रुत्वा महास्वनम्। उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥३॥ हन्त लक्ष्मण पश्येह सुमित्रा सुप्रजास्त्वया। भीमस्तनितगम्भीरं तुमुलः श्रूयते स्वनः ॥४॥ राजा वा राजपुत्रो वा मृगयामटते वने। अन्यद्वा श्वापदं किंचित्सौमित्रे ज्ञातुमर्हसि ॥५॥ स लक्ष्मणः संत्वरितः सालमारुह्य पुष्पितम्। प्रेक्षमाणो दिशः सर्वाः पूर्वां दिशमवैक्षत ॥६॥ उदङ्मुखः प्रेक्षमाणो ददर्श महतीं चमूम्। गजाश्वरथसंबाधां यत्तैर्युक्तां पदातिभिः ॥७॥ तामश्वरथसंपूर्णां रथध्वजविभूषिताम्। शशंस सेनां रामाय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

टीका—इस अवसर में महान् शब्द से भीत हुए पीड़ित हुए मत्त यूथपति अपने २ यूथ से इधर उधर भागने लगे ॥१॥ सैनिकों से उत्पन्न हुए उस शब्द को रामने सुना, और उन भागते हुए सब यूथपतियों को देखा ॥२॥ उनको भागता हुआ देखकर और उस बड़े शब्द को सुनकर रामने जलते हुए तेज वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण को कहा ॥ ३ ॥ हां हे लक्ष्मण इधर देख, सुमित्रा तुझ से अच्छी सन्तान वाली है, भयंकर गर्ज की तरह गम्भीर तुमल ध्वनि

सुनाई देती है ॥ ४ ॥ यह कोई राजा वा राजपुत्र बन में शिकार खेलता है,वा कोई और श्वापद (दरिन्दा) है,हे लक्ष्मण इसे जानना चाहिये ॥५॥ वह लक्ष्मण तुरत फूले हुए साल वृक्ष पर चढ़ गया, सारी दिशाओं को देखते हुए उसने पहले पूर्व दिशा को देखा ॥६ उत्तराभिमुख होकर देखते हुए उस ने भारी सेना देखी, हाथी, घोड़े और रथों से भरी हुई और सजे हुए प्यादों से युक्त ॥ ७ ॥ घोड़े रथों से पूर्ण, रथों के झण्डों से शोभायमान सेना देखकर राम को बतलाई और यह वचन कहा ॥ ८ ॥

मूल–अग्निं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम्। सज्जं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा ॥९॥ तं रामः पुरुषव्याघ्रो लक्ष्मणं प्रत्युवाच ह। अङ्गावेक्षस्व सौमित्रे कस्येमां मन्यसे चमूम् ॥१०॥ एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्। दिधक्षन्निव तां सेनां रुषितः पावको यथा ॥११॥ संपन्नं राज्यमिच्छंस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम्। आवां हन्तुमभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः ॥१२॥ एष वै सुमहाञ्छ्रीमान्विटपी संप्रकाशते। विराजत्युज्ज्वलस्कन्धः कोविदारध्वजो रथे ॥१३॥ गृहीतधनुषावावां गिरिं वीर श्रयावहे। अथ वेहैव तिष्ठावः संनद्धावुद्यतायुधौ ॥१४॥ अपि नौ वशमागच्छेत् कोविदारध्वजो रणे। अपि द्रक्ष्यामि भरतं यत्कृते व्यसनं महत् ॥१५॥ अद्येमं संयतं क्रोधमसत्कारं च मानद। मोक्ष्यामि शत्रुसैन्येषु कक्षेष्विव हुताशनम् ॥१६॥ अद्यैव चित्रकूटस्य काननं निशितैः शरैः। छिन्दञ्छत्रुशरीराणि करिष्ये शोणितोक्षितम् ॥१७॥ शरैर्निर्भिन्नहृदयान्कुञ्जरांस्तुरगांस्तथा। श्वापदाः परिकर्षन्तु नरांश्च निहतान्मया॥

टीका–आप अग्नि को ठंडा करें, सीता गुफा में चली जाए,और आप धनुष बाण और कवच को तय्यार करें ॥९॥ पुरुषश्रेष्ठ राम ने लक्ष्मण को कहा, प्यारे लक्ष्मण ध्यान देकर देख, यह किस

की सेना समझता हूं ॥१०॥ रामके ऐसा कहने पर लक्ष्मण,अग्नि की तरह मानों उस सेना को दग्ध करना चाहता हुआ क्रुद्ध हो यह वाक्य बोला ॥११॥ निःसन्देह अभिषेक को प्राप्त होकर पूर्ण राज्य को चाहता हुआ केकयीका पुत्र भरत हम दोनों को मारनेके लिये आया है ॥१२॥ यह जो उज्ज्वल कंधों वाला बहुत ऊंचा शोभायमान वृक्ष है इसके सामने रथ पर कोविदार झंडा है ॥१३ सो हम धनुष पकड़कर हे वीर पर्वत का आश्रय लें, अथवा यहां ही तय्यार हो शस्त्र उठाकर खड़े रहें ॥१४॥ ऐसा हो कि कोवि-दार झंडा रण में हमारे हाथ आए, और हो,कि मैं भरत को देखूं, जिसके निमित्त यह भारी विपद् आपको प्राप्त हुई है ॥१५॥ आज मैं अपने इन रोकेहुए क्रोध और अपमान को हे मानके देने वाले शत्रुओं की सेना पर फूस पर अग्नि की तरह छोडूंगा॥१६॥ अभी तीक्ष्ण तीरों से शत्रुओं के शरीरों को छेदता हुआ चित्रकूट के वन को रुधिर से सिञ्चित कर दूंगा ॥१७॥ तीरों से फटे हुए हृदय वाले हाथियों और घोड़ों को तथा मुझसे मारे हुए मनुष्यों को श्वापद खींच २ लेजाएंगे ॥ १८ ॥

सर्ग ८४ (व० ९७) राम का लक्ष्मण को तसल्ली देना

मूल—सुसंरब्धं तु भरतं लक्ष्मणं क्रोधमूर्छितम् । रमस्तु परिसान्त्व्याथ वचनं चेदमब्रवीत॥१॥+किमत्र धनुषा कार्यमसिना वा सचर्मणा। महाबले महोत्साहे भरते स्वयमागते ॥ २ ॥+पितुः सत्यं प्रतिश्रुत्य हत्वा भरतमाहवे । किं करिष्यामि राज्येन सापवादेन लक्ष्मण॥३॥ +यद्द्रव्यं बान्धवानां वा मित्राणां वा क्षये भवेत् । नाहं तत्प्रतिगृ-ह्णीयां भक्ष्यान्विषकृतानिव ॥४॥+धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण । इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते ॥५॥+भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण । राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुध

मालभे ॥६॥+नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा । नहीच्छे-
यमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण ॥ ७ ॥+यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं
चापि मानद । भवेन्मम सुखं किंचिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी ॥ ८ ॥
मन्येऽहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः । मम प्राणैः प्रियतरः
कुलधर्ममनुस्मरन् ।९॥ श्रुत्वाप्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम्।
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥ १० ॥

टीका-भरत के प्रति तय्यार हुए, क्रोध से मूर्छित हुए लक्ष्मण को राम तसल्ली देता हुआ यह वचन बोला ॥ १ ॥ यहां धनुष से वा ढाल सहित तलवार से क्या काम है,जब कि महाबली महोत्साही भरत स्वयं आया है ॥२॥पिता के सत्य को पालूंगा यह मैं प्रतिज्ञा करके अब भरत को युद्ध में मारकर निन्दा सहित राज्य से क्या करूंगा ॥३॥ जो द्रव्य बान्धवों के वा मित्रों के क्षय में प्राप्त हो मैं उसको विषयुक्त भक्ष्य की तरह कभी स्वीकार न करूं ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण मैं धर्म अर्थ काम और पृथिवी को आप सबके लिये ही चाहता हूं,यह प्रतिज्ञा करताहूं॥५॥हे लक्ष्मण मैं राज्य भी भाइयों के सुख के लिये चाहता हूं, सत्य से शस्त्र को छूता हूं ॥६॥ हे सौम्य समुद्र से ढकी हुई यह पृथिवी मेरे लिये दुर्लभ नहीं, पर हे लक्ष्मण मैं अधर्म से इन्द्रत्व भी नहीं चाहता हूं ॥७॥ हे मान देने वाले ! जो सुख भरत के तेरे और शत्रुघ्न के विना हो, उसको अग्नि भस्मसात् करदे॥८॥मैं समझता हूं,भ्रातृवत्सल भरत अयोध्या में आया है, और मेरे प्राणों से प्रियतर वह अपने कुल धर्म को स्मरण करता हुआ ॥ ९ ॥ मुझे जटा बकले धारकर जानकी और तेरे सहित बन को गया सुनकर-॥ १० ॥

मूल-+स्नेहेनाक्रान्तहृदयःशोकेनाकुलितेन्द्रियः । द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष
भरतो नान्यथाऽऽगतः॥११॥+अम्बां च कैकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं

वदन् । प्रसाद्य पितरं श्रीमान्राज्यं मे दातुमागतः॥१२॥+प्राप्तकाले यदेषोऽस्मान्भरतो द्रष्टुमर्हति । अस्मासु मनसाप्येष नाहितं किंचिदाचरेत् ॥ १३ ॥ विप्रियं कृतपूर्वं ते भरतेन कदा नु किम् । ईदृशं वा भयं तेऽद्य भरतं यद्विशङ्कसे ॥ १४ ॥ नाहं ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः । अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते ॥ १५॥+कथं नु पुत्राः पितरं हन्युः कस्यांचिदापदि । भ्राता वा भ्रातरं हन्यात्सौमित्रे प्राणमात्मनः ॥१६॥यदि राज्यस्य हेतोस्त्वमिमां वाचं प्रभाषसे । वक्ष्यामि भरतं दृष्ट्वा राज्यमस्मै प्रदीयताम्॥ १७॥ उच्यमानो हि भरतो मया लक्ष्मणः तद्वचः । राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव मंस्यते ॥ १८ ॥ तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हिते रतः । लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया१९

टीका--स्नेहसे भरे हुए हृदयवाला शोक से घबराए इन्द्रियोंवाला,भरत हमें देखने के लिये आया है,अन्यथा नहीं आया है॥११॥ माता कैकयी को अप्रिय कहता हुआ रुष्ट करके और पिताको प्रसन्न करके श्रीमान् भरत मुझे राज्य देने की नियत से आया है॥१२॥भरत हमें देखने योग्य है, यही उचित है, हमारे विषय में यह मन से भी कुछ अहित चिन्तन नहीं करेगा ॥१३॥ क्या भरत ने कभी कोई तेरा विप्रिय किया है, वा तेरे लिये ऐसा कभी भयरूप हुआ है, जो आज तू भरत पर शङ्का करता है ॥१४॥ भरत को न तुझे कठोर कहना चाहिये, न अप्रिय वचन कहना चाहिये, भरत को अप्रिय कहने पर मुझे ही अप्रिय कहा हुआ होगा ॥१५॥ कैसे पुत्र किसी भी आपत्ति में पिता को मार सक्ते हैं, वा भाई भाई को मार सक्ता है, हे लक्ष्मण जो कि अपना प्राण होता है ॥१६॥ यदि राज्य के लिये तू यह बात कहता है तो मैं भरत को मिलकर कहूंगा, राज्य इसको देदो ॥१७॥ हे लक्ष्मण जब मैंने भरत को यह कहा

कि राज्य इसको देदो, तो वह 'हां' ऐसाही मानेगा ॥१८॥ धर्मशील भाई ने जब उसी के हित में रते हुए लक्ष्मण को ऐसा कहा, तो वह लज्जा से मानों अपने अङ्गों में प्रविष्ट होगया ॥ १९ ॥

मूल—तद्वाक्यं लक्ष्मणः श्रुत्वा व्रीडितः प्रत्युवाच ह । त्वा मन्ये द्रष्टुमायातः पिता दशरथः स्वयम्॥२०॥ व्रीडितं लक्ष्मणं दृष्ट्वा राघवः प्रत्युवाच ह । एष मन्ये महाबाहुरिहास्मान्द्रष्टुमागतः ॥२१॥ एतौ तौ संप्रकाशेते गोत्रवन्तौ मनोरमौ । वेयुवागसमौ वीरौ जवनौ तुरगोत्तमौ ॥२२॥ स एष सुमहाकायः कम्पते वाहिनीमुखे । नागः शत्रुंजयो नाम वृद्धस्तातस्य धीमतः ॥ २३ ॥ न तु पश्यामि तच्छत्रं पाण्डुरं लोकविश्रुतम् । पितुर्दिव्यं महाभाग संशयो भवतीह मे ॥ २४ ॥ वृक्षाग्रादवरोह त्वं कुरु लक्ष्मण मद्वचः । इतीव रामो धर्मात्मा सौमित्रिं तमुवाच ह ॥ २५ ॥ अवतीर्य तु सालाग्रात्तस्मात्स समितिंजयः । लक्ष्मणः प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ॥ २६ ॥

टीका—इस वाक्य को सुनकर लज्जित हुआ लक्ष्मण बोला, जानता हूं आपको देखने के लिये स्वयं पिता दशरथ आये हैं ॥२०॥ लक्ष्मण को लज्जित हुआ देखकर राम ने उत्तर दिया,यही समझता हूं, महाबाहु (राजा) हमें देखने आये हैं ॥ २१ ॥ यह वह दोनों वायु वेग के तुल्य वेगवाले मनोरम उत्तम कुलके उत्तम घोड़े प्रतीत हो रहे हैं ॥२२॥ वह सेना के आगे बहुत बड़े शरीरवाला शत्रुञ्जय नाम पिताका वृद्ध हाथी झूमता हुआ आरहा है॥२३॥पर लोकप्रसिद्ध पिता का वह दिव्य श्वेत छत्र हे महाभाग नहीं देखता हूं, इस से मुझे संशय होरहा है ॥२४॥ हे लक्ष्मण मेरा वचन कर, वृक्ष के नीचे उतरआ ॥२५॥तब युद्धों के जीतनेवाला लक्ष्मण उस साल के अग्र से नीचे उतरकर हाथ जोड़कर राम के पास खड़ा हुआ ॥ २६ ॥

सर्ग ८५ (बा० ९८) भरत का राम को जा मिलना

मूल—भरतेनाथ संदिष्टा संमर्दो न भवेदिति। समन्तात्तस्य शैलस्य सेनावासमकल्पयत् ॥ १ ॥ अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनं पर्वतस्य ह। पार्श्वे न्यविशदावृत्य गजवाजिनराकुला ॥ २ ॥ निविष्टायां तु सेनायामुत्सुको भरतस्ततः। जगाम भ्रातरं द्रष्टुं शत्रुघ्नमनुदर्शयन् ॥ ३ ॥ ऋषिं वसिष्ठं संदिश्य मातॄर्मे शीघ्रमानय। इति त्वरितमग्रे स जगाम गुरुवत्सलः ॥ ४ ॥ सुमन्त्रस्त्वपि शत्रुघ्नमदूरादन्वपद्यत। रामदर्शनजस्तर्षो भरतस्येव तस्य च ॥ ५ ॥ गच्छन्नेवाथ भरतस्तापसालयसंस्थिताम्। भ्रातुः पर्णकुटीं श्रीमानुटजं च ददर्श ह ॥ ६ ॥

टीका—राम के आश्रम को पीड़ा न हो इस विचार से भरत से आज्ञा दी हुई सेना, उस पर्वत के चारों ओर (आश्रम से दूर) डेरे जमा लेती भई ॥१॥ हाथी घोड़े और मनुष्यों की भीड़ वाली वह इक्ष्वाकुओं की सेना पर्वत की पसलियों में छः कोस में डेरे डालती भई ॥२॥ सेना के डेरे डालने पर उत्कण्ठित भरत शत्रुघ्न को (आश्रम के चिन्हादि) दिखलाता हुआ भाई को देखने के लिये गया ॥३॥ ऋषि वसिष्ठ को संदेशा देकर, कि मेरी माताओं को जल्दी ले आइये, आप वह बड़ों का प्यारा जल्दी पहले गया ॥४॥ सुमन्त्र भी शत्रुघ्न के साथ दौड़ने लगा उसको भी भरत की तरह ही राम के दर्शन की इच्छा थी ॥५॥ चलते २ भरतने तपस्वियों के घरों की तरह बनी हुई भाई की पर्णकुटी और (सीता के रहने के लिये) उटज (दीवार और किवाड़ों वाला गृह) देखा ॥६

मूल—स लक्ष्मणस्य रामस्य ददर्शाश्रममेयुषः। कृतं वृक्षेष्वभिज्ञानं कुशचीरैः क्वचित् क्वचित् ॥ ७ ॥ गच्छन्नेव महाबाहुर्द्युतिमान्भरतस्तदा। शत्रुघ्नं चाब्रवीद्धृष्टस्तानमात्यांश्च सर्वशः ॥ ८ ॥ उच्चैर्बद्धानि चीराणि लक्ष्मणेन भवेदगम्। अभिज्ञानकृतः पन्था विकाले गन्तु-

मिच्छता ॥९॥ यमेवाधातुमिच्छन्ति तापसाः सततं वने। तस्यासौ दृश्यते धूमः संकुलः कृष्णवर्त्मनः॥१०॥ तत्राहं पुरुषव्याघ्रं गुरुसत्कारकारिणम्। आर्यं द्रक्ष्यामि संहृष्टं महर्षिमिव राघवम् ॥ ११ ॥

टीका—और उसने आश्रम में जाने के लिये राम और लक्ष्मण से कहीं २ वृक्षों पर कुश और चीरों के निशान धरे हुए देखे ॥ ७ ॥ पर चलते२ ही महाबाहु तेजस्वी भरत ने प्रसन्न होकर शत्रुघ्न को और मन्त्रियों को कहा॥८॥यह चीर ऊंचे२ लक्ष्मण ने बांधे होंगे, बेसमय (अन्धेरे में) जाने के लिये मार्ग का निशान किया है॥९॥ तपस्वी जन जिसको बन में स्थापन करना चाहते हैं, उस अग्नि का यह धूमपुंज दीखता है ॥ १० ॥ यहां मैं गुरुओं का सत्कार करने वाले महर्षि की तरह प्रसन्न पुरुषश्रेष्ठ आर्य राघव को देखूंगा॥

मूल—प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम्। ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ॥१२॥ निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्। उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥१३॥ कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम्। सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम्॥१४ तं दृष्ट्वा भरतःश्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः। अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयीसुतः॥१५॥दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः।उक्त्वार्येति सकृद् दीनं पुन र्नोवाच किंचन ॥१६॥ शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्। तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्

टीका—इतने में वहां राम की कुटिया में उसने पूर्व उत्तर को झुकी हुई जलती हुई अग्नि वाली विशाल पवित्र वेदि देखी ॥ १२ । अग्नि को देखकर थोड़ा काल पीछे भरत ने उस कुटिया में बैठे हुए जटामण्डलधारी गुरु राम को देखा ॥१३॥ काले हिरण का मृगान धारे हुए चीर और बकले के वस्त्र पहने हुए शेर के तुल्य कंधो वाले कमल सदृश नेत्रों वाले महाबाहु को (देखा)॥१४॥ उस

को देखकर धर्मात्मा केकयीसुत श्रीमान् भरत दुःख मोह से भरा हुआ भाग कर गया ॥ १५ ॥ दुःख से तपा हुआ महाबली राजपुत्र भरत एक बार दीन स्वर से 'आर्य' ऐसा कह कर फिर कुछ नहीं बोल सका ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न ने भी रोते २ राम के चरणबन्दन किये, और उन दोनों को आलिंगन कर राम के आंसु प्रवाहित हुए

सर्ग ८६ (व० १०१) भरत और राम की बात चीत और भरत की याचना

मूल—जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि । भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना ॥ १ ॥ आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम् । अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम् ॥ २ ॥ कच्चिच्छुश्रूषसे तात पितुः सत्यपराक्रम । कच्चिद्दशरथो राजा कुशली सत्यसंगरः ॥ ३ ॥ स कच्चिद् ब्राह्मणो विद्वान् धर्मनित्यो महाद्युतिः । इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ॥ ४ ॥ तात कच्चिच्च कौसल्या सुमित्रा च प्रजावती । सुखिनी कच्चिदार्या च देवी नन्दति कैकयी ॥ ५ ॥ कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः । अनसूयुरनुद्रष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ॥ ६ ॥ इष्वस्त्रवरसंपन्नमर्थशास्त्रविशारदम् । सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित् त्वं तात मन्यसे ॥७॥ यन्निमित्तमिमं देशं कृष्णाजिनजटाधरः । हित्वा राज्यं प्रविष्टस्त्वं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ इत्युक्तः केकयीपुत्रः काकुत्स्थेन महात्मना । प्रगृह्य बलवद्भूयः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥९॥ आर्यं तातः परित्यज्य कृत्वा कर्म सुदुष्करम् । गतः स्वर्गं महाबाहुः पुत्रशोकाभिपीडितः ॥१०॥

टीका—जटा धारे चीर पहने हाथ जोड़े पृथिवी पर गिरे हुए भाई भरत को राम ने हाथ से पकड़ा ॥ १ ॥ उसको माथे पर चूम कर और गले लगा कर गोद में लेकर सादर पूछने लगा ॥२॥ क्या हे तात सच्चे पराक्रमवाले पिता की तू सेवा करता है, और वह सच्ची प्रतिज्ञा वाला राजा दशरथ कुशलसे है॥३॥और क्याहेतातधर्म-

प्रधान महातेजस्वी ब्राह्मण जो इक्ष्वाकुओं का उपाध्याय (गुरु) है, उस (वसिष्ठ) को यथावत् पूजते हो ॥४॥ क्या हे तात! कौसल्या और नेकसन्तति वाली सुमित्रा सुख से है, और माननीय देवी केकयी आनन्द से है ॥५॥ और क्या विनययुक्त, बहुश्रुत, असूया से रहित, (तुम्हारे धर्म का) अनुद्रष्टा (निगहबान) कुलपुत्र अपने पुरोहित का सत्कार करते हो (इस में वसिष्ठ का पुत्र कोई जो भरत का पुरोहित चुना गया, उसका वर्णन है) ॥६॥ और अच्छे तीर और अस्त्रों से संपन्न अर्थशास्त्र में निपुण सुधन्वा उपाध्याय (धनुर्वेदाचार्य) को हे तात मान्य करते हो ॥७॥ जिस निमित्त तू राज्य को छोड कर मृगाजन और जटा धारण कर इस जगह आया है वह सब कहने योग्य है ॥ ८ ॥ महात्मा राम से ऐसे कहा हुआ केकयीसुत फिर जोर से अपने आपको रोक कर हाथ जोड कर वाक्य बोला ॥९॥ हे तात महाबाहु पिता हमें छोड कर बडा कठिन काम करके पुत्र शोक से पीड़ित हुआ स्वर्ग को चला गया है ॥१०

मूल—स्त्रिया नियुक्तः केकय्या मम मात्रा परंतप। चकार स महत्पाप मिदमात्मयशोहरम् ॥ ११ ॥ सा राज्यफलमप्राप्य विधवा शोककर्शिता । पतिष्यति महाघोरे नरके जननी मम ॥ १२ ॥ तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि । अभिषिञ्चस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव ॥१३॥ इमाः प्रकृतयः सर्वा विधवा मातरश्च याः । त्वत्सकाशमनुप्राप्ताः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १४ ॥ तथानुपूर्व्या युक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद । राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान्सुहृदः कुरु ॥१५॥ एभिश्च सचिवैः सार्धं शिरसा याचितो मया । भ्रातुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥१६॥ तदिदं शाश्वतं पित्र्यं सर्वं सचिवमण्डलम् । पूजितं पुरुषव्याघ्र नातिक्रमितुमर्हसि ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा महाबाहुः सबाष्पः कैकयीसुतः । रामस्य शिरसा पादौ जग्राह भरतः पुनः १८॥

टीका—हे परंतप ! मेरी माता केकयी से प्रेरे हुए उसने अपने यश को हरने वाला यह भारी पाप किया॥११॥ वह मेरी माता राज्य-फल को न पाकर विधवा हुई शोक से दुर्बल हुई महाभयंकर नरक में गिरेगी ॥१२॥अब मुझ दास पर आप कृपा करने योग्य हैं,अभी राज्य से अपने आप को इन्द्र के तुल्य अभिषिक्त करो ॥ १३ ॥ यह सारी प्रकृतियें (अधिकारी और प्रजाजन) और विधवाएं मेरी माताएं आपके पास आई हैं, आप कृपा करने योग्य हैं ॥ १४ ॥ तथा आनुपूर्वी से आप अधिकारी हैं, हे मानद आपका अभिषेक युक्त है, सो आप धर्म से राज्य को प्राप्त हो, अपने सुहृदों की कामनाओं को पूरा करें ॥१५॥ इन मन्त्रियों समेत मैं आपको सिर से याचना करता हूं, भाई हूं, शिष्य हूं, मुझ पर कृपा करने योग्य हो॥१६॥सो परम्परा प्राप्त पिता के पूजित मन्त्रीमण्डल को आप नहीं उलांघेंगे ॥१८ यह कह कर महाबाहु केकयीसुत भरत रोता हुआ फिर भाई के चरणों पर सिर रखता भया ॥१८॥

सर्ग ८७ (१०१-१०३) राम का शोकादि ।

मूल—तं मत्तमिव मातङ्गं निःश्वसन्तं पुनःपुनः । भ्रातरं भरतं रामः परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥१॥ कुलीनः सत्वसंपन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः। राज्यहेतोः कथं पापमाचरेन्मद्विधो जनः ॥२॥ न दोषं त्वयि पश्यामि सूक्ष्ममप्यरिसूदन । न चापि जननीं बाल्यात् त्वं विगर्हितुमर्हसि ॥ ३ ॥ कामकारो महाप्राज्ञ गुरूणां सर्वदानघ । उपपन्नेषु दारेषु पुत्रेषु च विधीयते ॥४॥ वने वा चीरवसनं सौम्य कृष्णाजिनाम्बरम् । राज्ये वापि महाराजो मां वासयितुमीश्वरः ॥५॥ यावत् पितरि धर्मज्ञ गौरवं लोकसत्कृते। तावद्धर्मकृतां श्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् ॥

टीका—मत्त हाथी की तरह बार २ सांस लेते हुए भाई भरत को राम गले लगा कर यह बोला ॥१॥ हे भाई कुलीन, दृढसंकल्प, तेजस्वी, ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा किये हुए मेरे जैसा पुरुष कैसे राज्य के अर्थ

पाप का आचरण कर सक्ता है ॥२॥ हे अरिसूदन ! मैं तुझ में सूक्ष्म भी दोष नहीं देखता हूं, और न ही तुझे माता को निन्दना चाहिये यह बालकपन है ॥ ३ ॥ हे महाप्राज्ञ ! हे निष्पाप ! अपनी संमत स्त्रियों में और पुत्रों में गुरुओं (पति, वा पिता) की अपनी स्वतन्त्र इच्छा होती है ॥४॥ हे सौम्य ! महाराज मुझे चीर और मृगान पहना कर बन में, वा राज्य में बसाने में मालिक थे ॥ ५ ॥ और हे धर्मज्ञ जितना लोकमाननीय पिता में गौरव है, उतना ही हे धर्म करने वालो में श्रेष्ठ माता में भी है ॥ ६ ॥

मूल—एताभ्यां धर्मशीलाभ्यां वनं गच्छेति राघव । मातापितृभ्यामुक्तोऽहं कथमन्यत्समाचरे ॥७॥ त्वया राज्यमयोध्यायां प्राप्तव्यं लोकसत्कृतम् । वस्तव्यं दण्डकारण्ये मया वल्कलवाससा ॥८॥ एवमुक्त्वा महाराजो विभागं लोकसंनिधौ । व्यादिश्य च महाराजो दिवं दशरथो गतः ॥९॥ स च प्रमाणं धर्मात्मा राजा लोकगुरुस्तव । पित्रा दत्तं यथा भागमुपभोक्तुं त्वमर्हसि ॥१०॥ किं करिष्याम्ययोध्यायां ताते दिष्टां गतिं गते । कस्तां राजवराद्धीनामयोध्यां पालयिष्यति ॥११॥ किं नु तस्यमया कार्यं दुर्जातेन महात्मना । यो मृतो मम शोकेन स मया न च संस्कृतः ॥१२॥ अहो भरत सिद्धार्थो येन राजा त्वयानघ । शत्रुघ्नेन च सर्वेषु प्रेतकृत्येषु सत्कृतः ॥ १३ ॥

टीका—सो हे राघव जब इन धर्मशील माता पिता ने आज्ञादी है, कि बन को जा, तो कैसे मैं और आचारण करूं ॥७॥ तुझे अयोध्या में लोकसंमानित राज्य पाना चाहिये, और मुझे बकले पहन कर दण्डक बन में रहना चाहिये ॥८॥ महाराज दशरथ लोगों के सामने यह विभाग करके स्वर्ग को गए हैं ॥ ९ ॥ वह लोकगुरु धर्मात्मा राजा तुझे प्रमाण है, पिता से दिये अपने हिस्से को तू भोगने योग्य है ॥१०॥ शोक ! अयोध्या में क्या करूंगा, जब कि तात दैवगति को प्राप्त होगए हैं, कौन राजवर से हीन उस अयोध्या का पालन

करेगा ॥ ११ ॥ वृथा जन्मे मैंने उस महात्मा का क्या करना है, जब वह मेरे शोक से मरा, पर मैंने उस का संस्कार भी नहीं किया ॥ १२ ॥ अहो निष्पाप भरत तू कृतकृत्य है, जिस तूने और शत्रुघ्न ने प्रेतकार्यों में राजा का सत्कार किया ॥ १३ ॥

मूल—समाप्तवनवासं मामयोध्यायां परंतप। कोऽनुशासिष्यति पुनस्ताते लोकान्तरे गते ॥१४॥ पुरा प्रेक्ष्य सुवृत्तं मां पिता यान्याह सान्त्वयन्। वाक्यानि तानि श्रोष्यामि कुतः कर्णसुखान्यहम् ॥१५ एवमुक्त्वाथ भरतं भार्यामभ्येत्य राघवः। उवाच शोकसंतप्तः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥१६॥ सीते मृतस्ते श्वशुरः पितृहीनोऽसि लक्ष्मण। भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः ॥ १७ ॥ सा सीता स्वर्गतं श्रुत्वा श्वशुरं तं महानृपम्। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां न शशाकेक्षितुं प्रियम् ॥१८॥ सान्त्वयित्वा तु तां रामो रुदतीं जनकात्मजाम्। उवाच लक्ष्मणं तत्र दुःखितो दुःखितं वचः ॥१९॥ आनयेंगुदिपिण्याकं चीरमाहरचोत्तरम्। जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः॥२०॥

टीका—हे परंतप अब वनवासको समाप्त कर अयोध्या में आए मुझ को कौन अनुशासन करेगा जब कि पिता लोकान्तर को चले गए ॥ १४ ॥ और मुझे शुद्धाचारी देखकर पिता तसल्ली देते हुए जो वाक्य कहा करते थे, वह कानों के सुखदायी वाक्य अब किससे सुनूंगा ॥१५॥ भरत को यह कहकर राम पत्नी के पास आ शोक से तपा हुआ उस पूर्णचन्द्रतुल्यमुखी से बोला ॥१६॥ हे सीते! तेरा श्वशुर मर गया है, हे लक्ष्मण तू पितृहीन हुआ है, भरत पृथिवीपति की स्वर्गगति बतलाता है ॥१७॥ वह सीता श्वशुर की स्वर्ग गति को सुनकर आंसुओं से भरे नेत्रों से प्यारे को देख नहीं सकी ॥१८॥ रोती हुई उस जनकसुता को तसल्ली देकर राम दुःखित हुआ लक्ष्मण से दुःखित वचन बोला ॥१९॥ इंगुदी (गोंदी) का चूर्ण और उत्तर चीर ला, महात्मा तात की जल क्रिया के लिये जाऊंगा ॥२०॥

मूल—सीता पुरस्तादूव्रजतु त्वमेनामभितो व्रज। अहं पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा॥२१॥ततो मन्दाकिनीतीरं प्रत्युत्तीर्य स राघवः। पितुश्चकार तेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह ॥२२॥ ऐंगुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे। न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत्॥२३ इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्। यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥२४॥ ततस्तेनैव मार्गेण प्रत्युत्तीर्य सरित्तटात्। आरुरोह नरव्याघ्रो रम्यसानुं महीधरम् ॥२५॥ अचिरप्रोषितं रामं चिरविप्रोषितं यथा। द्रष्टुकामो जनः सर्वो जगाम सहसाश्रमम् ॥२६ तान्नरान्बाष्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथ सुदुःखितान्। पर्यष्वजत धर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्च सः ॥२७॥

टीका—सीता आगे चले, तू इसके पीछे चल और मैं पीछे चलूंगा, यह शोक की चाल है (सब से आगे स्त्रियें, फिर छोटे, फिर बड़े) २१ ॥ तब मन्दाकिनी के तीर पर उतर कर उस तेजस्वी राघव ने भाईयों के साथ पिता का निर्वाप (जल और पिण्ड) किया ॥ २२ ॥ गोंदी का चूर्ण बेरों से मिला हुआ दर्भ के सत्थर पर रख कर अत्यन्त दुःखित हुआ राम रोता हुआ यह वचन बोला ॥ २३ ॥ हे महाराज प्रसन्न हुए आप इसको भोगें, जो कुछ कि हम खाते हैं। जिस अन्न वाला पुरुष होता है, उस अन्न वाले उसके देवता होते हैं ॥ २४ ॥ तब उसी मार्ग से वह नरश्रेष्ठ ऊपर चढ़कर सुहावनी चोटियों वाले पर्वत पर चढ़ा ॥ २५ ॥ जल्दी के परदेशी राम को देर के परदेशी की तरह (बड़ा) चाह से देखने की इच्छा वाले सभी लोग जल्दी आश्रम में आए ॥ २६ ॥ आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाले अत्यन्त दुःखित उन लोगों को देखकर वह धर्मज्ञ पिता माता के तुल्य गले लगाता भया ॥२७॥

सर्ग ८८ (व० १०४) वसिष्ठ और माताओं का आना।

मूल—वसिष्ठःपुरतः कृत्वा दारान्दशरथस्य च। अभिचक्राम तं देशं

रामदर्शनतर्षितः ॥१॥ राजपत्न्यश्च गच्छन्त्यो मन्दं मन्दाकिनीं प्रति। ददृशुस्तत्र तत्तीर्थं रामलक्ष्मणसेवितम् ॥२॥ कौसल्याबाष्पपूर्णेन मुखेन परिशुष्यता। सुमित्रामब्रवीद्दीनां याश्चान्या राजयोषितः ॥३॥ इदं तेषामनाथानां क्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम्। वने प्राक्कलनं तीर्थं ये ते निर्विषयीकृताः ॥४॥ इतः सुमित्रे पुत्रस्ते सदा जलमतन्द्रितः। स्वयं हरति सौमित्रिर्मम पुत्रस्य कारणात् ॥५॥ +जघन्यमपि ते पुत्रः कृतवान्नतु गर्हितः। भ्रातुर्यदर्थरहितं सर्वं तद्गर्हितं गुणैः ॥६॥ दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु सा ददर्श महीतले। पितुरिंगुदीपिण्याकं न्यस्तमायतलोचना ॥७॥ इदमिक्ष्वाकुनाथस्य राघवस्य महात्मनः। राघवेण पितुर्दत्तं पश्यतैतद्यथाविधि ॥८॥ अतो दुःखतरं लोके न किंचित्प्रतिभाति मे। यत्र रामः पितुर्दद्यादिंगुदीक्षोदमृद्धिमान् ॥९॥ रामेणेंगुदीपिण्याकं पितुर्दत्तं समीक्ष्य मे। कथं दुःखेन हृदयं न स्फोटति सहस्रधा ॥ १० ॥

टीका—राम दर्शन का प्यासा वसिष्ठ दशरथ की पत्नियों को आगे करके उस जगह पहुंचा। १। वह राजपत्नियें धीरे २ मन्दाकिनी पर पहुंचकर राम लक्ष्मण से सेवित उस घाट को देखती भई। २। कौसल्या आंसुओं से पूर्ण सूखते हुए मुख से दीन सुमित्रा को और दूसरी राजास्त्रियों को कहने लगी। ३। यह उन शुभ कर्म वाले अनाथों का जो देश से विदेश किये गए हैं वन में तंग सी पहली मलकीयत है। ४। यहां से हे सुमित्रे तेरा पुत्र सदा मेरे पुत्र के अर्थ निरालस हो स्वयं जल ले जाता है। ५। छोटा कर्म करता हुआ भी तेरा पुत्र निन्दित नहीं हुआ है, जो भाई के अर्थ से रहित है, वही हर एक काम गुणों से निन्दित है। ६। उस विशाल नेत्रों वाली ने पृथिवी पर जल के ऊपर दक्षिण की ओर अग्र वाले दर्भों पर पिता के लिये (राम से) गोंदी का चूर्ण रखा हुआ देखा। ७। (और कहा) इक्ष्वाकुओं के नाथ अपने पिता महात्मा राघव को

राम ने देखो यह (गोंदीका चूर्ण) यथाविधि दिया है ।८। इससे बढ़कर मुझे और कोई दुःख नहीं प्रतीत होता है, जबकि ऐश्वर्य का मालिक राम अपने पिता को गोंदी का चूर्ण देवे ।९। राम से पिता को गोंदी का चूर्ण दिया हुआ देखकर किस तरह दुःख से मेरा हृदय अनेक टुकड़े होकर न फटे । १० ।

मूल—श्रुतिस्तु खल्वियं सत्या लौकिकी प्रतिभाति मे । यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ॥११॥ एवमार्ता सपत्न्यस्ता जग्मुराश्वास्य तां तदा । ददृशुश्चाश्रमे रामं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥१२॥ तं भोगैः संपरित्यक्तं रामं संप्रेक्ष्य मातरः । आर्ता मुमुचुरश्रूणि सस्वरं शोककर्शिताः ॥१३॥तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान् । मातॄणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः ॥ १४ ॥ ताः पाणिभिः सुखस्पर्शैर्मृद्वंगुलितलैः शुभैः । प्रममार्जु रजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः

टीका—यह लौकिक कहावत मुझे सच्ची प्रतीत होती है, कि जिस अन्न वाला पुरुष होता है, उसी अन्न वाले उसके देवता होते हैं ।११ इस प्रकार आर्त हुई उसको तसल्ली देकर तब वह स्त्रियें आश्रम में राम को स्वर्ग से गिरे देवता की तरह स्थित देखती भई ।१२। भोगों से अलग हुए उस राम को देखकर सारी माताएं पीड़ित हुई शोक से दुर्बल हुई स्वर सहित आंसुएं छोड़ती भई ।१३। सच्ची प्रतिज्ञा वाले पुरुषश्रेष्ठ रामने उठकर उन माताओं के चरण कमल पकड़े ।१४ वह विशाल नेत्रों वालियें सुख स्पर्श वाले नर्म अंगुलिओं वाले शुभ हाथों से राम की पीठ से रज (धूल) को पोंछती भई । १५ ।

मूल—सौमित्रिरपि ताः सर्वा मातॄः संप्रेक्ष्य दुःखितः । अभ्यवादयदासक्तं शनै रामादनन्तरम् ॥१६॥ यथा रामे तथा तस्मिन्सर्वा वदृतिरे स्त्रियः । वृत्तिं दशरथाज्जाते लक्ष्मणे शुभलक्षणे॥१७॥सीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता । श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी संबभूवाग्रतः स्थिता ॥१८॥ तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा । वनवास-

कृतां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥ वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च। रामपत्नी कथं दुःखं संप्राप्ता विजने वने ॥२०॥ पद्ममातपसंतप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम्। काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः ॥२१॥ मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम्। भृशं मनासि वैदेहि व्यसनारणिसंभवः ॥ २२ ॥

टीका—सुमित्रा का पुत्र भी उन सारी माताओं को देखकर दुःखित हुआ राम के पीछे स्नेह से धीरे २ प्रणाम करता भया ।१६। वह सब स्त्रियें दशरथ से उत्पन्न हुए शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण में भी राम के तुल्य बर्ताव करती भईं।१७। सीता भी उन के पाओं पकड़ कर दुःखित हुई आसुओं से भरे हुए नेत्रोंवाली अपनी सासों के सामने खड़ी हुई।१८। अपनी औरस कन्या की तरह उसको गले लगाकर दुःख से पीड़ित हुई कौसल्या बनवास से दीन हुई सीता को यह वाक्य बोली ।१९। वैदेहराज की कन्या दशरथ की स्नुषा, राम की पत्नी कैसे निर्जन वन में दुःखको प्राप्त हुई है धूम से मुरझाए पद्मकी तरह, मैले हुए लाल कमल की तरह, धूल से मैले हुए सोने की तरह, मेघों से तंग किये चन्द्र की तरह ॥२१॥ तेरे मुख को देख कर हे वैदेहि! विपत् की अरणि से उत्पन्न हुआ शोक मेरे मन को ज़ोर से दग्ध कर रहा है, जैसे अग्नि अपने आश्रय को ॥ २२ ॥

मूल—ब्रुवन्त्यामेवमार्तायां जनन्यां भरताग्रजः। पादावासाद्य जग्राह वसिष्ठस्य च राघवः।२३। पुरोहितस्याग्निसमस्य तस्य वै बृहस्पतारिन्द्र इवामराधिपः। प्रगृह्य पादौ सुसमृद्धतेजसः सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥२४॥ ततो जघन्यं सहितैः स्वमन्त्रिभिः पुरप्रधानैश्च तथैव सैनिकैः। जनेन धर्मज्ञतमेन धर्मवानुपोपविष्टो भरतस्तदाग्रजम् ॥२५॥ स राघवः सत्यधृतिश्च लक्ष्मणो महानुभावो भरतश्च धार्मिकः। वृताः सुहृद्भिश्च विरेजिरेऽध्वरे यथा सदस्यैः सहितास्त्रयोऽग्नयः ॥ २६ ॥

टीका—आर्त माता के ऐसा कहते हुए भरत का बड़ा भाई राघव आकर वसिष्ठ के पाद ग्रहण करता भया ॥२३॥ जैसे देवताओं का अधि-

पति इन्द्र बृहस्पति के, इस प्रकार अग्नि के तुल्य बहुत बड़े तेजवाले पुरोहित के चरण ग्रहण करके राम उनके साथ ही बैठ गया॥ २४॥ तब धर्मात्मा भरत अपने मन्त्री, पुरके मुखिया, और सैनिकों के साथ इन सब धर्मज्ञतम लोगों के साथ बड़े भाई के पीछे बैठ गया ॥२५॥ वह सच्चे धैर्यवाला राम, महानुभाव लक्ष्मण, और धार्मिक भरत सुहृदों से घिरे हुए ऐसे शोभायमान हुए जैसे यज्ञ में सदस्यों से युक्त तीनों अग्नियें होती है ॥२६ ॥

सर्ग ८९ (वा० १०१) भरत की याचना और राम का उसे उपदेश

मूल—ततः पुरुषसिंहानां वृतानां तैः सुहृद्गणैः । शोचतामेव रजनी दुःखेन व्यत्यवर्तत ॥१॥ रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृताः । मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन् ॥ २ ॥ तूष्णीं ते समुपासीना न कश्चित्किंचिदब्रवीत् । भरतस्तु सुहृन्मध्ये रामं वचनमब्रवीत् ॥३॥ सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम । तद्ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ॥४॥ महतेवाम्बुवेगेन भिन्नः सेतुर्जलागमे । दुरावारं त्वदन्येन राज्यखण्डमिदं महत् ॥५॥ श्रेणयस्त्वां महाराज पश्यन्त्वग्र्याश्च सर्वशः । प्रतपन्तमिवादित्यं राज्यस्थितमरिंदमम् ॥ ६ ॥ तस्य साध्वनुमन्यन्त नागरा विविधा जनाः । भरतस्य वचः श्रुत्वा रामं प्रत्यनुयाचतः ॥ ७ ॥

टीका—तब सुहृद्गणों से घिरे हुए उन पुरुषसिंहों को शोक करते हुए ही वह रात्रि दुःख से बीती ॥१॥ रात के प्रभात होने पर सुहृदों से युक्त वह भाई मन्दाकिनी पर होम स्वाध्याय करके राम के पास आए॥२॥ वह सब चुपचाप बैठ गए, कोई कुछ नहीं बोला किन्तु उन सुहृदों के मध्य में भरत राम से यह वचन बोला ॥३॥ मेरी माता को (राज्य देने से राजा ने) तसल्ली देदी, और उस ने यह राज्य मुझे दे दिया है, सो मैं आप ही को देता हूं, इस अकण्टक राज्य को आप भोगें ॥ ४ ॥ बहुत बड़े जल के वेग से

टूटे बन्त्र की तरह यह बड़ा राज्यखण्ड आपके बिना और किसी से नहीं सम्भाला जा सकता है ॥५॥ हे महाराज! सब मुख्य २ (लोगों की) श्रेणियें आपको तपते हुए सूर्य की तरह राज्य पर स्थित देखें ॥६॥ राम के प्रति याचना करते हुए भरत के वचन को सुनकर नगरवासी सभी जन साधु २ कहते भए ॥ ७ ॥

मूल—तमेवं दुःखितं प्रेक्ष्य विलपन्तं यशस्विनम् । रामः कृतात्मा भरतं समाश्वासयदात्मवान् ८ नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ।९। +सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः । संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।१०। यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् । एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥११॥ यथाऽऽगारं दृढस्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति । तथावसीदन्ति नरा जरामृत्युवशं गताः ॥१२॥+ अत्येति रजनी या तु सा न प्रतिनिवर्तते । यात्येव यमुना पूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ॥१३॥ अहोरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह । आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः ॥१४॥

टीका—उस यशस्वी भरत को इस तरह दुःखित विलाप करता हुआ देखकर शुद्ध हृदय जितेन्द्रिय राम तसल्ली देता भया ॥८॥ किसी की अपनी मर्ज़ी नहीं चलती है, यह पुरुष अनीश्वर है, इस को अपने किये कर्म का नतीजा इधर उधर खींचता है ॥९॥ सब संग्रहों का अन्त नाश है, उन्नतियों का अन्त पतन है, संयोगों का अन्त वियोग है, जीवन का अन्त मरण है ॥१०॥ जैसे पके हुए फलों का गिरना अवश्यंभावि है, इसी प्रकार जन्मे मनुष्य का मरना अवश्यम्भावि है, ॥११॥ जैसे दृढ़ खम्भोंवाला भी घर पुराना होकर गिर पड़ता है, इसीप्रकार मनुष्य जरा मृत्यु के वश को प्राप्त हुए गिरते हैं ॥१२॥ जो रात चली गई, वह फिर नहीं

लौटती है, यमुना जल के भरे समुद्र को जाती ही है (पीछे नहीं लौटती) ॥१३॥ दिन और रातें सब लोगों के आयु को क्षीण करते हुए चले जा रहे हैं, जैसे गर्मी में किरणें जल को ॥१४॥

मूल—+आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि। आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्याथ गतस्य च १५ सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति। गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते १६+यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे। समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥१७॥ एवं भार्याच पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च। समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः ।१८। यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात्कश्चित्पथि स्थितः। अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥१९॥ एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्ध्रुवः। तामापन्नः कथं शोचेद्यस्य नास्ति व्यतिक्रमः॥२०॥वयसः पतमानस्य स्रोतसो वाऽनिवर्तिनः। आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुखभाजः प्रजाः स्मृताः ॥ २१ ॥

टीका—तू किसी और पर क्या शोक करता है, अपने आप पर शोक कर, जिसका कि आयु बैठते चलते क्षीण होरहा है॥१५॥ मृत्यु साथ ही चलता है, साथ ही बैठता है, और बहुत लम्बा रस्ता चलकर साथ ही लौटता है, ॥१६॥ जैसे बड़े समुद्र में काष्ठ (गेली) और काष्ठ मिल जाएं, और कुछ काल मिलकर अलग होजाएं ॥१७॥ इस प्रकार स्त्री पुत्र ज्ञाति धन मिलकर अलग होते हैं, इनका अलग होना अटल है ॥१८॥ जैसे कोई रस्ते चलता पुरुष अपने साथ को कहे, मैं भी आपके पीछे आऊंगा ॥१९॥ इसी प्रकार अपने पूर्वज पिता पितामह से चले हुए मार्ग पर चलता हुआ कैसे शोक करे जिसका उलांघना हो नहीं सकता है ॥२०॥ न लौटने वाले प्रवाह की तरह आयु जारही है, इसलिये आत्मा को सच्चे सुख में लगाना चाहिए, सब लोग सच्चे सुख के भागी (हकदार) माने गये हैं ॥२१॥

मूल—धर्मात्मा शुभैः कृत्स्नैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः। न स शोच्यः पिता तात स्वर्गतः सत्कृतः सताम् ॥२२॥ स जीर्णं मानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः। दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् ॥ तं तु नैवंविधं कश्चित्प्राज्ञः शोचितुमर्हति । त्वद्विधोमद्विधश्चापि श्रुतवान्बुद्धिमत्तरः ॥२४॥स स्वस्थो भव मा शोको यात्वा चावस तां पुरीम् । तथा पित्रा नियुक्तोऽसि वशिना वदतां वर ॥ २५ ॥ यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा । तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम् ॥२६॥ न मया शासनं तस्य त्यक्तुंन्याय्यमरिंदम । स त्वयापि सदा मान्यः स वै बन्धुः स नः पिता ॥२७॥ तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम् । कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव ॥ २८ ॥ धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना । भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता ॥ २९ ॥

टीका—हे तात पिता धर्मात्मा जिसने पूरी दक्षिणा के साथ सारे शुभ यज्ञ किये हैं,वह सत्पुरुषों का माननीय स्वर्ग को प्राप्त हुआ शोक के योग्य नहीं है॥पिताहमारा जीर्ण मानुष देह को त्यागकर ब्रह्मलोक में भोग के योग्य दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त हुआ है ॥२३॥ उसको तेरे जैसा वा मेरे जैसा बुद्धिमान् शास्त्र का ज्ञाता शोक करने योग्य नहीं है ॥२४॥ सो तू स्वस्थ हो, मत शोक कर, उस पुरी में जाकर वास कर, हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! ऐसे ही तू जितेन्द्रिय पिता से आज्ञा दिया गया है ॥२५॥ और उसी पुण्यकर्मा ने मुझे भी जहां लगाया है, वहीं मैं आर्य पिता की आज्ञा पालूंगा ॥२६॥ हे शत्रुओं के दबानेवाले ! मैं उसके शासन को नहीं त्याग सकता हूं। तुझे भी सदा पिता माननीय है, वह हमारा बन्धु है, हमारा पिता है ॥ सो हे राघव मैं पिता के वचन को, जो धर्म पर चलने वालों के संमत है,वनवासद्वारा कर्म से पालन करूंगा ॥२८॥ हे नरश्रेष्ठ !

परलोक को जीतना चाहते हुए पुरुष को धार्मिक दयालु और गुरुओं का आज्ञाकारी होना चाहिए ॥ २९ ॥

सर्ग ९० (व० १०६) भरत की याचना

मूल—एवमुक्त्वा तु विरते रामे वचनमर्थवत् । उवाच भरतश्चित्रं धार्मिको धार्मिकं वचः ॥१॥ को हि स्यादीदृशो लोके यादृशस्त्वमरिंदम । न त्वां प्रव्यथयेद् दुःखं प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ॥२॥ अमरोपममत्त्वस्त्वं महात्मा सत्यसंगरः । सर्वज्ञः सर्वदर्शी च बुद्धिमांश्चासि राघव ॥३॥ प्रोषिते मयि यत्पापं मात्रा मत्कारणात्कृतम् । क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ॥४॥+कथं दशरथाज्जातः शुभाभिजनकर्मणः । जानन्धर्ममधर्मं च कुर्यां कर्म जुगुप्सितम् ॥५॥

टीका—राम अर्थ से भरा ऐसा वचन कहकर जब चुप होगए, तब धार्मिक भरत धर्म युक्त यह विचित्र वचन बोला ॥१॥ कौन लोक में ऐसा होसक्ता है, जैसे आप हैं, हे शत्रुओं के दबानेवाले ! आपको न दुःख दुःखित करता है, न सुख फुलाता है ॥ २ ॥ देवताओं के तुल्य धैर्यवाले सच्ची प्रतिज्ञावाले आप महात्मा सर्वज्ञ सर्वदर्शी बुद्धिमान् हैं ॥३॥ मेरे परदेश होने पर जो मेरे अर्थ क्षुद्रा माता ने पाप किया है, वह मुझे अनिष्ट है, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥४॥ शुभ वंश और शुभ कर्मों वाले दशरथ से उत्पन्न हुआ धर्म अधर्म को जानता हुआ किसतरह मैं ऐसा निन्दित कर्म करूं ॥५॥

मूल—कैकेयीं मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च नः।पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान् ॥६॥ क्व चारण्यं क्व च क्षात्रं क्व जटाः क्व च पालनम् । ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान्कर्तुमर्हति ॥ ७ ॥ एष हि प्रथमो धर्मःक्षत्रियस्याभिषेचनम् । येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम् ॥८॥ अथक्लेशजमेव त्वं धर्मं चरितुमिच्छसि । धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नुहि ॥९॥ श्रुतेन बालः स्था-

नेन जन्मना भवतो ह्यहम् । स कथं पालयिष्यामि भूमिं भवति तिष्ठति ॥१०॥ इदं निखिलमव्यग्र्यं राज्यं पित्र्यमकण्टकम् । अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञः सह बान्धवैः ॥११॥ इहैव त्वाभिषिञ्चन्तु सर्वाः प्रकृतयः सह । ऋत्विजः सवसिष्ठाश्च मन्त्रविन्मन्त्रकोविदाः १२ अद्यार्य मुदिताः सन्तु सुहृदस्तेऽभिषेचने । अद्य भीताः पलायन्तु दुष्प्रदास्ते दिशो दश॥१३॥ अक्रोशं मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ । अद्य तत्रभवन्तं च पितरं रक्ष किल्बिषात् ॥१४॥

टीका—सो कैकेयी को, मुझको, पिता को, हमारे सुहृदों और बन्धुओं को और सारे पुर और देश के लोगों को इन सब को हे आर्य! अब आप बचाने योग्य हैं (राज्य को ग्रहण करने से आप हम सब पर भला करेंगे) ॥६॥ कहां वनवास कहां क्षात्र धर्म, कहां जटा, कहां प्रजा का पालन, ऐसा परस्पर विरुद्ध कर्म आपको नहीं करना चाहिये ॥७॥ क्षत्रिय का यही सब से पहला धर्म है, जो अभिषेक है, जिस से हे महाप्राज्ञ प्रजाओं का पालन होसकता है ॥८॥ यदि आप क्लेशसाध्य धर्म को ही करना चाहते हैं, तो धर्म से चारों वर्णों का पालन करता हुआ क्लेश को प्राप्त हो ॥९॥ शास्त्र से, दर्जे से, जन्म से आप से मैं छोटा हूं, सो आपकी विद्यमानता में मैं कैसे भूमि का पालन करूं ॥१०॥ इस पूर्ण निष्कण्टक उत्तम प्रिय राज्य को धर्मज्ञ आप बान्धवों के साथ धर्म से शासन करें ॥११॥ यहां ही हे मन्त्रवित् सब प्रकृतिजन और मन्त्रों के जाननेवाले ऋत्विज् और पुरोहित वसिष्ठ आपका अभिषेक करें॥१२॥आज आप के अभिषेक में हे आर्य ! आपके सुहृद् आनन्दित हों, और शत्रु आपके भीत हुए दसों दिशाओं को भाग जाएं ॥१३॥ हे पुरुषश्रेष्ठ आज मेरी माता की निन्दा को पोंछकर पूजनीय पिताको पापसेबचा

मूल—शिरसा त्वाभियाचेऽहं कुरुष्व करुणां मयि । बान्धवेषु च

सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वरः ॥ १५ ॥+अथवा पृष्ठतः कृत्वा वनमेव भवानितः । गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम्॥१६॥ तथाभिरामो भरतेन ताम्यता प्रसाद्यमानः शिरसा महीपतिः । न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्मतिं पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठितः ॥ १७ ॥+तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्य राघवे समं जनो हर्षमवाप दुःखितः । न यात्ययोध्यामिति दुःखितोऽभवत्स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्य हर्षितः ॥ १८ ॥ तमृत्विजो नैगमयूथवल्लभास्तथा विसंज्ञाश्रुकलाश्च मातरः । तथा ब्रुवाणं भरतं प्रतुष्टुवुः प्रणम्य रामं च ययाचिरे सह ॥ १९ ॥

टीका–सिर से आपको याचनाकरता हूं, मेरे ऊपर और सारे बन्धुओं के ऊपर दया कीजिये, जैसे सब लोगों पर परमात्मा दया करते हैं ॥१५॥ अथवा मेरी (प्रार्थना को) पीछे करके आप यहां से बन को ही जाएंगे, तो मैं भी आपके साथ जाऊंगा ॥१६॥ इस प्रकार पीड़ित हुए भरत से सिर से प्रसन्न किया हुआ वह सुन्दर महीपति पिता के उसी वचन पर खड़ा हुआ मनस्वी जाने का ख्याल भी मन में नहीं लाया ।१७। राम में इस अद्भुत स्थिरता को देखकर दुःखित हुए लोग साथ ही हर्ष को भी प्राप्त हुए, अयोध्या को नहीं जाता है, इसीलिये तो दुःखित हुए, और स्थिर प्रतिज्ञा वाला होना देखकर हर्षित हुए ।१८। ऋत्विज् और श्रेणियों के मुखिया और चित्त शून्य और आंसुओं से पूर्ण माताएं यह सब भरत की प्रशंसा करते भए, और प्रणाम करके भरत के साथी बन राम से याचना करते भए ।१९।

सर्ग ९१ (व० १०७) राम का भरत को उत्तर ॥

मूल–पुनरेवं ब्रुवाणं तं भरतं लक्ष्मणाग्रजः । प्रत्युवाच ततः श्रीमाञ्ज्ञातिमध्ये सुसत्कृतः ॥१॥ +उपपन्नमिदं वाक्यं यत्त्वमेवमभाषथाः । जातः पुत्रो दशरथात्कैकेय्यां राजसत्तमात् ॥२॥ देवासुरे

च संग्रामे जननयै तव पार्थिवः। संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः प्रभुः ॥३॥ ततः सा संप्रतिश्राव्य तव माता यशस्विनी। अयाचत नरश्रेष्ठं द्वौ वरौ वरवर्णिनी ॥४॥ तव राज्यं नरव्याघ्र मम प्रव्राजनं तथा। तच्च राजा तथा तस्यै नियुक्तः प्रददौ वरम् ॥ ५ ॥

टीका—भरत के फिर ऐसा कहते हुए ज्ञातियों में सत्कृत श्रीमान् लक्ष्मण का बड़ा भाई फिर बोला।१। यह वाक्य जो तूने इस तरह कहा है, तेरे ही योग्य है, जो कि कैकेयी में से राजश्रेष्ठ दशरथ से जन्मा है।२।(किन्तु सुन)देवासुर संग्राम में आराधना किये हुए पृथिवीपति राजा ने प्रसन्न होकर तेरी माताको वर दिया था।३। इससे यशस्विनीतेरी माताने प्रतिज्ञा करवाकर नरश्रेष्ठ से दो वर मांग लिये।४। तेरा राज्य हे नरश्रेष्ठ और मेरा वनवास, सो प्रेरे हुए राजा ने वह दोनों वर दे दिये। ५।

मूल—तेन पित्राहमप्यत्र नियुक्तः पुरुषर्षभ। चतुर्दश वने वासं वर्षाणि वरदानिकम् ॥६॥+सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः। सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ॥७॥+भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम्। कर्तुमर्हसि राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ॥८॥+ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम्। पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय ॥९॥अयोध्यां गच्छभरतत्वं प्रकृतीरुपरञ्जय। शत्रुघ्नसहितो वीर सह सर्वैर्द्विजातिभिः ॥ १० ॥

टीका—हे नरश्रेष्ठ उस पिता ने वरदान के हेतु चौदह बरस बन में रहने की मुझे आज्ञा दी है।६। सो मैं सीता और लक्ष्मण के साथ इस निर्जन बन को प्राप्त हुआ पिता के सत्यवाद पर स्थित हुआ अप्रतिद्वन्द्व हूं।७। आप भी इसी तरह हे राजेन्द्र जल्दी अपने अभिषेक से पिता को सत्यवादी बनाने योग्य हैं।८। मेरी खातिर हे भरत राजा प्रभु को ऋण से छुड़ा, हे धर्मज्ञ पिता की रक्षा कर,

और माता को आनन्दित कर ।९। हे भरत हे वीर शत्रुघ्न के सहित और द्विजातियों के नन्दित कर अयोध्या को जा और प्रकृतियों को खुश कर

मूल—प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन् । अभ्यां तु सहिता वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥११॥ +त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम् । गच्छ त्वं पुरवरमद्य संप्रहृष्टः संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान्प्रवेक्ष्ये ॥ १२ ॥ +छायान्ते दिनकरभाः प्रबाधमानं वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम् । एतेषामहमपि कानन्द्रुमाणां छायां तामतिशयनीं शनैः श्रयिष्ये ॥१३॥+शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तुते सहायः सौमित्रिर्मम विदितः प्रधानमित्रम् । चत्वारस्तनयवरावयं नरेन्द्रं सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद ॥१४॥

टीका—मैं भी सीता और लक्ष्मण के सहित हे वीर विलम्ब न करता हुआ दण्डकारण्य में प्रवेश करूंगा॥११॥ तू हे भरत मनुष्यों का राजा बन, जंगली मृगों का मैं भी राजराट् हूं । तू अब प्रसन्न हुआ पुरवर को जा, प्रसन्न हुआ मैं भी दण्डकों में प्रवेश करूंगा ॥१२ सूर्य की किरणों को रोकता हुआ छत्र तेरे सिर पर हे भरत ठण्डी छाया करे । इन जंगली वृक्षों की मैं भी अत्युत्तम छाया का धीरे २ आश्रय लूंगा ॥१३॥ अतुल बुद्धि शत्रुघ्न तेरा साथी है, लक्ष्मण प्रसिद्ध मेरा प्रधान साथी है, सो हम चारों पुत्रवर राजा को सत्य पर स्थित बनावें हे भरत मत खिन्न हो ॥ १४ ॥

सर्ग ८२ (व० १०८) जाबालि राम को उपदेश ।

मूल—आश्वासयन्तं भरतं जाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः । उवाच रामंधर्मज्ञं धर्मापेतमिदं वचः ॥१॥ साधु राघव मा भूत्ते बुद्धिरेवं निरर्थिका । प्राकृतस्य नरस्येव ह्यार्यबुद्धेस्तपस्विनः ॥ २ ॥ कः कस्य पुरुषो बन्धुः किमाप्यं कस्य केनचित् । एको हि जायते जन्तुरेक एव विनश्यति ॥३॥ तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः । उन्मत्त

इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित् ॥ ४ ॥ यथा ग्रामान्तरं गच्छन्नरः कश्चिद्बहिर्वसेत्। उत्सृज्य च तमावासं प्रतिष्ठेतापरेऽहनि ॥

टीका—भरत को तसल्ली देते हुए धर्मज्ञ रामको जाबालि यह धर्म से गिरा हुआ वचन बोला ॥१॥ ठीक है राघव ! तुझ आर्य बुद्धि वाले तपस्वी को प्राकृत पुरुष की तरह मत यह निरर्थक बुद्धि हो ॥ २ ॥ कौन किस पुरुष का बन्धु है, और क्या किस से किसी ने पाना है, अकेला जीव उत्पन्न होता है, और अकेला ही मरता है ॥३॥ इसलिये हे राम जो पुरुष—यह माता है यह पिता है इस बन्धन में आजाता है उसको उन्मत्त सा समझना चाहिये, कोई किसी का नहीं है॥४॥जैसे कोई पुरुष किसी गांओं को जाता हुआ किसी सराय में ठहरे, और उस सराय को छोड़कर अगले दिन चलपड़े

मूल—एवमेव मनुष्याणां पिता माता गृहं वसु । आवासमात्रं काकुत्स्थ सज्जन्ते नात्र सज्जनाः ॥ ६ ॥ पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम । आस्थातुं कापथं दुःखं विषमं बहुकण्टकम् ॥७॥ न ते कश्चिद्दशरथस्त्वं च तस्य न कश्चन । अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात्कुरु यदुच्यते ॥८॥ गतः स नृपतिस्तत्र गन्तव्यं यत्र तेन वै । प्रवृत्तिरेषा भूतानां त्वं तु मिथ्या विहन्यसे ॥ ९ ॥ स नास्ति परमित्येतत्कुरु बुद्धिं महामते । प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठं परोक्षं पृष्ठतः कुरु ॥ १० ॥

टीका—ठीक इसी तरह मनुष्यों के माता पिता घर धन सराय के मेल की तरह हैं, हे काकुत्स्थ सज्जन इस में फंस नहीं जाते ॥ ६ ॥ सो हे नरोत्तम ! तू पित्र्य राज्य को छोड़कर बहुत कांटों वाले विषम दुःखदायी मार्ग में स्थित होने योग्य नहीं है ॥७॥ न तेरा कोई दशरथ था, न तू कुछ उसका है, वह और राजा है तू और है, इसलिये (पितृवचन पालन के झूठे अभिनिवेश को त्याग कर)

कर, जो कुछ कहा जाता है ।८। चला गया वह राजा वहां, जहां उसको जाना था, सब भूतों की यही गति है, अब तू व्यर्थ मारा जारहा है ।९। सो हे महामते ! कोई परलोक नहीं है, यह निश्चय कर, जो प्रत्यक्ष है, उसको सेवन कर और जो परोक्ष है, उसको पीछे कर ।१०।

सर्ग ९३ (व० १०९) राम का उत्तर ॥

मूल—जाबालेस्तु वचः श्रुत्वा रामः सत्यात्मनां वरः। उवाच परया भक्त्या स्वबुद्धया चाविपन्नया ॥१॥ भवान्मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान्। अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम् ॥२॥ निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमान्वितः। मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः ॥३॥+कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्। चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम् ।४। अनार्यस्त्वार्यसंस्थानः शौचाद्धीनस्तथाऽशुचिः। लक्षण्यवदलक्षण्यो दुःशीलः शीलवानिव ॥ ५ ॥ अधर्मं धर्मवेषेण यद्यहं लोकसंकरम्। अभिपत्स्ये शुभं हित्वा क्रियां विधिविवर्जिताम्॥६॥कश्चेतयानः पुरुषः कार्याकार्यविचक्षणः। बहु मन्येत मां लोके दुर्वृत्तं लोकदूषणम् ॥७॥

टीका—जाबालि के वचन को सुनकर सत्यात्माओं में चुना हुआ वह शास्त्र में अटल श्रद्धा और अचल बुद्धि से बोला ॥ १ ॥ आपने मेरी भलाई के लिये जो यह वचन कहा है, यह कार्य के सदृश अकार्य है, पथ्य के सदृश अपथ्य है, ॥ २ ॥ मर्यादाहीन, पापाचार से युक्त, चरित्र की मर्यादा का तोड़नेवाला, पुरुष सत्पुरुषों में मान नहीं पाता है ॥ ३ ॥ चरित्र ही पुरुष को कुलीन वा अकुलीन, वीर वा पुरुषमानी, शुचि वा अशुचि, प्रकट करता है ॥ ४ ॥ अनार्य होकर आर्यों के सदृश, पवित्रता से हीन होकर अपवित्रों के तुल्य, अच्छे लक्षणों वाला न होकर

लक्षण वाले की तरह, दुःशील होकर शीलवान् की तरह ॥५॥ यदि मैं शुभ को त्याग कर लोक में गड़बड़ डालने वाले अधर्म को जो वेदविरुद्ध काम है धर्म के वेष से स्वीकार करूं, ॥ ६ ॥ तो कौन कार्य अकार्य में निपुण समझदार पुरुष लोक के बिगाड़नवाले मुझ दुर्वृत्त को बहुत मानेगा ॥ ७ ॥

मूल—कस्य यास्याम्यहं वृत्तं केन वास्वर्गमाप्नुयाम् । अन्यथा वर्तमानोहं वृत्त्या हीनप्रतिज्ञया ॥ ८ ॥ कामवृत्तोन्वयं लोकः कृत्स्नः समुपवर्तते । यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः ॥९॥ सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् । तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥१०॥ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे । सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परं गच्छति चाक्षयम् ॥११॥ उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः । धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते ॥१२॥ सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः । सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥१३॥ दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च । वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ॥१४॥ एकः पालयते लोकमेकः पालयते कुलम् । मज्जत्येको हि निरय एकः स्वर्गे महीयते ॥१५॥ सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये । सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् ॥१६॥

टीका—इस हीन प्रतिज्ञावाले वर्ताव से वर्तता हुआ मैं किसके आचरण पर चलूं, और किससे स्वर्ग को प्राप्त होउं ॥८॥ यह सारा ही लोक कामवृत्त (मनमुख) होजाए, क्योंकि जैसे आचरण वाले राजा होते हैं, वैसे आचरण वाले प्रजाजन होते हैं ॥९॥ सचाई और दयाभाव ही सनातन राजवृत्त है, यह राज्य सत्य रूप है (सत्य पर स्थित है) और सत्य पर ही लोक स्थित है॥१०॥ऋषि और देवता सत्य का ही मान करते हैं, सत्यवादी ही इस लोक में पर-

ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥११॥ झूठ बोलनेवाले से लोग इसतरह डरते हैं, जिसतरहसांप से, सत्यप्रधान धर्म इसलोक में सब का मूल कहाजाता है ॥ १२ ॥ सत्य ही लोक का ईश्वर है धर्म सदा सचाई के सहारे है, सत्यमूलक ही सब है, सत्य से परे कोई पद नहीं ॥ १३ ॥ दान दिया हुआ, हवन किया हुआ और तप तपे हुए और वेद सत्य पर ठहरे हुए हैं इसलिये सत्यपरायण होवे ॥१४॥ एक लोक का पालन करता है, एक कुल का पालन करता है, अकेला नरक में डूबता है, अकेला स्वर्ग में पूजा जाता है ॥१५॥ सो मैं सच्ची प्रतिज्ञावाला होकर पिता की आज्ञा को कैसे पालन न करूं, सचाई सचाई से बराबर की जाती है ॥ १६ ॥

मूल—नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोन्वितः । सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः॥१७॥ असत्यसंधस्य सतश्चलस्यास्थिर चेतसः । नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम् ॥१८॥ प्रत्य-गात्ममिमं धर्मं सत्यं पश्याम्यहं ध्रुवम् । भारः सत्पुरुषैश्चीर्णस्त-दर्थमभिनन्द्यते ॥१९॥ +भूमिः कीर्त्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थ-यन्ति हि । सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत्ततः ॥२०॥ श्रेष्ठं ह्यनार्यमेव स्याद्यद्भवानवधार्य माम् । आह युक्तिकरैर्वाक्यैरिदं भद्रं कुरुष्व ह ॥२१॥ कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरोः । भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः ॥२२॥ स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंनिधौ । प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा ॥२३॥

टीका—मैं सच्ची प्रतिज्ञावाला होकर अब न लोभ से न मोह से और न अज्ञान से तमोगुण युक्त हुआ पिता की सचाई की मर्यादा को तोड़ूंगा ॥१७॥ जो झूठी प्रतिज्ञावाला चञ्चल अस्थिर मनवाला है उसको न ही देवता और न ही पिता अंगीकार करते हैं, यह हमने सुना है॥१८॥हरएक आत्मा के लिये इस सचाई रूपी धर्म को अटल

देखता हूं, यह भार सत्पुरुषों से उठाया गया है, इसलिये इसको अभिनन्दन करता हूं ॥१९॥ भूमि कीर्ति यश लक्ष्मी पुरुष को चाहते हैं, पर सचाई के अनुवर्ती होते हैं, इसलिये सदा सत्य का ही सेवन करे ॥ २० ॥ आपने जो बनावटी युक्तिवाले वाक्यों से निश्चय करके कहा है, यह श्रेष्ठ है, भला है, इसको कर, पर यह अनार्यपन ही है ॥२१॥ कैसे मैं गुरु के सामने वनवास की प्रतिज्ञा करके गुरु के वचन को त्याग कर भरत का वचन करूं ॥२२॥ गुरुओं के सामने मैंने स्थिर प्रतिज्ञा की है, और उस समय देवी कैकेयी प्रसन्नमन हुई थी ॥ २३ ॥

मूल—वनवासं वसन्नेव शुचिर्नियतभोजनः। मूलपुष्पफलैः पुण्यैःपितॄन्देवांश्च तर्पयन् ॥ २४ ॥ संतुष्टपञ्चवर्गोऽहं लोकयात्रां प्रवाहये। अकुहः श्रद्दधानः सन्कार्याकार्यविचक्षणः ॥ २५ ॥ +सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।। द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः ॥२६॥ निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम् । बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥२७॥ इति ब्रुवन्तं वचनं सदोषं रामं महात्मानमदीनसत्त्वम् । उवाच पथ्यं पुनरास्तिकं च सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः ॥२८॥ न नास्तिकानां वचनं ब्रवीम्यहं न नास्तिकोऽहं न च नास्ति किंचन। समीक्ष्य कालं पुनरास्तिकोऽभवं भवेय काले पुनरेव नास्तिकः ॥२९॥ स चापि कालोऽयमुपागतः शनैर्यथा मया नास्तिकवागुदीरिता । निवर्तनार्थं तव राम कारणात्प्रसादनार्थं च मयैतदीरितम् ॥३०॥

टीका—वनवास में रहता हुआ शुचि हो नियताहारवाला, पवित्र मूल पुष्प और फलों से देवता और पितरों को तृप्त करता हुआ ॥२४॥ सन्तुष्ट पांचों इन्द्रियोंवाला बिना छल कपट कार्य अकार्य

में निपुण आस्तिकभाव से लोकयात्रा को निबाहूंगा ॥ २५ ॥ सचाई, धर्म पराक्रम, जीवों पर दया, प्रिय बोलना, ब्राह्मण देवता और अतिथियों की पूजा सत्यपुरुष इसको स्वर्ग का मार्ग बतलाते हैं ॥ २६ ॥ मैं पिता के किये इस कर्म को निन्दता हूं, जिस ने तुझ विषम बुद्धिवाले को स्वीकार किया, जो इस बुद्धि पर चलता हुआ धर्मपथ से गिरा हुआ पूरा नास्तिक है ॥ २७ ॥ इसप्रकार उदार-हृदय महात्मा राम के (जाबालिक के विषय) दोषवाला वचन कहते हुए फिर वह ब्राह्मण नम्रता सहित सच्चा पथ्य वचन बोला ॥२८ मैं नास्तिकों की बात नहीं कह रहा, न मैं नास्तिक हूं, और न (परलोक आदिक) कुछ नहीं है, मैं (परलोक की बात का) मौका देखकर आस्तिक हूं, और (लोक की बात का) मौका देखकर नास्तिक हूं ॥ २९ ॥ वह मौका था 'जिस से मैंने धीरे से नास्तिकपन की बात कही थी, हे राम तेरे लौटाने के लिए मैंने यह कहा था, और प्रसादन के लिये अब यह कहा है ॥३०॥

सर्ग ९४ (व० १११) राम का भरत को फिर उपदेश

मूल–आसीनस्त्वेव भरतः पौरजानपदं जनम् । उवाच सर्वतः प्रेक्ष्य किमार्यं नानुशासथ ॥१॥ ते तदोचुर्महात्मानं पौरजानपदा जनाः । काकुत्स्थमभिजानीमः सम्यग्वदति राघवः ॥२॥ एषोऽपि हि महाभागः पितुर्वचसि तिष्ठति । अतएव न शक्ताः स्म व्यावर्तयितुमञ्जसा ॥३॥ तेषामाज्ञाय वचनं भरतो वाक्यमब्रवीत् । शृण्वन्तु मे परिषदो मन्त्रिणः शृणुयुस्तथा ॥ ४ ॥ न याचे पितरं राज्यं नानुशासामि मातरम् । एवं परमधर्मज्ञं नानुजानामि राघवम् ॥ १५ ॥ यदि त्ववश्यं वस्तव्यं कर्तव्यं च पितुर्वचः । अहमेव निवत्स्यामि चतुर्दश वने समाः ॥६॥ धर्मात्मा तस्य सत्येन भ्रातुर्वाक्येन विस्मितः उवाच रामः संप्रेक्ष्य पौरजानपदं जनम् ॥७॥ विक्रीतमाहितं क्रीतं

यत्पित्रा जीवता मम । न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा ॥

टीका—बैठा हुआही भरत सब ओर देखकर पुर और देश के लोगों से बोला, आप सब आर्य को क्यों नहीं कहते हैं ॥१॥ तब पुर और देश के लोग उस महात्मा से बोले, हम राम के हृदय को जानते हैं, राम ठीक कह रहा है ॥२॥ यह भी महाभाग पिता के वचन पर खड़ा है, इसलिये हम साक्षात् इसके लौटाने में अशक्त हैं ॥३॥ उनके वचन को सुनकर भरत वाक्य बोला, मेरी बात को सारे सभासद और मन्त्री सुनें ॥३॥ मैंने पिता से राज्य की याचना नहीं की, माता को कुछ नहीं कहा इसीप्रकार परमधर्मज्ञ (राम के बनवास के) विषय में कुछ मालूम नहीं ॥५॥ सो यदि अवश्य बनमें रहकर पिता का वचन पूरा करना है, तो मैं ही चौदह बरस बन में रहूंगा ॥६॥ तिस पर धर्मात्मा राम भाई के सत्य वाक्य से अश्चर्य हुआ पुर और देश के लोगों की ओर देखकर बोला ॥७॥ मेरे पिता ने जीते जी जो कुछ बेच दिया, अमानत रखा है उसको मैं उलट नहीं सक्ता, न भरत (उलट सक्ता है) ॥ ८ ॥

मूल—+उपाधिर्न मया कार्यो वनवासजुगुप्सितः । युक्तमुक्तं च कैकेय्या पित्रा मे सुकृतं कृतम् ॥९॥ जानामि भरतं क्षान्तं गुरुसत्कारकारिणम् । सर्वमेवात्र कल्याणं सत्यसन्धे महात्मनि ॥१०॥ अनेन धर्मशीलेन वनात्प्रत्यागतः पुनः । भ्रात्रा सह भविष्यामि पृथिव्याः पतिरुत्तमः ॥११॥ वृतो राजा हि कैकेय्या मया तद्वचनं कृतम् । अनृतान्मोचयानेन पितरं तं महापतिम् ॥ १२ ॥

टीका—मैं बनवास में अपना कोई प्रतिनिधि नहीं बना सक्ता, यह बात निन्दावाली है, कैकेयी ने मुझे जो कहा है वह ठीक कहा है और पिता ने जो किया वह ठीक किया है ॥९॥ मैं जानता हूं भरत क्षमा वाला है गुरुओं का सत्कार करनेवाला है, सच्ची प्रतिज्ञा वाले महा-

त्मा भरत में सारा ही कल्याण है ॥१०॥ इस धर्मशील भाई के साथ बन से फिर वापिस आया मैं पृथिवी का उत्तम पति बनूंगा ११ कैकेयी ने राजा से वर मांगा, मैंने उसका वचन किया, तू भी इस से (मेरे बनवास में रहने से) उस पृथिवीपति पिता को झूठ से छुड़ा॥

सर्ग ९५ (व० ११२) राम के पादुक लेकर भरत का लौटना।

मूल—तमप्रतिमतेजोभ्यां भ्रातृभ्यां रोमहर्षणम्। विस्मिताः संगमं प्रेक्ष्य समुपेता महर्षयः॥१॥ त्रस्तगात्रस्तु भरतः स वाचा सज्जमानया। कृताञ्जलिरिदं वाक्यं राघवं पुनरब्रवीत्॥२॥ राम धर्ममिमं प्रेक्ष्य कुलधर्मानुसंततम्। कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ मम मातुश्च याचनम्॥३॥ रक्षितुं सुमहद्राज्यमहमेकस्तु नोत्सहे। पौरजानपदांश्चापि रक्तान्रञ्जयितुं तदा॥४॥ ज्ञातयश्चापि योधाश्च मित्राणि सुहृदश्च नः। त्वामेव हि प्रतीक्षन्ते पर्जन्यमिव कर्षकाः॥५॥ इदं राज्यं महाप्राज्ञ स्थापय प्रतिपद्य हि। शक्तिमानसि हि काकुत्स्थ लोकस्य परिपालने॥६॥ एवमुक्त्वापतद् भ्रातुःपादयोर्भरतस्तदा। भृशं संप्रार्थयामास राघवेऽतिप्रियं वदन्॥७॥ तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत्। श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयं॥८॥

टीका—उन अतुल तेजवाले भाइयों के रोमहर्षण संगम को देखकर वहां इकट्ठे हुए सब महर्षि विस्मित हुए॥१॥ पर भरत के अङ्ग ढीले होगये, और वह हाथ जोड़कर फिसलती हुई वाणी से फिर राम से बोला॥२॥ हे राम कुलधर्म से फैले हुए इस धर्म (बड़े पुत्र के अभिषेक) को देखकर हे काकुत्स्थ मेरी और मेरी माता की याचना को आप पूरा करने योग्य हैं॥३॥ इस बहुत बड़े राज्य की मैं अकेला रक्षा नहीं कर सक्ता हूं, और तुझ में अनुरक्त पुर और देशके लोगों को भी रञ्जन नहीं कर सक्ता हूं॥४॥ हमारे ज्ञाति के लोग योधे मित्र और सुहृद आपकी ही इस तरह

प्रतीक्षा कर रहे हैं, जैसे कसान मेघ की ॥५॥ हे महाप्राज्ञ इस राज्य को अङ्गीकार करके स्थापनकर, हे काकुत्स्थ! लोक के पालन में तू ही शक्तिवाला है ॥ ६ ॥ यह कहकर भरत भाई के पाओं पर गिर पड़ा, और अतीव प्रिय बोलता हुआ बार २ प्रार्थना करता भया ॥ ७ ॥ उस कमलनेत्र युवा भाई को स्वयं राम गोद में लेकर मत्त हंस के स्वर की तरह यह वचन बोला ॥ ८ ॥

मूल—+आगता त्वामियं बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या । भृश-मुत्सहसे तात रक्षितुं पृथिवीमपि ॥ ९ ॥ अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च बुद्धिमद्भिश्च मन्त्रिभिः । सर्वकार्याणि संमन्त्र्य महान्त्यपि हि कारय १०लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमंत्यजेत् । अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥११॥ कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम् । न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत् ॥१२॥ एवं ब्रुवाणं भरतः कौसल्यासुतमब्रवीत् । तेजसाऽऽदित्यसंकाशं प्रतिपच्चन्द्रदर्शनम् ॥१३॥ अधिरोहार्यपादाभ्यां पादुके हेमभूषिते । एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥१४॥ सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च । प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥१५॥ स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् । चतुर्दश हि वर्षाणि जटाचीरधरो ह्यहम् ॥१६॥

टीका—हे तात तुझमें यह बुद्धि (धर्म पर स्वार्थत्याग की) जो स्वभाव से और शिक्षा से आई हुई है, इससे तू सारी पृथिवी की रक्षा करने के पूरा समर्थ है ॥९॥ बुद्धिमान् अमात्य सुहृद और मन्त्रियों के साथ सारे कार्यों को विचार करके बड़े कार्यों को भी करवा॥१०॥ शोभा चन्द्र से दूर होजाए, वा हिमालय हिम को त्याग दे, समुद्र मर्यादा को तोड़ दे, पर मैं पिता की प्रतिज्ञा को नहीं तोडूंगा॥११॥ स्नेह से वा लोभ से हे तात माता ने जो तेरे लिये किया है, उसको मनमें न लाना और वही वर्ताव करना जो माता से होता है॥१२॥

ऐसा कहते हुए, तेज से सूर्य के तुल्य, और प्रतिपदा के चन्द्र तुल्य दर्शनवाले कौसल्यासुत को भरत बोला ॥१३॥ हे आर्य पाओं से सुवर्ण भूषित पादुकों पर चढ़, यह सारे लोक का योगक्षेम पूरा करेंगे॥१४॥वह नरश्रेष्ठ पादुकों पर चढ़कर और उतार कर महात्मा भरत को देता भया॥१५॥भरत उन पादुकों को प्रणाम कर राम से वचन बोला, चौदह बरस मैं जटाचीरधारी हो ॥१६॥

मूल—फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन । तवागमनमाकांक्षन्वसन्वै नगराद्बहिः॥१७॥तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं परंतप । चतुर्दशे हि संपूर्णे वर्षेऽहानि रघूत्तम॥१८॥न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम् ॥१९॥ शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत् । मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ॥२०॥मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन । इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह ॥२१॥ स पादुके ते भरतः स्वलंकृते महोज्ज्वले संपरिगृह्य धर्मवित् । प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ॥२२॥ अथानुपूर्व्या प्रतिपूज्य तं जनं गुरूंश्च मन्त्रीन्प्रकृतीस्तथानुजौ । व्यसर्जयद्राघववंशवर्धनः स्थितः स्वधर्मे हिमवानिवाचलः ॥२३॥ तं मातरो बाष्पगृहीतकण्ठ्यो दुःखेन नामन्त्रयितुं हि शेकुः । स चैव मातॄरभिवाद्य सर्वा रुदन्कुटीं स्वां प्रविवेश रामः ॥२४॥

टीका—हे वीर रघुनन्दन फल मूल खाउंगा तेरे आने की प्रतीक्षा करता हुआ नगर से बाहिर रहता हुआ ॥१७॥ राज्य व्यवहार को तेरे पादुकों में निवेदन करके।चौदहवें बरस का अन्तिम दिन पूर्ण होजाने पर हे रघूत्तम॥१८॥यदि आपको नहीं देखुंगा, तो अग्नि में प्रवेश करूंगा"तथास्तु" यह प्रतिज्ञा करके और उसको सादर गले लगाकर ॥१९॥ और शत्रुघ्न को गले लगाकर राम यह वचन बोला

माता कैकेयी की रक्षा करना, उसके प्रति रोष मत करना ॥२०॥ हे रघुनन्दन मेरी और सीता की शपथ है, यह कहकर आंसुओं से भरे नेत्रोंवाला भाई को विसर्जन करता भया ॥ २१ ॥ वह धर्मज्ञ भरत बड़े उज्ज्वल और सुशोभित पादुकों को ग्रहणकर राम की प्रदक्षिणा करता भया और उन पादुकों को उत्तम हाथी के मूर्धा पर रख दिया (अभिषिक्त राजा हाथी पर चढ़कर निकलता है) ॥२२॥तब रघुवंश का बढ़ानेवाला अपने धर्म में स्थित हिमालय की तरह अचल राम क्रम से उन लोगों को, गुरुओं को, मन्त्रियों को प्रकृतियों को, और दोनों छोटे भाइयों को पूजकर विसर्जन करता भया॥२३॥ माताएं जिनके आंसुओं से गले रुक गये हैं, दुःख से कुछ कह नहीं सकीं, वह राम सारी माताओं को अभिवादन कर रोता हुआ अपनी कुटिया में प्रविष्ट हुआ ॥२४॥

सर्ग ८६ (व० ११३) भरत की अयोध्या की यात्रा ।

मूल—ततः शिरसि कृत्वा तु पादुके भरतस्तदा । आरुरोह रथं हृष्टः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥१॥ स तमाश्रममागम्य भरद्वाजस्य वीर्यवान् । अवतीर्य रथात्पादौ ववन्दे कुलनन्दनः ॥ २ ॥ ततो हृष्टो भरद्वाजो भरतं वाक्यमब्रवीत् । अपि कृत्यं कृतं तात रामेण च समागतम् ॥ ३॥ एवमुक्तः स तु ततो भरद्वाजेन धीमता । प्रत्युवाच भरद्वाजं भरतो धर्मवत्सलः ॥ ४ ॥ स याच्यमानो गुरुणा मया च दृढवि-क्रमः । राघवः परमप्रीतो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत्॥५॥ +पितुः प्रतिज्ञां तामेव पालयिष्यामि तत्त्वतः । चतुर्दश हि वर्षाणि या प्रतिज्ञा पितुर्मम ॥६॥ एवमुक्तो महाप्राज्ञो वसिष्ठः प्रत्युवाच ह । वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं राघवं वचनं महत् ॥७॥ एते प्रयच्छ संहृष्टः पादुके हेमभूषिते । अयोध्यायां महाप्राज्ञ योगक्षेमकरो भव ॥ ८ ॥

टीका—तब भरत उन पादुकों को सिर पर करके प्रसन्न हुआ,

शत्रुघ्न सहित रथ पर आरूढ़ हुआ ।१। वह वीर्यवान् कुलनन्दन भरद्वाज के आश्रम पर पहुंचकर रथ से उतरकर उसकी पाद वन्दना करता भया ।२। भरद्वाज ने प्रसन्न हो भरत को यह वाक्य कहा, हे तात कार्य कर लिया, राम के साथ मेल हुआ ।३। बुद्धिमान् भरद्वाज से ऐसे कहा हुआ धर्मका प्यारा भरत भरद्वाज को उत्तर देता भया ।४। वह दृढ़ पराक्रमवाला राघव मुझसे और गुरु से याचना किया हुआ परम प्रसन्न हुआ वसिष्ठ से यह वाक्य बोला ।५। पिता की उसी प्रतिज्ञा को ठीक २ पालन करूंगा, जो चौदह बरस की मेरे पिता की प्रतिज्ञा है ।६। ऐसा कहने पर वाक्य के जाननेवाले महाप्राज्ञ वसिष्ठ ने वाक्यकुशल राघव को यह गम्भीर वचन कहा ।७। यह सुवर्णभूषित पादुक प्रसन्न होकर देदे, इस प्रकार हे महाप्राज्ञ अयोध्या में सारा योग क्षेम निवाहनेवाला हो।

मूल—एवमुक्तो वसिष्ठेन राघवः प्राङ्मुखः स्थितः । पादुके हेमविकृते मम राज्याय ते ददौ ॥९॥ निवृत्तोऽहमनुज्ञातो रामेण सुमहात्मना । अयोध्यामेव गच्छामि गृहीत्वा पादुके शुभे ॥१०॥ एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः । भरद्वाजः शुभतरं मुनिर्वाक्यमुदाहरत् ॥११॥ नैतच्चित्रं नरव्याघ्र शीलवृत्तविदां वरे । यदार्यत्वयि तिष्ठेत्तु निम्नात्सृष्टमिवोदकम् ॥१२॥ +अनृणः स महाबाहुः पिता दशरथस्तव । यस्य त्वमीदृशः पुत्रो धर्मात्मा धर्मवत्सलः । ॥१३॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भरद्वाजः पुनः पुनः।भरतस्तु ययौ श्रीमानयोध्यां सह मन्त्रिभिः ॥ १४ ॥

टीका—वसिष्ठ से ऐसे कहे हुए राघव ने पूर्वाभिमुख स्थित हो सुवर्णभूषित पादुक मेरे राज्य के लिये दिये ।९। महात्मा राम से अनुज्ञा दिया हुआ मैं उन शुभ पादुकों को लेकर लौटा हुआ अयोध्या को ही जारहा हूं ।१०। भरत महात्मा के इस शुभ वाक्य

को सुनकर भरद्वाज मुनि शुभतर वाक्य बोला ।११। शील और वृत्त के जाननेवालों में श्रेष्ठ तुझ नरश्रेष्ठ में यह आश्चर्य नहीं, जो आर्य चरित्र तुझ में निम्न में छोड़े हुए जल की तरह ठहरे।१२। वह तेरा पिता महाबाहु दशरथ अनृण है, जिसका तू ऐसा धर्मात्मा धर्मवत्सल पुत्र है ।१३। तब भरद्वाज की प्रदक्षिणा करके श्रीमान् भरत मन्त्रियों सहित अयोध्या को चला गया । १४ ॥

सर्ग ९७ (व०११४) भरत का अयोध्या में प्रवेश

मूल–स्निग्धगम्भीरघोषेण स्यन्दनेनोपयान्प्रभुः । अयोध्यां भरतः क्षिप्रं प्रविवेश महायशाः ॥ १ ॥ भरतस्तु रथस्थः सञ्श्रीमान्दशरथात्मजः । वाहयन्तं रथश्रेष्ठं सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥ किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्छितो न निशाम्यते । यथापुरमयोध्यायां गीतवादित्र निस्वनः ॥ ३ ॥ यानप्रवरघोषाश्च सुस्निग्धहयनिःस्वनः । प्रमत्तगजनादश्च महांश्च रथनिःस्वनः ॥४॥ नेदानीं श्रूयते पुर्यामस्यां रामे विवासिते । चन्दनागुरुगन्धांश्च महार्हाश्च वनस्रजः ॥५॥ गते रामे हि तरुणाः संतप्ता नोपभुञ्जते । बहिर्यात्रां न गच्छन्ति चित्रमाल्यधरा नराः ॥६॥ +नोत्सवाः संप्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे । सा हि नूनं मम भ्रात्रा पुरस्यास्य द्युतिर्गता ॥७॥

टीका–स्निग्ध गम्भीर ध्वनि वाले रथ से चलता हुआ महायशस्वी प्रभु भरत जल्दी अयोध्या में प्रविष्ट हुआ ।१। दशरथसुत श्रीमान् भरत रथ पर बैठा हुआ रथ को चलाते हुए सारथि से यह वाक्य बोला ।२। क्या अयोध्या में पहले की तरह गम्भीर, मूर्छनावाली, बाजों की ध्वनि सुनाई नहीं देती है ।३। तथा यानों की प्रवर ध्वनि, घोड़ों की स्निग्ध हिनहनाहट, मत्त हाथियों की चिंघाड़, और रथों की बड़ी घुंकार ।४। राम के विवासन में इस पुरी में सुनाई नहीं देती, न अगर चन्दन के गन्ध हैं, न बहुमूल्य मालाएं

हैं ।८। राम के चले जाने पर युवक पुरुष संतप्त हुए भोग नहीं भोगते हैं, न विचित्र मालाओं का धारण किये पुरुष बाहर सैर को जाते हैं ।६। राम के शोक से पीड़ित पुर में उत्सव भी नहीं होरहे हैं, निःसन्देह इस पुरकी शोभा मेरे भाईके साथही चलीगई है

मूल—कदा नु खलु मे भ्राता महोत्सव इवागतः। जनयिष्यत्ययोध्यायां हर्षं ग्रीष्म इवाम्बुदः ॥८॥ तरुणैश्चारुवेषैश्च नरैरुन्नतगामिभिः। संपतद्भिरयोध्यायां नाभिभान्ति महापथाः ॥९॥ इति ब्रुवन्सारथिना दुःखितो भरतस्तदा। अयोध्यां संप्रविश्यैव विवेश वसतिं पितुः ॥

टीका—कब मेरा भाई महोत्सव की तरह आया हुआ फिर अयोध्या में हर्ष उत्पन्न करेगा ॥८॥ सुन्दर वेषों वाले मिलकर चलते हुए युवा पुरुषों से अयोध्या के महापथ शुभायमान नहीं है ॥९॥ इस प्रकार दुःखित हुआ भरत सारथि से बात करता हुआ अयोध्या में प्रवेश कर पिता के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ ॥१०॥ जो कि शेर से हीन गुफा की तरह उस नरेन्द्र से हीन है ॥११॥

सर्ग ८८ (व० ११५) भरत का राज्य व्यवहार।

मूल—ततो निक्षिप्य मातृस्ता अयोध्यायां दृढव्रतः। भरतः शोकसंतप्तो गुरूनिदमथाब्रवीत् ॥१॥ नन्दिग्रामं गमिष्यामि सर्वानामन्त्रयेऽत्र वः। तत्र दुःखमिदं सर्वं सहिष्ये राघवं विना ॥ २ ॥ गतश्चाहो दिवं राजा वनस्थः स गुरुर्मम। रामं प्रतीक्षे राज्याय स हि राजा महायशाः ॥३॥ एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं भरतस्य महात्मनः। अब्रुवन्मन्त्रिणः सर्वे वसिष्ठश्च पुरोहितः ॥४॥ सुभृशं श्लाघनीयं च यदुक्तं भरत त्वया। वचनं भ्रातृवात्सल्यादनुरूपं तवैव तत् ॥ ५ ॥ रथस्थः स तु धर्मात्मा भरतो भ्रातृवत्सलः। नन्दिग्रामं ययौतूर्णं शिरस्याधाय पादुके ॥ ६ ॥ भरतस्तु ततः क्षिप्रं नन्दिग्रामं प्रविश्य सः। अवतीर्य रथात्तूर्णं गुरूनिदमभाषत ॥७॥

टीका—तब वह माताओं को अयोध्या में छोड़कर शोक से संतप्त दृढ़व्रत भरत गुरुओं से यह बोला ॥१॥ नन्दिग्राम को जाऊंगा, सब से आज्ञा मांगता हूं, वहां इस सारे दुःख को राम के बिना सहूंगा ॥ २ ॥ राजा स्वर्ग को चला गया, और वह मेरा गुरु वन में स्थित है, मैं राज्य के लिये राम की प्रतीक्षा करूंगा, वही महायशस्वी राजा है ॥३॥ महात्मा भरत के इस शुभ वाक्य को सुनकर सारे मन्त्री और पुरोहित वसिष्ठ बोला ॥ ४ ॥ भाई के प्रेम से तूने यह अतीव श्लाघनीय वचन कहा है, यह तेरे ही योग्य है ॥५॥ तब धर्मात्मा भरत सिरपर पादुकों को रखकर जल्दी नन्दीग्राम को गया ॥६॥ नन्दीग्राम में प्रवेश कर जल्दी रथ से उतरते ही गुरुओं से यह वाक्य बोला ॥ ७ ॥

मूल—एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम् । योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते ॥८॥ भरतः शिरसा कृत्वा संन्यासं पादुके ततः। अब्रवीद् दुःखसंतप्तः सर्वं प्रकृतिमण्डलम् ॥९॥+छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाविमौ मतौ । आभ्यां राज्ये स्थितो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम ॥१०॥ भ्रात्रा तु मयि संन्यासो निक्षिप्तः सौहृदादयम् । तमिमं पालयिष्यामि राघवागमनं प्रति ॥ ११ ॥ राघवाय च संन्यासं दत्वेमे वरपादुके । राज्यं चेदमयोध्यायां धूतपापो भवाम्यहम् ॥१२॥+स वल्कलजटाधारी मुनिवेषधरःप्रभुः। नन्दिग्रामेऽवसद्वीरःससैन्यो भरतस्तदा ॥१३॥+ततस्तु भरतः श्रीमानभिषिच्यार्यपादुके । तदधीनस्तदा राज्यं कारयामास सर्वदा ॥१४॥ तदा हि यत्कार्यमुपैति किंचिदुपायनं चोपहृतं महार्हम्।स पादुकाभ्यां प्रथमं निवेद्य चकार पश्चाद्भरतो यथावत् ॥१५॥

टीका—यह उत्तम राज्य मुझे भाई ने अमानत दिया है, उसके योग क्षेम के चलानेवाले यह सुवर्णभूषित पादुक हैं ॥८॥ फिर पादुकों

की अमानत को सिर पर रखकर दुःख से सन्तप्त हुआ सारे प्रकृति मण्डल से बोला ।९। छत्र इन पर धारण करो, यह आर्यपाद की जगह हैं, मेरे गुरु का धर्म (व्यवहार) इन पादुकों से राज्य पर स्थित है ।१०। भाई ने सौहार्द से यह मुझे अमानत दी है, राम के आने तक मैं इसका पालन करूंगा ।११। यह श्रेष्ठ पादुक और अयोध्या के राज्य की अमानत वापिस देकर मैं दूर हुए पापवाला हूंगा ।१२। वह धीर प्रभु भरत जटा वकले धार मुनिवेषधारी हो सेना समेत नन्दीग्राम में रहा । १३। तब श्रीमान् भरत आर्यपादुकों को अभिषेक कर उनके अधीन हो राज्य करता भया ।१४। जो कोई राज्यकार्य उपस्थित होता, वा बहुमूल्य भेंट आती, वह पहिले पादुकों को निवेदन कर पीछे भरत यथायोग्य करता ।१५।

सर्ग ८८ (अ० ११७ राम की चित्रकूट से आगे यात्रा-अत्रि का आश्रम

मूल—राघवस्तत्रपयातेषु सर्वेष्वनुविचिन्तयन्। न तत्रारोचयद्वासं कारणैर्बहुभिस्तदा ॥ १ ॥ इह मे भरतो दृष्टो मातरश्च सनागराः । सा च मे स्मृतिरन्वेति तान्नित्यमनुशोचतः ॥ २ ॥ तस्मादन्यत्र गच्छाम इति संचिन्त्य राघवः। प्रातिष्ठत स वैदेह्या लक्ष्मणेन च संगतः ॥३॥ सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं ववन्दे महायशाः । तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत ॥४॥ स्वयमातिथ्यमादिश्य सर्वमस्य सुसंस्कृतम् । सौमित्रिं च महाभागं सीतां च समसान्त्वयत् ॥५॥

टीका—सब के चले जाने पर राम ने सोचा, और, कई कारणों से वहां रहना पसन्द न किया ॥१॥ यहां मैंने भरत को, माताओं को, और नगर के लोगों को देखा है, जैसा कि वह सब मेरे लिये शोक में थे, वह स्मृति मुझे भूलती नहीं है ॥ २ ॥ इसलिये और कहीं चलें, यह सोचकर राम सीता और लक्ष्मण के साथ प्रस्थित हुआ ॥ ३ ॥ और उस महायशस्वी ने अत्रि के आश्रम में पहुंच

कर उसको प्रणाम किया, भगवान् अत्रि ने भी उसको पुत्रवत् स्वीकार किया ॥४॥ स्वयं (यह अर्घ्य लीजिये इत्यादि) बतलाकर बड़े आदर से इसका पूरा आतिथ्य किया, और महाभाग लक्ष्मण और सीता को भी तसल्ली दी ॥ ५ ॥

मूल-अनसूयां महाभागां तापसीं धर्मचारिणीम्। प्रतिगृह्णीष्व वैदेही-मब्रवीदृषिसत्तमः ॥४॥ तां तु सीता महाभागामनसूयां पतिव्रताम्। अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत् ॥ ७ ॥ ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वा तां धर्मचारिणीम्। सान्त्वयन्त्यब्रवीद् वृद्धा दिष्ट्या धर्ममवेक्षसे ॥८॥ +त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि। अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ॥९॥+नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः। यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥१०॥+दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः। स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥११॥ +तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी। भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि ॥१२॥

टीका—और उस ऋषिवर ने भाग्यवाली तपस्विनी धर्मचारिणी (अपनी पत्नी)अनुसूया को कहा, कि सीता को स्वीकार कर ॥६॥ उस भाग्यवती पतिव्रता अनसूया को सीता ने सावधानी से अपना नाम बोलते हुए अभिवादन किया॥७॥तब(पति के समान-)धर्म का अनुष्ठान करती हुई भाग्यवाली उस सीता को तसल्ली देती हुई वह वृद्धा बोली, भाग्य से तेरी दृष्टि धर्म पर है॥८॥हे सीते! बन्धुओं को छोड़ और हे मानिनि मान की वृद्धि (मैं राजसुता कैसे बन को जाऊं इस मान) को छोड़कर तू भाग्य से राम के पीछे चली है, जब वह वनवास में अवरुद्ध (मजबूर) हुआ है ॥ ९ ॥ नगर में स्थित हो वा बन में स्थित हो, अनुकूल हो वा प्रतिकूल हो, जिन

स्त्रियों को भर्ता प्यारा है, उनके बड़े फलवाले लोक होते हैं ॥ १०॥ कठोर स्वभाव वाला हो, अपनी मरज़ी पर चलनेवाला वा धनों से रहित हो, तथापि आर्यस्वभाववाली स्त्रियों को पति परम देवता होता है ॥ ११ ॥ सो इसप्रकार तू इस (राम) के अनुव्रता होकर पतिप्रधान हो मर्यादा का पालन करती हुई अपने भर्ता की सहधर्मचारिणी हो, इस से तू यश को और धर्म को प्राप्त होगी ॥१२॥

सर्ग१००(व०११८,११९)सीता का सम्मान और अत्रि के आश्रम से यात्रा

मूल—सा त्वेवमुक्ता वैदेही त्वनसूयानसूयया । प्रतिपूज्य वचो मन्दं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ नैतदाश्चर्यमार्यायां यन्मां त्वमनुभाषसे । विदितं तु ममाप्येतद्यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥२॥ आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम् । समाहितं हि मे श्वश्र्वा हृदये तत्स्थिरं मम ॥ ३ ॥ पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसंनिधौ । अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥४॥ न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि । पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते ॥

टीका—असूया रहित सीता को अनसूया ने ऐसा कहा, तो वह उस के वचन को आदर देकर धीरे से यों बोली ।१। आर्या (आप) के लिये यह आश्चर्य नहीं, जो आप मुझे शिक्षा देती हैं, किन्तु यह मुझे भी विदित है, कि नारी का पति गुरु होता है ।२। इस प्रकार के भयानक निर्जन वन को आते समय जो मुझे सास ने उपदेश दिया है, वह भी मेरे हृदय में स्थिर है । ३ । और इस से भी पहले हाथ पकड़ते समय जो मेरी माता ने मुझे उपदेश दिया है, वह भी मुझे याद है ।४। वह सब मुझे भूला नहीं, जो कुछ हे ब्रह्मचारिणि अपनों ने बहुत वाक्यों द्वारा मुझे बतलाया है, कि पतिसेवा से बढ़कर स्त्री के लिये कोई और तप नहीं है ॥

मूल—सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते । तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम् ॥ ६ ॥ ततोऽनसूया संहृष्टा श्रुत्वोक्तं

सीतया वचः । शिरस्याघ्राय चोवाच मैथिलीं हर्षयन्त्युत ॥ ७ ॥ उपपन्नं च युक्तं च वचनं तव मैथिलि । प्रीता चास्म्युचितां सीते करवाणि प्रियं च किम् ॥ ८ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मिता मन्दविस्मया । कृतमित्यब्रवीत्सीता तपोबलसमन्विताम् ॥९॥ सा त्वेवमुक्ता धर्मज्ञा तया प्रीततराभवत् । सफलं च प्रहर्षं ते हन्त सीते करोम्यहम् ॥१०॥ इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च । अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम् ॥ ११ ॥ मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत् । अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥ १२॥ सा वस्त्रमङ्गरागं च भूषणानि स्रजस्तथा । मैथिली प्रतिजग्राह प्रीतिदानमनुत्तमम् ॥१३॥ सा तदा समलंकृत्य सीता सुरसुतोपमा । प्रणम्य शिरसा पादौ रामं त्वभिमुखी ययौ ॥१४॥ न्यवेदयत्ततः सर्वं सीता रामाय मैथिली । प्रीतिदानं तपस्विन्या वसनाभरण स्रजाम् ॥१५॥ प्रहृष्टस्त्वभवद्रामो लक्ष्मणश्च महारथः । मैथिल्याः सत्क्रियां दृष्ट्वा मानुषेषु सुदुर्लभाम् ॥१६॥ ततः स शर्वरीं प्रीतः पुण्यां शशिनिभाननाम् । अर्चितस्तापसैः सर्वैरुवास रघुनन्दनः ॥

टीका—सावित्री पति की सेवा करके स्वर्ग में पूजित हुई है, और वैसे बर्तावबाली तू भी पतिसेवा से स्वर्ग को हस्तगत किये हुए है ।६। तब सीता के कहे वचन को सुनकर प्रसन्न हुई अनसूया सीता को सिर पर चूम कर उसे प्रसन्न करती हुई बोली ।७। हे मैथिलि तेरा वचन ठीक है, और युक्त है, मैं बड़ी प्रसन्न हुई हूं, हे सीते कहो तेरा क्या प्रिय करूं ।८। उसके वचन को सुनकर सीता हैरान हुई (अहो तप का प्रभाव कि जिससे यह राजाओं को भी देने के लिये तय्यार होते हैं इससे हैरान हुई) और मन्द मन्द मुस्कराती हुई सीता उस तपोबलवाली (अनसूया) से बोली, (आपके अनुग्रह से ही सब कुछ) कियागया है ।९। पर जब उसने उस धर्मज्ञा को ऐसे कहा, तो वह और भी अधिक प्रसन्न हुई, और

बोली इस महर्ष को हे सीते मैं सफल करती हूं।१०।यह दिव्य सुन्दर माला वस्त्र और भूषण और यह अङ्गराग (अङ्गों को रङ्गदेने वाला) और यह बहुमूल्य (सुगन्धित) अनुलेपन ।११। मुझ से दिया हे सीते तेरे अङ्गों को शोभा दे, यह सदा तेरे योग्य और सदा नया होगा ।१२। सीता ने वह वस्त्र अङ्गराग भूषण और मालाएं जो कि सर्वोत्तम प्रीतिदान था, स्वीकार किया । १३ । और सज करके देवकन्या के तुल्य सीता सिर से उसके पाओं पर प्रणाम करके राम के अभिमुख गई।१४।तब सीता ने तपस्विनी का दिया वस्त्र भूषण और मालाओं का प्रीतिदान सारा राम को निवेदन किया ।१५। सीता के इतने बड़े मान को देखकर जो मनुष्यों में बहुत दुर्लभ है राम और महारथी लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए।१६। तब उन सब तपस्वियों से पूजा हुआ राम प्रसन्न हुआ उस चन्द्रतुल्य शोभा वाली पवित्र रात को वहां रहा ।१७।

मूल–तस्यां राज्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान् । आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान् वनगोचरान् ॥१८॥तावूचुस्ते वनचरास्तापसा धर्मचारिणः । वनस्य तस्य संचारं राक्षसैः समभिप्लुतम् ॥१९॥ एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वने । अनेन तु वनं दुर्गं गन्तुं राघव ते क्षमम् ॥२०॥ इतीरितः प्राञ्जलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैः कृतस्वस्त्ययनः परंतपः । वनं सभार्यः प्रविवेश राघवः सलक्ष्मणः सूर्य इवाभ्रमण्डलम् ॥२१॥

टीका–और रात के बीतने पर स्नान करके अग्निहोत्र कर चुके हुए उन वनवासी तपस्वियों से वह दोनों नरश्रेष्ठ आज्ञा मांगते भए ।१८।उन वनचारी धर्मचारी तपस्वियों ने उनको बतलाया, कि इस वन का घूमना राक्षसों के उपद्रवों से खाली नहीं ।१९। यह मार्ग है जिसमें महर्षि लोग वनमें फल लाने जाते हैं इस मार्ग से हे राघव इस दुर्गम वन में आपको जाना युक्त है ।२०। इस प्रकार तपस्वी ब्राह्मणों ने उसे कहा और हाथ जोड़कर उसके लिये स्वस्त्ययन किया, तब वह परन्तप राम पत्नी और लक्ष्मण के साहित मेघमण्डल में सूर्य की तरह(उस घने) वन में प्रविष्ट हुआ ।

॥ अयोध्या काण्ड समाप्त हुआ ॥

अरण्य-काण्ड ।

सर्ग १ (व० १) दण्डक वन में पहली रात और ऋषियों के दर्शन ।

मूल—प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् । रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥१॥ शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा । मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैः समावृतम् ॥२॥ समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम् । आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्वृतम् ॥ ३ ॥ फलमूलाशनैर्दान्तैः चीरकृष्णाजिनाम्बरैः । सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ४ ॥ पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः । तद्ब्रह्मभवनप्रख्यं ब्रह्मघोषनिनादितम्॥५॥ ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् । तद्दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम् ॥ ६ ॥ अभ्यगच्छन्महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः । दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः ॥ ७ ॥

टीका—बड़े जङ्गल दण्डकारण्य में प्रविष्ट होकर न दबने वाले राम ने तपस्वियों का आश्रम समूह देखा ॥१॥ सदा साफ सुथरे सजे हुए अङ्गनों वाला, सब जीवों के शरण (पनाह) लेने योग्य, बहुत से मृगों से भरा हुआ और पक्षी समूहों से घिरा हुआ ॥२॥ समिधाओं से, जल के कलशों से और फल मूल से सुशोभित, स्वादु फल वाले पवित्र जङ्गली महावृक्षों से युक्त ॥ ३ ॥ फल मूल के खानेवाले, अपने आपको बस में किये हुए चीर और काले मृगान के वस्त्रों वाले सूर्य और अग्नि के तुल्य बूढ़े मुनियों से युक्त ॥ ४ ॥ नियत आहारवाले पुण्यआत्मा परम ऋषियों से युक्त वह आश्रम ब्रह्मभवन के तुल्य वेद की ध्वनि से गूंजता हुआ ॥५॥ वेद के जाननेवाले महाभाग ब्राह्मणों से शोभित उस तपस्वियों के आश्रम मण्डल को देखकर महातेजस्वी श्रीमान् राम धनुष को नीचा करके उसमें प्रविष्ट

हुआ, दिव्य ज्ञान से युक्त उन महर्षियों ने जूं ही राम को देखा ॥६॥,७

मूल—मङ्गलानि प्रयुञ्जानाः प्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः॥८॥रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् । ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः ॥९॥वैदेहीं लक्ष्मणं रामं नेत्रैरनिमिषैरिव । आश्चर्यभूतान्ददृशुः सर्वे ते वनवासिनः ॥ १० ॥ अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रताः । अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन् ॥ ११ ॥ मङ्गलानि प्रयुञ्जाना मुदा परमया युताः । मूलंपुष्पं फलं सर्वमाश्रमं च महात्मनः॥१२॥ निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ते प्राञ्जलयोऽब्रुवन् । नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ॥१३॥

टीका—तो (मन्त्रों से) आशीर्वाद बोलते हुए उन दृढ़ व्रतियों ने उनको स्वीकार किया ॥८॥ उन्होंने हैरान होकर वनवासी राम के अङ्गों की संगठन, लावण्य, कोमलपन, और सुन्दर वेष देखा ॥९॥ वह वनवासी सारे सीता को लक्ष्मण को राम को नेत्र झपकने के बिना आश्चर्य की तरह देखते भए ॥ १० ॥ और सब प्राणियों के हित में रते हुए उन महाभागों ने यहां पर्णशाला में इस अतिथि राघव को ठहराया ॥११॥ और आशीर्वाद देते हुए परम हर्ष से युक्त हो मूल पुष्प फल और सारा आश्रम उस महात्मा को ॥१२॥ निवेदन करके वह धर्मज्ञ हाथ जोडकर बोले, चाहे नगर में स्थित वा वन में स्थित आप हमारे राजा हैं ॥१३॥

सर्ग २ (व०२-४) विराध का वध ।

मूल—कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति । आमन्त्र्य स मुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥१॥ सीतया सह काकुत्स्थस्तस्मिन्घोरमृगायुते । ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम् ॥२॥ वसानं चर्म वैयाघ्रं वसार्द्रं रुधिरोक्षितम् । त्रासनं सर्वभूतानां व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥३॥ स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम् ।

अङ्कनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाब्रवीत् ॥ ४ ॥ कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह । अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ ।

टीका—आतिथ्य सत्कार पाकर अब सूर्योदय के समय राम उन सब मुनियों से आज्ञा ले वन में ही प्रविष्ट हुए ।१। सीता के साथ राम ने भयंकर मृगों से युक्त उस वन में एक बड़ी ध्वनि वाला पर्वत की चोटीकी तरह ऊंचा पुरुषभक्षी (राक्षस) देखा ।२। बाघ की खाल पहने हुए, चर्बी और रुधिर से छिड़का हुआ मुख फाड़कर सामने आते हुए काल की तरह सब भूतों का डरानेवाला ।३। वह भयंकर नाद करके मानों पृथिवी को कंपाता हुआ सीताको कमर से उठा लेजाकर*पीछे हटकर बोला ।४। कैसे तुम दोनों तपस्वी बनकर एक स्त्री के साथ रहते हो, अधर्मचारी पापी तुम कौन हो जो मुनियों पर बट्टा लगा रहे हो । ५ ।

मूल—अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः । चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन् ॥६॥ इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति । युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे ॥७॥ श्रुत्वा सगर्वितं वाक्यं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा । सीता प्रवेपितो-द्वेगात्प्रवाते कदली यथा ॥ ८ ॥ ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान् । सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह ॥९॥ स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः । अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्ध-स्तदा रामं सलक्ष्मणम् ॥१०॥ तच्छूलं वज्रसंकाशं गगने ज्वल-नोपमम् । द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः ११॥

टीका—मैं विराध नाम राक्षस इस दुर्गम वन में सदा ऋषियों के मांस खाता हुआ शस्त्र सहित विचरता हूं ॥६॥ यह सुमध्या नारी मेरी भर्या होगी, और तुम दोनोंपापियों का मैं युद्ध में रुधिर पिउं-

*दण्डक में प्रवेश करते ही सीता को उठा लेजाने का निमित्त हुआ है

गा ॥७॥ इस गर्ववाले वाक्य को सुनकर जनकात्मजा सीता प्रबल वायु में कदली की तरह बड़े वेग से कांपने लगी ॥८॥ इधर राम ने चिल्ला चढाकर और उसमें तीक्ष्ण तीर जोडकर तेजी से राक्षस पर वार किया ॥९॥ तीरों से विंधा हुआ वह राक्षस सीता को छोड़कर त्रिशूल उठाकर क्रुद्ध हुआ राम और लक्ष्मण की ओर दौड़ा ॥१०॥ आकाश में अग्नि के तुल्य चमकते हुए वज्र तुल्य उसके त्रिशूल को शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ राम ने दो तीरों से टुकड़े कर दिया ॥

मूल—स वध्यमानः सुभृशं भुजाभ्यां परिगृह्य तौ । अप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत ॥१२॥ तस्य रौद्रस्य सौमित्रिः सव्यं बाहुं बभञ्ज ह । रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य रक्षसः ॥१३॥ स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्छितः । धरण्यां मेघसंकाशो वज्र भिन्न इवाचलः ॥१४॥ स बिद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः । इदं प्रोवाच काकुत्स्थं विराधः पुरुषर्षभम् ॥१५॥ हतोऽहं पुरुषव्याघ्र शक्रतुल्यबलेन वै । अवटे चापि मां राम निक्षिप्य कुशली व्रज ॥१६॥ रक्षसां गतसत्त्वानामेष धर्मः सनातनः । अवटे ये निधीयन्ते तेषां लोकाः सनातनाः ॥१७॥

टीका—अब उन दोनों अप्रकम्प्य नरश्रेष्ठों को दोनों भुजाओं से उठाकर भागने लगा ।१२। तब उस भयंकरमूर्ति राक्षस की बाईं भुजा को लक्ष्मण ने और दाईं को राम ने ज़ोर के साथ तोड़ डाला ।१३। भुजाओं के टूटजाने से घबराकर मूर्छित हुआ वह काला मेघ पृथिवी पर गिरा, जिस तरह वज्र से कटा हुआ पर्वत ।१४। बहुत बाणों से बींधा हुआ और तलवारों से क्षत (ज़खमी) हुआ विराध पुरुषश्रेष्ठ राम से यह बोला ।१५। हे पुरुषश्रेष्ठ इन्द्रतुल्य बलवाले तूने मुझे मार दिया है, अब हे राम मुझे गढ़े में फैंककर कुशल से जा ।१६। मरे हुए राक्षसों की यह सनातन मर्यादा है, जो गढे में डाले जाते हैं, उनके लोक सनातन हैं ।१७।

मूल—एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थं विराधः शरपीडितः। बभूव स्वर्गसंप्राप्तो न्यस्तदेहो महाबलः ॥१८॥ तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं लक्ष्मणं व्यादिदेश ह। वनेऽस्मिन्सुमहाञ्श्वभ्रः खन्यतां रौद्रकर्मणः॥१९॥ प्रहृष्टरूपाविव रामलक्ष्मणौ विराधमुर्व्यां प्रदरे निपात्य तम्। ननन्दतुर्वीतभयौ महावने दिवि स्थितौ चन्द्रदिवाकराविव ॥ २० ॥

टीका—राम को यह कहकर तीरों से पीड़ित हुआ महाबली विराध देह को अमानत छोड़ स्वर्ग को प्राप्त हुआ।१८। यह सुन राम ने लक्ष्मण को कहा, इस वन में इस भयंकर कर्मोंवाले का गढ़ा खोद।१९। अब प्रसन्न रूप हुए राम लक्ष्मण उस विराधको पृथिवी में गढ़े के अन्दर डालकर आकाश में स्थित सूर्य चन्द्र की तरह वह दोनों भयरहित हुए उस महावन में आनन्द मनाते भए।२०।

सर्ग ५ (व० ५,६) शरभंग के आश्रय में ऋषियों से मेल ।

मूल—हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने। आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह ॥१॥ तस्य पादौ च संगृह्य रामः सीता च लक्ष्मणः। निषेदुस्तदनुज्ञाता लब्धवासा निमन्त्रिताः ॥२॥ अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः। ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥३॥ त्वयाहं पुरुषव्याघ्र धार्मिकेन महात्मना। समागम्य गमिष्यामि त्रिदिवं चावरं परम् ॥ ४॥ ततोऽग्निं स समाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत्। शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम् ॥ ५ ॥

टीका—उस भयंकर बलवाले विराध राक्षस को बन में मारकर राम शरभङ्ग के आश्रमको गया ॥१॥ उसके पाओं पकड़कर राम लक्ष्मण और सीता उससे आज्ञा दिए हुए बैठ गये, ऋषि ने उन को वास दिया और भोजन दिया।२। (और कहा) हे नरश्रेष्ठ मैं आज के दिन को निकट जानकर तुझ प्यारे अतिथि के दर्शन किये बिना ब्रह्मलोक को नहीं जाता हूं।३। सो हे पुरुषश्रेष्ठ तुझ

महात्मा धर्मात्मा के साथ समागम करके अब वरले और परले द्यौलोक को जाऊंगा।४। तब वह अग्नि जलाकर और घी में मन्त्रवत होम करके महातेजस्वी शरभङ्ग अग्नि में प्रविष्ट होगया। ५।

मूल—शरभङ्गे दिवं प्राप्ते मुनिसंघाः समागताः। अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम्॥६॥ सर्वे ब्राह्मया श्रिया युक्ता दृढयोगसमाहिताः। ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसंघाः समागताः॥७॥ यत्करोति परमं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः। तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः॥८॥ सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्। त्वंनाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्हन्यते भृशम्॥९॥ पम्पानदीनिवासानामनुमन्दाकिनीमपि। चित्रकूटालयानां च क्रियते कदनं महत्॥१०॥ एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्। क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः॥११॥ ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः। परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः॥१२॥ एतच्छ्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानांतपस्विनाम्। इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः॥१३॥ नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम्। केवलेन स्वकार्येण प्रवेष्टव्यं वनं मया॥१४॥ विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम्। पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोहमिदं वनम्॥१५॥ भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया। तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः।

टीका—शरभङ्ग के स्वर्ग को प्राप्त होने पर मुनिसंघ वहां इकट्ठे हुए और जलते हुए तेजवाले काकुत्स्थवंशी राम की शरण आए।६। सारे ब्राह्मी लक्ष्मी से युक्त, दृढ़योग से एकाग्रचित वाले ऋषिसंघ मिलकर परम धर्मज्ञ राम से बोले।७। जो मूल फल खाकर मुनिजन परम धर्म करते हैं, उसमें धर्म से प्रजा की रक्षा करते हुए राजा का चौथा भाग होता है।८। सो यह वानप्रस्थियों का बड़ा समूह जिसमें अधिकतर ब्राह्मण हैं, आप जैसे नाथ की विद्यमानता

में अनाथों की तरह राक्षसों से अत्यन्त पीड़ित किया जारहा है ।९। पम्पा नदी पर रहनेवाले, मन्दाकिनी पर रहने वाले और चित्रकूट में रहने वाले तपस्वियों को राक्षस बहुत तंग करते हैं ।१०। इसतरह वन में भीमकर्मा राक्षसों से किया हुआ तपस्वियों का इतना घोर अनादर हम नहीं सहार सकते । ११। सो तुझ शरण के योग्य को शरण के लिये प्राप्त हुए हैं, हे राम राक्षसों से मारे जाते हुओं को बचा ।१२। तपस्वी और ऋषियों के इस वचन को सुनकर धर्मात्मा राम उन सारे तपस्वियों से यह वचन बोला ।१३। मुझे आप इसप्रकार (प्रार्थना रूप से) कहने योग्य नहीं है, तपस्वियों से मैं आज्ञा दिये जाने योग्य हूं, केवल अपने कार्य से मुझे वन में प्रवेश करना है, (तुम्हारा कार्य मेरा अपना ही कार्य है) ।१४। राक्षसों से आप के इस अनादर को मिटाने के लिये पिता की आज्ञा पालन करता हुआ इस वन में प्रविष्ट हुआ हूं ।१५। आपकी अर्थ सिद्धि के लिये मैं अचानक ही (इधर) आया हूं, सो वन में मेरा यह वास बहुत फलवाला होगा । १६ ।

सर्ग ४ (व० ७,८)सुतीक्ष्णमुनि के आश्रम में वास ।

मुल–रामस्तु सहितो भ्रात्रा सीतया च परंतपः ! सुतीक्ष्णस्याश्रमपदं जगाम सह तैर्द्विजैः ॥१॥ प्रविष्टस्तु वनं घोरं बहुपुष्पफलद्रुमः । ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम् ॥२ ॥ तत्रतापसमासीनं मलपङ्कजधारिणम् । रामः सुतीक्ष्णं विधिवत्तपोधनमभाषत ॥३॥ रामोऽहमस्मि भगवन्भवन्तं द्रष्टुमागतः । तन्माभिवद धर्मज्ञ महर्षे सत्यविक्रम ॥४॥ स निरीक्ष्य ततो धीरो रामं धर्मभृतां वरम् । समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत ॥५ ॥ स्वागतं ते रघुश्रेष्ठ राम सत्यभृतां वर । आश्रमोऽयं त्वयाक्रान्तः सनाथ इव सांप्रतम् ॥ ६॥ अन्वास्य पश्चिमां संध्यां तत्र वासमकल्पयत् । सुतीक्ष्णस्याश्रमे

रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च ॥७॥ रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः। परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत ॥८॥ उत्थाय च यथाकालं राघवः सह सीतया। उपास्पृशत सुशीतेन तोयेनोत्पलगन्धिना ॥९॥ उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषः। सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन् ॥१०॥ सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः। आपृच्छामः प्रयास्यामो मुनयस्त्वरयन्ति नः ॥ ११ ॥

टीका--अब परन्तप राम भाई के सीता के और उन द्विजों के साथ सुतीक्ष्ण के आश्रमपद को गया ॥१॥ और बहुत पुष्प फलों के वृक्षों वाले घोर बन में प्रविष्ट होकर एकान्त में चीरमाला से सजा हुआ एक आश्रम देखा ॥२॥ वहां पद्मासन लगाकर बैठे हुए तपस्वी सुतीक्ष्ण के पास विधिवत् जाकर राम यह बोला ॥३॥ हे भगवन् मैं राम हूं, आपके दर्शन के लिये आया हूं, सो हे धर्म के जानने वाले सच्चे पराक्रमवाले महर्षि मुझ से बात कीजिये (प्रायः यह ऋषि योग में लगा हुआ चुप रहा करता था, इसलिये यह प्रार्थना की है) ॥४॥ तब वह ज्ञानी धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम को देखकर भुजाओं से आलिङ्गन करके यह वचन बोला ॥५॥ हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ हे रघु श्रेष्ठ तेरा आना शुभ हो, आपके पदार्पण से यह आश्रम अब सनाथ हुआ है ॥६॥ अब पश्चिम संध्या उपासकर वहां सुतीक्ष्ण के रम्य आश्रम में सीता और लक्ष्मण के साथ वास किया ॥७॥ राम लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण से पूजित हुआ वहां रात बिताकर प्रभात के समय उठा ॥८॥ ठीक समय पर उठकर राम ने सीता सहित कमल की गन्धवाले ठण्डे जल से स्नान सन्ध्या किया ॥९॥ और तब वह तीनों निष्पाप सूर्य को उदय होता देखकर सुतीक्ष्ण के पास जाकर यह मधुर वचन बोले ॥१०॥ भगवन् आप जो हमारे पूज्य हैं, उनसे पूजित हुए हम आनन्द से रात रहे

हैं, अब आज्ञा मांगते हैं, जाएंगे, मुनि हम जल्दी करा रहे हैं ॥११॥

मूल—त्वरामहे वयं द्रष्टुं कृत्स्नमाश्रममण्डलम् । ऋषीणां पुण्यशीलानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥१२॥ अभ्यनुज्ञातुमिच्छामः सहैभिर्मुनिपुंगवैः । अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते ॥१३॥ तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः । ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः ॥१४॥ तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुंगवः । गाढमाश्लिष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥ अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह । सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया ॥१६॥ पश्याश्रमपदं रम्यं दण्डकारण्यवासिनाम् । एषां तपस्विनां वीर तपसा भावितात्मनाम् ॥१७॥ सुप्राज्यफलमूलानि पुष्पितानि वनानि च । प्रशान्तमृगयूथानि शान्तपक्षिगणानि च ॥१८॥ फुल्लपङ्कजखण्डानि प्रसन्नसलिलानि च । कारण्डवविकीर्णानि तटाकानि सरांसि च ॥१९

टीका—और दण्डकारण्य में रहनेवाले पुण्य शील ऋषियों के इस सम्पूर्ण आश्रम मण्डल को देखने की हमारी भी बड़ी रुचि है ॥१२॥ इन श्रेष्ठ मुनियों के सहित हम आज्ञा मांगते हैं, जब तक असह्य धूपवाला सूर्य बहुत नहीं चमकता है ॥१३॥ तब तक हम चलना चाहते हैं, यह कहकर लक्ष्मण और सीता समेत रामने मुनि के चरण वन्दन किये ॥१४॥ चरणों को छूते हुए दोनों भाइयों को उठाकर मुनिश्रेष्ठ ने गाढ़ आलिङ्गन करके स्नेह भरा यह बचन कहा ॥१५॥ हे राम लक्ष्मण के सहित और छाया की तरह साथ चलती हुई सीता के साथ तेरा मार्ग निरुपद्रव हो ॥१६॥ तप से शुद्धात्मा दण्डकारण्य वासी इन तपस्वियों के हे वीर पूज्य आश्रमों को देख ॥१७॥ जिनमें बहुत फल फूल हैं, फूले हुए बन हैं, उत्तम मृगयूथ हैं, और शान्त पक्षिगण हैं ॥ १८ ॥ फूले हुए कमल समूह हैं, निर्मल जल हैं, और तालाब और सरोवर मुरगावियों से व्याप्त हैं ॥ १९ ॥

मूल—द्रक्ष्यसे दृष्टिरम्याणि गिरिप्रस्रवणानि च । रमणीयान्यरण्यानि मयूराभिरुतानि च ॥२०॥ गम्यतां वत्स सौमित्रे भवानपि च गच्छतु। आगन्तव्यं च ते दृष्ट्वा पुनरेवाश्रमं मम ॥२१॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः । प्रदक्षिणं मुनिं कृत्वा प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥२२ ततः शुभतरे तूणी धनुषी चायतेक्षणा । ददौ सीता तयोर्भ्रात्रोः खड्गौ च विमलौ ततः ॥२३॥ आबध्य च शुभे तूणी चापे चादाय सस्वनं । निष्क्रान्तावाश्रमाद्गन्तुमुभौ तौ रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

टीका—दृष्टि को लुभानेवाले पर्वतों के झरने और,रमणीय वनों को देखोगे और मोरों के शब्द सुनोगे ।२। जाइये बेटा और लक्ष्मण तुम भी जाओ, यह सब दृश्य देखकर फिर इस आश्रम में आना ।२१। ऐसा कहने पर तथास्तु कहकर लक्ष्मण समेत राम मुनि की प्रदक्षिणा करके चलने को तय्यार हुआ ।२२। तब विशाल नेत्रों-वाली सीता ने शुभतर दोनों भत्थे (तर्कश) और दोनों धनुष और चमकती हुई दोनों तलवारें उन दोनों भाइयों को दीं ।२३। और राम लक्ष्मण उन दोनों भत्थों और धनुषों को बान्धकर चलने के लिये आश्रम से बाहिर निकले । २४ ॥

सर्ग ९ (व० ९) सीता का हित से भरा उपदेश ।

मूल—सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम् । हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥ +त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत । मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ ॥२॥ +परदा-राभिगमनं विना वैरं च रौद्रता । मिथ्या वाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव ॥३॥+कुतोऽभिरूपणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम् । तव नास्ति मनुष्येन्द्र न चाभूत्ते कदाचन ॥४॥ +मनस्यपि तथा राम न चैत-द्विद्यते क्वचित् । स्वदारनिरतश्चैव नित्यमेव नृपात्मज ॥५॥ धर्मिष्ठः सत्यसंधश्च पितुर्निर्देशकारकः । त्वयि धर्मश्च सत्यं च त्वयि सर्वं

प्रतिष्ठितम् ॥६॥ तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम् । निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम् ॥७॥ प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम् । ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम् ॥८॥

टीका—सुतीक्ष्ण से अनुज्ञा दिये हुए जब राम चल पड़े, तो सीता-प्यारी स्नेह भरी वाणी से भर्ता से यों बोली ॥१॥ काम से उत्पन्न होनेवाले तीन ही व्यसन हुआ करते हैं, उनमें मिथ्या वाक्य बड़ा भारी व्यसन है, और अगले दो उससे भी भारी हैं ॥२॥ परस्त्री-गमन और बिना वैर के रुद्रभाव । इनमें से मिथ्या वाक्य तो हे राघव न आपके हुआ, न होगा ॥३॥ धर्म का नाश करने वाली परस्त्री की अभिलाषा भी तुझ में कहां, यह हे मनुष्यों के मालिक न तुझ में कभी हुई है, न है ॥४॥ मनमें भी हे राम यह आपके कभी नहीं विद्यमान होसकती, हे नृपसुत आप सदा ही अपनी स्त्री में प्रमवाले हैं ॥५॥ आप धर्मिष्ठ, सच्ची प्रतिज्ञावाले, पिता के आज्ञाकारी हैं, आप में धर्म और सचाई है, आप में सब कुछ स्थित है ॥६॥ पर तीसरा यह रुद्रभाव जो दूसरे के प्राणों की हिंसा है,जो विना वैर के (अपनों के) मोह से की जाती है, वह आपके सामने आई है ॥७॥ हे वीर दण्डकारण्य वासी ऋषियों की रक्षा के अर्थ आप ने युद्ध में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की है ॥८॥

मूल—एतन्निमित्तं च वनं दण्डका इति विश्रुतम् । प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः॥९॥ततस्त्वां प्रस्थितं दृष्ट्वा मम चिन्ताकुलं मनः । त्वद्वृत्तं चिन्तयन्त्या वै भवेन्निःश्रेयसं हितम् ॥१०॥ नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान्प्रति । कारणं तत्र वक्ष्यामि वदन्त्याःश्रूयतां मम ॥११॥ त्वं हि बाणधनुष्पाणि भ्रात्रा सह वनं गतः । दृष्ट्वा वनचरान्सर्वान्कच्चित् कुर्याः शरव्ययम् ॥ १२ ॥ +क्षत्रियाणामिह धनुर्हुताशस्येन्धनानि च । समीपतः स्थितं तेजो बलमुच्छ्रयते

भृशम ॥ १३ ॥ स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये । न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया ॥ १४ ॥ बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान्दण्डकाश्रितान् । अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते ॥१५॥ +क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम् । धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ १६ ॥

टीका—इस निमित्त आप धनुषबाण धारकर भाई सहित दण्डक बन को प्रस्थित हुए हैं ॥९॥ इसतरह प्रस्थित हुए आपको देखकर आपके स्वभाव (आप प्रतिज्ञा को अवश्य पूरा करते हैं इस स्वभाव) को सोचकर मेरा मन चिन्ता से व्याकुल होरहा है, आपका कल्याण और हित चाहती हुई ॥१०॥ मुझे हे वीर दण्डक की ओर जाना पसन्द नहीं, इसमें कारण कहूंगी सो सुनिये ॥११॥ आप धनुषबाण लेकर भाई सहित बनमें फिरते हुए बनचारियों को देखकर तीर खर्च करेंगे ही॥१२॥क्षत्रियों के पास धनुष और अग्नि के पास स्थित इन्धन बल और तेज को अत्यन्त बढ़ा देता है ॥३॥ स्नेह से और बहुमान से आपको स्मरण कराती हूं, उपदेश नहीं देती, आपको धनुष पकड़कर हिंसा नहीं करनी चाहिये ॥१४॥ विना वैर दण्डक में रहने वाले राक्षसों को मारने की यह बुद्धि है, हे वीर विना अपराध मारना लोक अच्छा नहीं समझेंगे ॥१५॥ बनमें नियतात्मा क्षत्रिय वीरों को धनुष से इतना ही प्रयोजन है, कि आर्तों की रक्षा करना ॥१६॥

मूल—क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च । व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम्॥१७॥+धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम् । धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥१८+आत्मानं नियमैस्तैस्तैः कर्षयित्वा प्रयत्नतः । प्राप्यते निपुणैर्धर्मो न सुखाल्लभते सुखम् ॥१९॥ नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने । सर्वं तु विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः ॥२०॥ स्त्रीचापलादेत-

दुपाहृतं मे धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः। विचार्य बुद्धया तु सहानुजेन यद्रोचते तत्कुरु मा चिरेण ॥२१॥

टीका—कहां शस्त्र, कहां वन, कहां क्षात्रियभाव, कहां तप, मुझे तो यह परस्पर विरुद्ध प्रतीत होता है, सो आप तपोवन का धर्म सेवन कीजिये।१७। धर्म से अर्थ होता है, धर्म से सुख होता है, धर्म से सब कुछ मिलता है, यह जगत् धर्मसार है।१८। निपुण पुरुष प्रयत्न के साथ अपने आपको उन २ नियमों से तपस्वी बनाकर धर्मलाभ करते हैं, सुख से सुख नहीं मिलता है।१९। सो हे सौम्य! आप सदा शुद्धमति होकर तपोवन में धर्माचरण करें।२० स्त्रीपन की चपलता से मैंने यह बतलाया है, धर्म कहने के आपको कौन समर्थ है, छोटे भाई के साथ बुद्धि से विचार कर जो पसन्द है वह जल्दी कीजिये। २१।

सर्ग १० (व० १०) राम का उत्तर

मूल—वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया। श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ जानकीम् ॥१॥ हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः। कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे ॥२॥+किं नु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः। क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति ॥३॥ ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनयः संशितव्रताः। मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गताः॥४॥ वसन्तः कालकालेषु वने मूलफलाशनाः। न लभन्ते सुखं भीरु राक्षसैः क्रूरकर्मभिः ॥५॥ मया तु वचनं श्रुत्वा तेषामेव मुखाच्च्युतम्। कृत्वा वचनशुश्रूषां वाक्यमेतदुदाहृतम् ॥६॥ प्रसीदन्तु भवन्तो मे ह्रीरेषा तु ममातुला। यदीदृशैरहं विप्रैरुपस्थेयैरुपास्थितः ॥७॥ किं करोमीति च मया व्याहृतं द्विजसंनिधौ। सर्वैरेव समागम्य वागियं समुदाहृता ॥८॥

टीका—सीता से पतिभक्ति से कहे इस वचन को सुनकर धर्म में

स्थित राम ने यह उत्तर दिया ।१। स्नेह से भरी तूने हे देवी! हित कहा है, और हे धर्मज्ञे जनकात्मजे ! कुल को बतलाती हुई तूने सदृश वचन (क्षत्रिय का धर्म आर्त रक्षा) कहा है ।२। मैं क्या कहूं, हे देवि, तूने ही यह वचन कहा है, कि क्षत्रिय धनुष को धारण इसलिये करते है, कि कहीं आर्त्तशब्द न हो ।३। और यह दण्डकारण्य के तीक्ष्णव्रतों वाले मुनि आर्त हुए हे सीते आप मेरे पास आए हैं और मुझे शरण के योग्य जान शरणगत हुए हैं॥ ४ ॥ यह सदा वन में फल मूल खाकर रहते हुए हे भीरु क्रूरकर्मा राक्षसों से दुःख उठा रहे हैं ॥ ५ ॥ मैंने तो इन्हीं के मुख से निकले वचन को सुन कर इनके वचन का आदर करके यह वाक्य कहा है ॥ ६ ॥ कि आप मुझ पर प्रसन्न हों, मुझे यह भारी लज्जा है, जब कि ऐसे ब्राह्मण आप मेरे पास आए हैं, जिन के पास मुझे जाना चाहिये था ॥ ७ ॥ क्या आज्ञा है, यह मैंने ब्राह्मणों के सन्मुख कहा, तिस पर उन सब ने मिल कर यह बात कही ॥ ८ ॥

मूल—राक्षसैर्दण्डकरण्ये बहुभिः कामरूपिभिः । आर्दिताः स्म भृशं राम भवान्नस्तत्र रक्षतु ॥ ९ ॥ मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम् । ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे ॥ १० ॥ +संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् । मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा ॥ ११ ॥ +अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणम् । न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ १२ ॥ तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम् । अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय कथं पुनः ॥ १३ ॥ मम स्नेहाच्च सौहृदादिदमुक्तं त्वया वचः । परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते ॥ १४ ॥ सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने । सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा सीतां प्रियांमैथिलराजपुत्रीम् । रामो